RNI : UPHIN/2008/30136

ISSN : 0974-0002

देश देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

वर्ष : 3 अंक : 6

जुलाई–दिसम्बर 2010

कृतिका

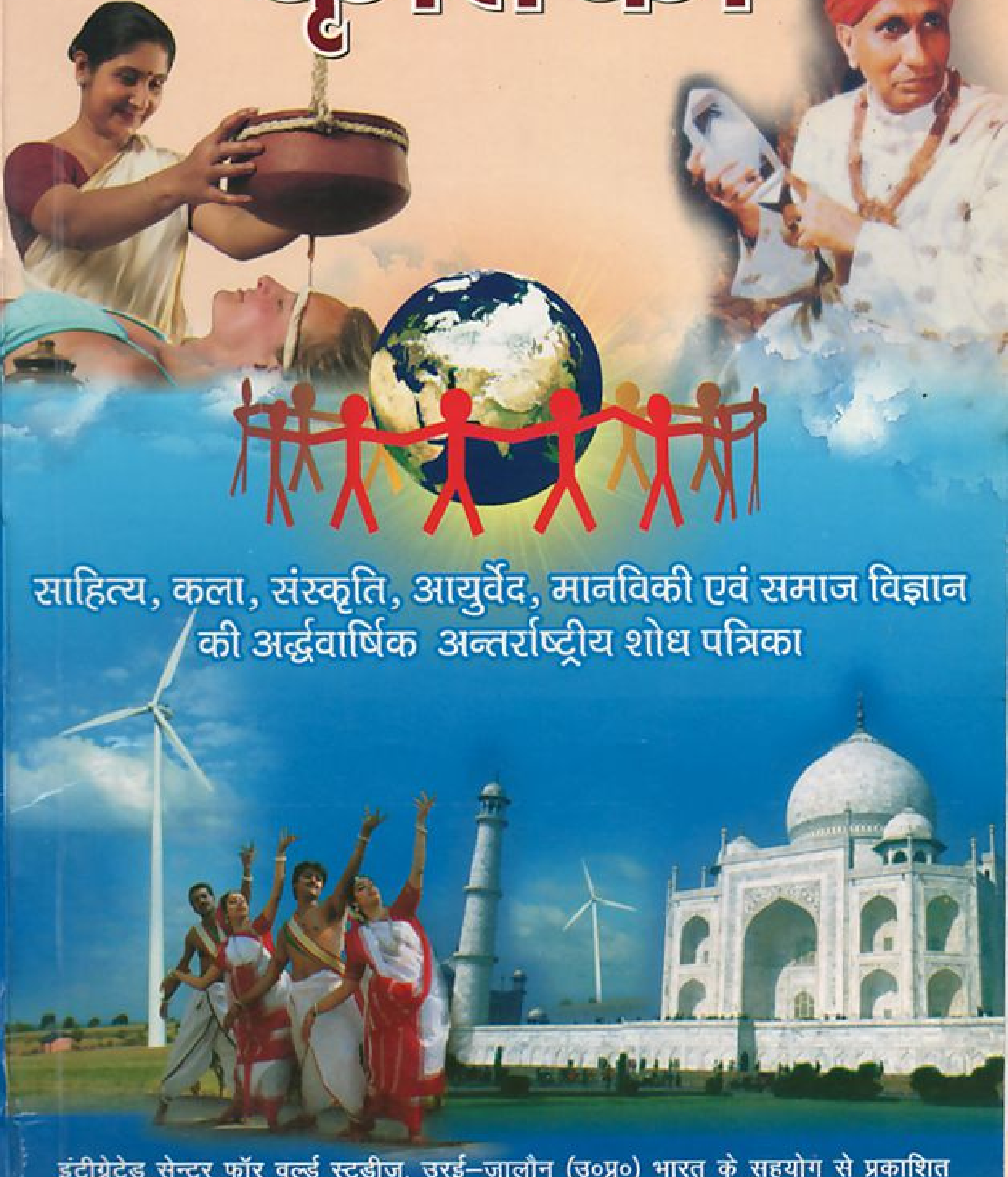

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान
की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई–जालौन (उ०प्र०) भारत के सहयोग से प्रकाशित

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 6 जुलाई-दिसम्बर 2010

प्रधान सम्पादक
डॉ. चन्द्रमा सिंह

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

मुख्य सम्पादक
डॉ. किशन यादव
डॉ. कश्मीरी देवी
डॉ. सुरेश एफ. कानडे
डॉ. राधा वर्मा

कला सम्पादक
डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

सम्पादक
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जिला-जालौन (उ. प्र.) भारत के सहयोग से प्रकाशित

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 6 जुलाई-दिसम्बर 2010

सहयोग राशि : 60 रुपये

यू. एस. 25 $ यूरो 20 $

व्यक्तिगत सदस्यों के लिये

वार्षिक सदस्यता	:	200 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	3500 रुपये	(डाक व्यय सहित)

संस्थाओं के लिये

प्रति अंक	:	200 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	400 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	2000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	4000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विशेष : सभी भुगतान नकद/मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/चेक **'सम्पादक कृतिका'** के नाम Payable at Orai भेजें। कृपया चेक के साथ बैंक कमीशन के रूप में निश्चित अतिरिक्त राशि जोड़ दें।

- विधिक वादों के लिये क्षेत्र उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मण्डल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक – **डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव**

2

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 6 जुलाई-दिसम्बर 2010

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र. 285001 भारत
सम्पर्क – 05162–252888, 09415924888, 09670732121
Email : kritika_orai@rediffmail.com ✦ Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : dr.virendrayadav@gmail.com ✦ http://kritika-shodh.blogspot.com

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. चन्द्रमा सिंह
नयकागाँव, जी. टी. रोड
सासाराम (बिहार) 821115
सम्पर्क – 06184–223271, 09430895451
Email : dr.chandramasinghkritika@rediffmail.com
dr.chandramasingh2009@rediffmail.com

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह
म. नं. नन्दन सदन II फ्लोर, शेरशाह रोड,
शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना 800007 (बिहार)
सम्पर्क – 09279211509, 09334626350
Email : drsurendra25@gmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम
हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क – 09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

डॉ. कश्मीरी देवी
म. नं. 1651/21 हैफेड चौक
रोहतक (हरियाणा) 124001
सम्पर्क – 0912384888
Email : kashmiridevi2009@rediffmail.com

डॉ. राधा वर्मा
वर्मा निवास, गाहन, कमला नगर
संजौली, शिमला (हि. प्र.)
सम्पर्क – 09459262144
Email : dr.radhaverma@yahoo.com

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात 250260
सम्पर्क – 09925019160
Email : dr.neenasharma2009@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृति अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। कृतिका, इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जिला–जालौन (उ. प्र.) भारत के सहयोग से प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियां एवं लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।
- कृतिका की गोपनीय समिति द्वारा चयनित शोध पत्रों/आलेखों में से श्रेष्ठ रचना को पारतोषिक देकर सम्मानित किया जायेगा।

– कृतिका परिवार

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 6 जुलाई–दिसम्बर 2010

अनुक्रमणिका

शीर्षक	पृ. सं.
सम्पादकीय	
एक दुनिया और भी है	
✦ यादों के झरोखे से : सिडनी के मंदिर ✍ वर्तिका सिंह	1–2
✦ नेपाल का कोहिनूर काठमाण्डू : यादों के झरोखें में ✍ अर्चना प्रिया सिंह	3–4
सुलगते सवाल	
✦ हिन्द महासागर एवं भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा : एक विहंगम दृष्टि ✍ डॉ. लक्ष्मी कुमार मिश्र ✍ डॉ. गोपाल कृष्ण सेमवाल	5–9
राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्न	
✦ ग्रामीण समाज में धर्म और आधुनिक परिवर्तन ✍ अलका सक्सेना	10–13
✦ ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्यायें एवं समाधान ✍ डॉ. सरिता रानी	14–16
आधी दुनिया का यथार्थ	
✦ स्त्री विमर्श का साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य ✍ डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	17–18
✦ नारी अबला या सबला वास्तविक परिदृश्य ✍ डॉ. मिथलेश गुप्ता	19–21
✦ इन्दौर शहर की महिलाओं में उपभोक्ता जागरूकता पर : एक अध्ययन ✍ डॉ. रजनी भारती	22–25

✦ मुस्लिम महिलाओं की राजनीतिक सशक्तिकरण का एक यथार्थ अध्ययन (इलाहाबाद जनपद के विशेष संदर्भ में) 26–28
✍ डॉ. लक्ष्मीना भारती

वैदिक साहित्य में चिन्तन के विविध सन्दर्भ

✦ योग का उद्भव एवं विकास 29–31
✍ डॉ. वन्दना कुलश्रेष्ठ

✦ पाश्चात्य समीक्षा के परिप्रेक्ष्य में वेद 32–36
✍ डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

अध्यात्म एवं दर्शन

✦ श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म–योग 37–40
✍ डॉ. कुमार पाल

✦ परम्परागत साहित्य में सन्निहित है शिव का वैविध्य 41–44
✍ डॉ. ए. के. रूस्तगी ✍ डॉ. बीना रूस्तगी

✦ संस्कृत वाङ्मय में नारी (वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत) 45–46
✍ डॉ. गीता वर्मा

अछूते सन्दर्भ

✦ नन्हें जीवन की दुर्दशा 47–49
✍ डॉ. अलका द्विवेदी ✍ डॉ. मीनाक्षी बाजपेयी

✦ श्रम संघ की प्रकार्यात्मकता : समाजशास्त्रीय विश्लेषण 50–52
✍ शिप्रा यादव

चिन्तन–चिन्ता

✦ भारतीय मुसलमानों में जातिव्यवस्था–राजनीतिक विश्लेषण 53–60
✍ डॉ. शमीम राईन

✦ डॉ. लोहिया के इतिहास चिन्तन की प्रासंगिकता 61–62
✍ क्षमा यादव

पर्यावरण एवं ग्लोबल वार्मिग

✦ ग्लोबल वार्मिंग से बचाव, प्रकृति का उचित रखरखाव 63–66
✍ डॉ. मंजू अवस्थी

इतिहास दृष्टि

✦ उत्तर मुगलकालीन भारत में हिन्दुओं के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय : तथ्यात्मक विश्लेषण 67–69
✍ डॉ. अनील कुमार सिन्हा

✦ आद्यइतिहास एवं ब्राह्मी लिपि 70–73
✍ डॉ. शम्भू नाथ यादव

- **स्वामी सहजानन्द सरस्वती और बिहार किसान आन्दोलन : तथ्यात्मक विश्लेषण** — 74–77
  ✍ पूनम कुमारी
- **मुगलकालीन (1658 ई.–1719 ई.) भारत में आर्थिक स्रोतों का विवेचनात्मक अध्ययन** — 78–81
  ✍ डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

विकास और जनसंचार माध्यम

- **जनसंचार माध्यम एवं भूंडलीकरण** — 82–85
  ✍ प्रो. डॉ. सुरेश एफ. कानडे

भारत में उद्योग एवं अर्थव्यवस्था की स्थिति

- **महारत्न सार्वजनिक उपक्रमों की पूँजी उत्पादकता का एक अध्ययन** ('आई. ओ. सी.' एवं एन. टी. पी. सी. के विशेष सन्दर्भ में) — 86–91
  ✍ डॉ. मनीष कुमार गुप्ता

बीच बहस में

- **क्रीड़ा व्यवस्थापन** — 92–96
  ✍ डॉ. सुनील कुमार ✍ अतुल शर्मा

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

- **अपनी भाषा** — 97–99
  ✍ डॉ. नन्द किशोर प्रसाद
- **हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन** (कंकाल, सन्यासी उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में) — 100–105
  ✍ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
- **हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता और फणीश्वर नाथ रेणु का योगदान** — 106–109
  ✍ डॉ. अमित शुक्ल
- **हिन्दी कहानी : आधुनिकता का संकट और उसकी परिणतियाँ** — 110–113
  ✍ डॉ. अरविन्द कुमार अवस्थी
- **उदयभानु हंस के काव्य में नैतिकता** — 114–118
  ✍ डॉ. आशा वर्मा
- **ममता कालिया की कविताओं में जागृत स्त्री की तस्वीर** — 119–124
  ✍ डॉ. राधा वर्मा
- **साठोत्तरी हिन्दी कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन** — 125–129
  ✍ डॉ. सियाराम
- **भारत की सांस्कृतिक चेतना और हिन्दी साहित्य का परिदृश्य** — 130–133
  ✍ डॉ. शशिभूषण कुमार 'शशि'
- **मन्नू भण्डारी की कहानियों में वृद्धावस्था और अकेलेपन का दंश** — 134–136
  ✍ सरोज पाठक

✦ दीवार में एक खिड़की रहती थी–एक अध्ययन 137–139
✍ डॉ. वन्दना मिश्रा

✦ बाल–पत्रिकाएं : अतीत, वर्तमान दशा एवं दिशा 140–144
✍ डॉ. प्रीति सागर

बहुजन समाज का स्याह यथार्थ

✦ दलित विमर्श के नए आयाम 145–149
✍ डॉ. आनन्द स्वरूप शुक्ल ✍ हृदय नारायण अवस्थी

शैक्षिक परिदृश्य

✦ उच्च शिक्षा में गुणात्मकता 150–151
✍ डॉ. गीता अस्थाना ✍ अनिल कुमार पाण्डा

संगीत

✦ सङ्गीत का जीवन पर प्रभाव : लौकिक संस्कृत–साहित्य के सन्दर्भ में 152–155
✍ डॉ. निरुपमा त्रिपाठी

पोथी की परख/समीक्षायन

✦ बुन्देली लोक गीतों में भक्ति भावना 156
✍ डॉ. सियाराम

✦ इक्कीसवीं सदी में मुसलमान चिन्तन एवं सरोकार 157
✍ डॉ. सबीहा रहमानी

✦ दलित आन्दोलन के मिथक एवं यथार्थ 158
✍ डॉ. ज्योति सिन्हा

✦ पर्यावरण आन्दोलन के विविध आयाम 159
✍ डॉ. आनन्द खरे

✦ भोजपुरी भाषा का लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सिंहावलोकन 160
✍ डॉ. शम्स आलम

✦ मानवाधिकार के बहाने एक नई सीख 161
✍ डॉ. अजय सिंह

✦ नई सहस्त्राब्दी में आतंकवाद के विविध स्वरूप 162
✍ डॉ. उत्तरा यादव

✦ भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिंतन के विविध सरोकार 163
✍ डॉ. ममता आनन्द

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

सम्पादकीय

जीवन सम्भावनाओं का दूसरा नाम है और मनुष्य है अनगिनत सम्भावनाओं की बैसाखियों के सहारे थम–थम कर चलने वाला हिम्मतवर सैलानी। जन्म के प्रारम्भिक क्षण से लेकर मृत्यु के अन्तिम क्षण तक की सारी यात्रा अनेक रुचियों, भावों और प्रतिक्रियाओं की एक ऐसी परिणति है जिसकी गहराइयों में सब कुछ ऐसे समा जाता है मानो जन्म मिला ही इसलिये है कि उसे अपने लिये सब कुछ समेटकर उसी में विला जाना है। औद्योगीकरण, नगरीकरण और वैज्ञानिक अन्वेषणों के पार्श्व में खड़ा जीवन बाहर से ही नहीं, भीतर से भी बदला है। आजादी ने हमें जितना दिया है, उससे अधिक हम से ले भी लिया है। सामान्य मनुष्य तो अभी भी आजादी को टोह रहा है। आजादी राष्ट्रीय स्तर पर जितनी अहम उपलब्धियाँ लेकर आई है, वैयक्तिक स्तर पर उतना और वैसा कुछ भी नहीं हस्तगत हुआ है। ''व्यक्ति की मनोव्यथा बढ़ी है क्योंकि महानगरों में भीड़ बढ़ी है। मनुष्य पहले से अधिक अकेला हुआ है क्योंकि उसे अस्तित्व नहीं मिला है। उसकी ऊब दुगुनी हुई है क्योंकि मानवीय सम्बन्ध बिखर गये हैं। मनुष्य बेरोजगार होता गया है क्योंकि गाँव और नगर पीढ़ियाँ उगल रहे हैं। निराशा का रंग दिन–प्रतिदिन गाढ़ा होता गया है क्योंकि मनुष्य की स्थिति अनपहचान होती गई है।'' महानगरों में भीड़ का दबाव बढ़ा है तो उसी अनुपात में जीवन यांत्रिक और एकरस होता जा रहा है। नतीजा यह है कि छोटे नगरों में जीवन का अभाव और विषम परिस्थितियाँ इतनी अधिक तेजी से बढ़ रही हैं कि व्यक्ति के मन में 'एलियनेशन' और 'बोरडम' की भावना ने डेरा सा डाल लिया है।

उपयुक्त साधनों का अभाव, जीवन स्तर में उत्पन्न बाधाएँ, अव्यवस्था व अनुपयोगी शिक्षा, बेकारी, जनसंख्या की बढ़ोत्तरी, वैज्ञानिक सुविधाओं का अधकचरापन और बीमारी, गन्दगी व भुखमरी के कारण देश का आम आदमी पीड़ित है। उसका रक्तचाप या तो ऊँचा है, या काफी नीचा है। वह 'नार्मल' नहीं रह गया है। युवक–युवतियों की अपनी समस्याएँ हैं। अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध, उन्मुक्त प्रेम, समलैंगिक विवाह, नशीले पदार्थों का सेवन, तलाक, हड़ताल, भ्रूण हत्या और नंगे–अधनंगे शरीरों का नृत्य आदि जीवन को जिस हवा के साथ बहाये जा रहा है वहाँ ठहरकर सोचने का अवकाश ही किसको है? नयी पीढ़ी समाज की सड़ी–गली परम्पराओं को तोड़ रही है। लीक से हटकर अपने अनुसार लीक बना रही है। वह 'वाइफ स्वैपिंग' के खेल खेलती है। फैशन का नया दौर सामने से गुजर रहा है। 'टापलेस' और 'मिनी स्कर्ट्स' का फैशन जोरों पर है। फैशन का बाजार गर्म है। एक तरह का डिजाइन आ नहीं पाता कि दूसरा आकर उसे पुराने खाते में धकेल देता है। हिप्पी व बीटनिक संस्कृति ने देश के महानगरों का जीवन क्रम ही बदल दिया है। वर्तमान जीवन में कालेजों और विश्वविद्यालयों का जीवन भी अनाकर्षक, अव्यवस्थित और असन्तोषपूर्ण होता जा रहा है। युवा बुद्धिजीवियों के सामने भविष्य का रूप स्पष्ट नहीं है और आज की व्यस्ततम जिन्दगी की रेस में कर्तव्य का ज्ञान ही हवा हो गया है। अतः विगत वर्षों में हमारा जीवन जितना बदला है, उसमें जो अव्यवस्था, दरार और बिखराव आया है, उतना पिछले सैकड़ों वर्षों में भी नहीं आ पाया था। मध्यमवर्गीय व्यक्ति एक ओर तो पुराने संस्कारों को संभालना चाहता है और दूसरी ओर 'टेबूज' व रूढ़ियों की जंजीरों को तोड़ डालने पर आमादा है, किन्तु करे क्या? उसके हाथों की ताकत गायब है। वह आधुनिक विदेह हो गया है। उसकी संकल्पी मनोवृत्ति नीचे दब गई है। अतः विवश है, अभिशप्त जीवन जी रहा है। इस विवशता ने उसके मानस में कुंठा, एकाकीपन, अजनबीपन, घुटन, निरुद्देश्यता, नपुंसक आक्रोश और अकेलेपन के बोध को गहरा दिया है। इस स्थिति से केवल पुरुष गुजर रहा हो ऐसी बात नहीं है, स्त्रियाँ भी इसी स्थिति और परिवेश में जी रही हैं। उनका शरीर रीतिकालीन नायकों के द्वारा तो उन्मथित ही हुआ था। आज तो वह बार–बार नापा जा रहा है। वासना के फीते के सामने वह छोटा पड़ गया है। अंग–प्रत्यंग पर वासना के नीले निशान हैं और उसकी परिणति भ्रूण हत्या, एबार्शन और भोग की दीवारों से सिर पटकने में ही रह गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक परिवेश का मानचित्र काफी भयावह त्रासद और घिनौना है। उसमें समस्याओं के पहाड़ हैं, अतृप्तियों व विक्षुब्ध मनः स्थितियों की सरिताएँ हैं, अकेली शैलमालाओं और समूचे मानचित्र में न कोई रंग है, न रौनक। वह विकृत, हाशियाहीन, सीमाहीन और लिजलिजा सा हो गया है। इतना ही नहीं उसमें अंकित प्रत्येक नगर अजनबीपन का भार लिये अपनी जगह पर खड़ा भर है। यों उसके आसपास, छोटे बड़े नगरों की भीड़ है, उसका दबाव है, परन्तु फिर भी वह अकेला है। ऐसे परिवेश में लिखा गया आधुनिक साहित्य इससे अलग कैसे हो सकता था? नहीं न। अतः उपरिसंकेतित परिवेश से प्रभावित साहित्य का रूप रंग भी तदनुकूल ही है।

समूची मानवता, मानवीय सम्बन्धों और मूल्यों का अपने ढंग से पुनरवेषण करती है, अपने लिये एक मार्ग चुनती है, उसे केवल उसकी जन्म विवरणिका के माध्यम से कैसे समझा जा सकता है। उसकी पहचान उसकी व्यक्तिगत रुचियों, आदतों और प्रतिक्रियाओं से तो होती ही है उसे उसके परिवेश और सृजन के सहारे से भी समझा जा सकता है। व्यक्ति वह नहीं है जो वह बाहर से दिखता है, अपितु असली व्यक्ति वह है जो आदमीनुमा शक्ल का खोल ओढ़कर अपने भीतर एक आदमी को लिये चलता है। यह तथ्य सामान्य व्यक्ति से लेकर बड़े से बड़े व्यक्ति पर लागू होता है। आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ तो इस तथ्य को और भी प्रमाणित कर देती हैं। मनुष्य लाख कोशिश करे, परन्तु वह आन्तरिक संवेदना को छुए बिना न तो जीवन की विचित्रताओं से परिचित हो सकता है और न उसके मूल में कार्य कर रही शक्तियों से।

आज का आदमी अपने आसपास के अनेक सवालों से टकराता, टूटता और निर्वासित हो रहा है क्योंकि मनुष्य वैज्ञानिक उपलब्धियों को अपने जीवन में जाने–अनजाने स्वीकार कर रहा है और वैज्ञानिक विचारधारा ही आधुनिकता की धारणा बन गई है। अतः आधुनिकता ने वार्तालाप के दायरे को नितांत सीमित और संकुचित कर दिया है। व्यक्ति अकेलेपन से निकलने और परिवेश से जुड़ने के लिये छटपटा रहा है। वह जीने के लिये नये सम्बन्धों और नयी मान्यताओं की तलाश करता है ताकि अपनी खोई हुई दिशा को प्रकाशित कर सके और जीवन को नये सम्बन्धों और सन्दर्भों से जोड़ सके।

साहित्य युग सापेक्ष होता है। उसमें समकालीन युग–जीवन की अभिव्यंजना है। उसमें मनुष्य के राग–विराग, आसक्ति–अनासक्ति, स्वीकार–अस्वीकार, ग्रहण–त्याग, जीवन के गुह्य और जटिल संदर्भ, युग–त्रासदी और उससे उत्पन्न विभिन्न मनः स्थितियों का यथार्थ, विश्वसनीय और सही अंकन हुआ है। अनुभूति की ईमानदारी और अभिव्यक्ति की निश्छल प्रसन्नता सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि एक रचनाकार अपने समय और परिवेश को पूरी ईमानदारी से अपने साहित्य में अंकित करता हुआ उसे विश्वसनीय बना दे।

इन्हीं व्यापक दृष्टिकोणों को लेकर कृतिका का यह अंक समकालीन परिवेश की ज्वलंत समस्याओं को लेकर केन्द्रित है। एक सम्पादक के रूप में कृतिका परिवार का यह सदैव प्रयास रहा है कि समाज में घटित होने वाली समस्याओं को पैनी नजर से अवलोकित किया जाये। इसी को मद्देनजर रखते हुये समकालीन समस्याओं से सम्बन्धित विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक के तहत **'भ्रष्टाचार का स्वरूप एवं संभावनायें'** अगली कड़ी के रूप में प्रकाशित करने की योजना है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि उन्नीसवीं सदी ब्रिटिश साम्राज्य के वर्चस्व की थी और बीसवीं सदी अमेरिका के वर्चस्व की थी जबकि इक्कीसवीं सदी निश्चित तौर पर भारत के नाम होने जा रही है। हालांकि इससे सहमत होना मुमकिन नहीं है लेकिन हकीकत यही है कि इक्कीसवीं सदी दुनिया भर में भ्रष्टाचार के दबदबे वाली सदी साबित होने वाली है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में तो हालत काबू से बाहर होते जा रहे हैं। जब हम भारत की बात करते हैं तो लोकतंत्र की स्थापना से लेकर अब तक अनेक घोटाले चर्चा में आये, कई बार जाँच हुई, लेकिन कभी किसी को ऐसी सजा नहीं मिली जिसकी भयावहता से और लोग सबक सीखें। यह चौंकाने वाली बात है कि देश में 800 सांसदों की संपत्ति का ब्यौरा अघोषित तौर पर एक हजार करोड़ रुपये से अधिक है। प्रति सांसद यह औसत एक करोड़ रूपये से अधिक का है। आखिर कहाँ से आया इतना पैसा? इसकी जाँच क्यों नहीं हुई? फिर इसे अब कितनी गंभीरता से लिया जा रहा है। इसके साथ ही उच्च प्रशासनिक पदों की सेवाओं में वर्षों में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ा है। भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए आज कठोर कदम उठाये जाने की जरूरत है।

कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोध पूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

– सम्पादक मण्डल

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 1-2

एक दुनिया और भी है

यादों के झरोखे से : सिडनी के मंदिर

✍ वर्तिका सिंह

मैं वर्ष 2000 के नवम्बर माह में नागपूर (भारत) से अपने माता–पिता के साथ आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स प्रांत के थौर्नलेग चली आई थी। थौर्नलेग की दूरी सिडनी शहर से करीब 20 कि.मी. है।

हम लोग प्रदीप अंकल के यहाँ अतिथि के रूप में करीब एक महीना तक रहे। प्रदीप अंकल सपरिवार एक दशक पूर्व (1990) से ही भारत से आये थे। वे सपरिवार आस्ट्रेलियन हो चुके थे। अंकल मेरे पिताजी के आई.आई.टी. खड़गपुर, पं. बंगाल के सहपाठी रह चुके थे।

मेरे पिताजी नागपुर में इंडियन आयल कारपोरेशन में सहायक मैनेजर के रूप में कार्यरत थे। वे अपनी नौकरी छोड़कर आस्ट्रेलिया लेते आये थे। उन दिनों मैं और मेरा छोटा भाई विनीत नागपुर में ही स्कूल में पढ़ रहे थे। मेरी माँ यद्यपि बी.ए. पास थी फिर भी गृहणी थीं। हम लोगों को आस्ट्रेलियन रहन–सहन, खान–पान बोलचाल, पहनावा–ओढ़ावा कुछ अजीब सा लगता था। फिर भी सबकुछ से समझौता करना पड़ा। धीरे–धीरे हमलोग अभ्यस्त होते चले गये।

प्रदीप अंकल के यहाँ रहते हुए पिताश्री नौकरी ढूंढ़ते रहे। सौभाग्यवंश नौकरी मिल गई। उनका कार्यालय हार्नसबी रेलवे स्टेशन के पास था। उसी के नजदीक 10/215 पैसेफिक हाईवे, हार्नसबी, सिडनी के एक किराये के फ्लैट में हम लोग आ गये। मेरा और मेरे भाई का नाम हार्नसबी साउथ प्राइमरी स्कूल में लिखा दिया गया। हम दोनों स्कूल आने–जाने लगे। हम दोनों क्लास में अच्छा करने लगे। वर्ग शिक्षक एवं अन्य शिक्षक हम दोनों को बहुत प्यार करते थे। हमने उस स्कूल में कई पारितोषिक भी पाये।

सच पूछा जाय तो मुझे नागपुर स्कूल की सहेलियां याद आती रही। पत्राचार भी होता रहा। यहाँ की सहपाठी एवं अन्य छात्रायें मुझे देखकर 'एसियन' कहती धीरे–धीरे कई आस्ट्रेलियन लड़कियाँ मेरी दोस्त बन गई। मैं धीरे–धीरे अपने भारतीय सहेलियों को भूलती चली गई।

मेरी माँ निकी सिंह भी नौकरी की तलाश में सिडनी की सड़कों पर धूप–बारिश में भटकती रहीं। जहाँ जो नौकरी मिलती, वह करती रही। हर तकलीफ को उसने स्वीकार किया। मैं अपनी पढ़ाई करती रही।

मेरे पिता एवं माता ने वर्ष 2002 आते–आते चेरीब्रूक, 24 ब्लैक वैटल प्लेस, एन.एस.डब्लू 2126 में अपना मकान खरीद लिया। हम लोग उसी वर्ष वहां चले गये और आज की तारीख में भी वहीं हैं।

आज मैं सिडनी टेक्निकल युनिवर्सिटी की बिजनेस लॉ की छात्रा हूँ तथा यहां की एक प्रतिष्ठित कम्पनी में कार्य भी कर रही हूँ। मेरी माँ भी एक स्कूल में शिक्षिका है। हमें आस्ट्रेलिया की नागरिकता मिल चुकी है। मेरे पिता और मां को पूजा–पाठ से बहुत लगाव है। यहाँ पर प्रत्येक शनिवार और रविवार को छुट्टी रहती है।

हम सभी लगभग प्रत्येक रविवार को मंदिर में भगवान का दर्शन करने जाते है। सिडनी क्षेत्र में मंदिरो का जाल बिछा है।

इस मंदिर के अलावे भी निम्नलिखित मंदिर सिडनी क्षेत्र में है :–

1. श्री शिव मंदिर, 201 इगलव्यू रोड, मिन्टो एन.एस.डब्लू 2566
2. श्री मंदिर 286 कम्बरलैड रोड, आबर्न

✍ चेरीब्रूक, 24 ब्लैक वैटल प्लेस, एन. एस. डब्लू 2126, आस्ट्रेलिया

3. श्री सनातन धर्म मंदिर 24 / 7 लिन परेड, प्रेसटन, एन. एस. डब्लू 2170
4. सिडनी मुरगन टेम्पूल, 217 ग्रेट वेस्टर्न हाईवे एन. एस. डब्लू 2145
5. स्वामी नारायण हिन्दू टेम्पूल, एन.एस. डब्लू 2142
6. श्री वेंकटेश्वर टेम्पूल, टेम्पूल रोड, हैलेन्सवर्ग हाईवे, एन एस. डब्लू 2508
7. श्री राम मंदिर, वैटल एवेन्यू
8. भारतीय मंदिर रिजेन्ट पार्क
9. श्री स्वामी नारायण मंदिर (कालपुर), ब्लैकटाउन
10. श्री राधा कृष्णा मंदिर उडपार्क 2164
11. ओम श्री शिरीडी साई टेम्पूल, लिवर पुल रोड

यहाँ का मुक्ति गुप्तेश्वर मंदिर बहुत ही प्रसिद्ध है। यह मंदिर 203 इगलव्यू रोड, मिन्टो एन. एस. डब्लू 2566, आस्ट्रेलिया में अवस्थित है। इसकी दूरी सिडनी से करीब 35 कि.मी दक्षिण–पश्चिम है। यहाँ पर 13 वें ज्योर्तिलिंग की स्थापना 1999 में की गई। ऐसा कहा जाता है कि "आस्ट्रेलिया इज सेड टू वी एट् दी वेस ऑफ द सरपेन्टाइन पॉजीटीव मैग्नेटिक इनर्जी कैरेन्ट ऑफ दी प्लानेट दी रेसपेन्ट इज वन ऑफ द ऑरनामेन्ट ऑफ लॉर्ड शिवा इन हिन्दू स्कलपचर ऑस्ट्रेलिया इज रेफरड एज द स्करेड कॉन्टीनटेन्ट एण्ड द स्पीरूचवल स्पाइन्ल कार्ड ऑफ द वर्ल्ड।"

अष्टमूर्ति महेशस्य–वसू–दिग्पाल दिग्गजो योगायुवेर्द–नागादि– भेखा पाल राक्षिते अष्टालिका पालरास्ते विश्व पालन तत्परा

इस मंदिर को पहाड़ काटकर गुफा में बनाया गया है। इस तरह का गुफा हिन्दू मंदिर शायद विश्व के अन्य स्थानों पर नहीं है। इस मंदिर की स्थापना नेपाल देश के तत्कालीन रायल हाइनेस राजा वीरेन्द्र वीर बिक्रमशाह देव के सहयोग से किया गया था। आस्ट्रेलिया का यह देदित्यमान मंदिर अद्भूत है। इसकी स्थापत्यकला भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। भारत से इतनी दूरी पर शिव का यह मंदिर यहाँ पर भारतीयता का एहसास दिलाता है।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 3-4

एक दुनिया और भी है

नेपाल का कोहिनूर काठमाण्डू : यादों के झरोखें में

✍ अर्चना प्रिया सिंह

काठमाण्डू सचमुच नेपाल का कोहिनूर है। यह परिव्राजकों का एक महाजाग्रत् तीर्थस्थल है। यातायात की असुविधा के कारण पहले यह अर्वाचीन जगत् की उथल–पुथल से अछूता, एक दुर्गम और कुतूहल–भरा नगर माना जाता था। त्रिभुवन राजपथ और सहज–सरल वायुमार्गों के खुल जाने के बाद इसके रहस्मय सारे द्वार अब पर्यटकों के लिए उन्मुक्त हैं। उपत्यका के अन्दर भी अब यातायात की सुविधाएँ प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। सच पूछिए, तो अभी यहाँ मोटरगाड़ियों की प्राचीन–से प्राचीन और अर्वाचीन–से–अर्वाचीन जितनी किस्में देखने को मिलती हैं, उतनी शायद ही और कहीं उपलब्ध हैं। पर, हाँ, अर्वाचीन विकासों के बावजूद, इसके नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्यों और सांस्कृतिक कला–वैभव से कोई पर्यटक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। काठमाण्डू तो मानों नेपाल का हृत्पिण्ड ही है। इस वातायन से नेपाल के सांस्कृतिक जीवन और अलौकिक प्राकृतिक दृश्यों के दिग्दर्शन तो किसी को भी सहज–सुलभ हैं, किन्तु अध्यात्मप्रवण प्राणों के लिए तो और भी विशेष आकर्षण है। उन्हें ऐसी अनुभूति होगी कि एक अद्भुत दिव्यभाव के स्पन्दन से इस तीर्थस्थल के आकाश और वायुमण्डल परिपूर्ण हैं; चारों ओर अनिर्वचनीय ध्यान–गम्भीर परिवेश है। भक्तों, ज्ञानियों और योगियों की उक्ति का तो कहना ही क्या, आम तौर पर भी इसे देवलोक की संज्ञा दी गई है। उड़ते हुए विमान से दूर तक फैली हुई पर्वतमालाओं और जंगलों के बीच काठमाण्डू वास्तव में कोहिनूर की तरह जड़ा हुआ उद्भासित होता है। यहाँ के मन्दिर, स्तूप और धवल राजप्रसादों के बीच की हरियाली बड़ी ही मनोरम लगती है और उस पर उड्डीयमान विमान से पुण्यतोया वाग्वती, मनोहरा और विष्णुमती नदियों की पतली धाराएँ रूपहले धागों–जैसी मालूम पड़ती हैं। प्रथम दर्शन में ही किसी श्रद्धालु पर्यटक को कुछ ऐसा भान होता है कि उसे प्राचीन संस्कृति की एक आसाधारण धर्मभूमि का सान्निध्य प्राप्त हुआ है।

'जम्मू और कश्मीर' राज्य में जैसे कश्मीर, वैसे ही काठमाण्डू नेपाल की चूड़ामणि–उपत्यका है। बहुतेरे लोग इसे काठमाण्डू की बजाय पूरे नेपाल की ही घाटी समझते हैं। दरअसल, यह नेपाल की सबसे बड़ी घाटी है। इसकी ऊँचाई समुद्रतल से 4550 से 5550 फुट तक है। यह उपत्यका एक ऋजुभुज–क्षेत्र जैसी है और कुल मिलाकर लगभग 250 वर्गमीलों में छाई हुई है। यह चारों ओर पहाड़ों की परतों से घिरी है, जिनमें नगाधिराज हिमालय की गगनभेदी तुषार–धवल उत्तुंग चोटियाँ भी शामिल हैं। इस तरह, पहाड़ों की गोद में प्रकृति की यह मनोरम कीड़ास्थली पर्यटकों को अचम्भे में डाल देती है और वे चिरनवीन प्राकृतिक दृश्यों को देखकर हर्षातिरेक से फूले नहीं समाते।

कश्मीर की तरह, इसकी उत्पत्ति भी 'नागह्रद' अथवा नागदह नाम के एक तालाब से हुई मानी जाती है। चतुर्दिक् पहाड़ों से घिरे होने के कारण आश्चर्य नहीं कि इस घाटी में कभी सर्वत्र जल ही भरा रहा हो। 'संक्षिप्त नेपाल' के लेखक श्रीरामस्वरूप प्रसाद की एक खोज के अनुसार सतयुग में 'विपस्सी' नाम के एक बोधिसत्त्व ने यहाँ आकर तत्कालीन नागदह के पश्चिमोत्तर कोने के पहाड़ (आधुनिक नागार्जुन) पर निवास किया। कालान्तर में चैत्र शुक्ल–पूर्णिमा के दिन एक अलौकिक प्रेरणावश उन्होंने नागदह के बीच एक कमल का बीज रोपा। किंवदन्ती के अनुसार इस बीज से छह महीने बाद आश्विन शुक्ल–पूर्णिमा के दिन एक अलौकिक कमल का फूल खिला और उस कमल के बीच बौद्धों के स्वयंम्भूनाथ और शैवों पशुपतिनाथ की ज्योतिर्मयी मूत्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इसी के संस्मरण में अब भी वहाँ चैत्र शुक्ल–पूणिमा के दिन मेला लगता है। कहते हैं कि उसके बाद, त्रेतायुग में, 'विश्वभू' नाम के बोधिसत्त्व यहाँ आये और उन्होंने अपनी शिष्यमण्डली–सहित फुल्लोचगिरि पर आकर एक लाख फूलों से

✍ राज विराज सपतरी, नेपाल

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

स्वयम्भू की पूजा की और, तत्पश्चात् अपने शिष्यों को नागदह के जल को निकालने का उपाय बतलाकर वहाँ से वापस लौट गये। उसी समय महाचीन से मंजुश्री बोधिसत्त्व भी स्वयं स्वयम्भू के दर्शन को वहाँ आये और तत्कालीन मण्डपगिरि (आधुनिक नगरकोट) में ठहरे। वहीं उन्होंने नागदह से जल निकालने के विचार से अपनी दो शक्तियों– 'वरदा' और 'मोक्षदा' को फुल्लोच्चगिरि और ध्यानोच्चगिरि (कटुवाल दह के पहाड़) में रखकर उस बीच के पहाड़ को काटकर जल निकालने का मार्ग बनाया। इस मार्ग के बनने के साथ ही नागदह का सारा जल बाहर निकल गया। जिस जगह से जल निकला, उसे अब लोक चकतीर्थ कहते हैं। कहते हैं कि इसी मंजुश्री बोधिसत्त्व ने गुह्येश्वरी की स्थापना की और मंजुपत्तन नामक शहर बसाया, जिसका बाद में सम्राट् अशोक की पुत्री चारूमती ने पुनर्निर्माण कर अपने पति देवपाल के नाम पर उसका नाम देवपत्तन रखा, जिसका लघु रूप पत्तन या पाटन आज भी प्रचलित है।

आश्चर्य नहीं कि प्रागैतिहासिक काल में यह घाटी जल से परिपूर्ण रही हो और कालक्रम से भूक्षरण और दरियाई मिट्टी से पूरी तरह भरकर इस तरह की मनोरम घाटी के रूप में निखर गई हो।

प्राचीन काल में नेपाल की राजधनी कान्तिपुर नाम से विश्रुत थी। पर्वती 'वैशवाली' से पता चलता है कि राजा शंकरदेव से चौथी पीढ़ी में उत्पन्न जयदेव गुणकाम ने सन् 713 ई0 में काठमाण्डू बसाया।

13वीं शताब्दी के राज लक्ष्मीनरसिंह के शासनकाल में यहाँ बाबा गोरखनाथ का एक परम रमणीक काष्ठमण्डप, यानी काठ का मन्दिर बना, जिसकी कलात्मकता की प्रसिद्धि तमाम राज्यों में फैल गई और राज्य के कोने–कोने से लोग उसे देखने को आते रहे। कहते हैं कि इसका निर्माण अकेले एक विशाल कल्पवृक्ष की लकड़ी से हुआ था और यह कार्य ईसवी–सन् 1596 में पूरा हुआ। उक्त काष्ठमण्डप के कारण, यह 'कान्तिपुर' कालान्तर में क्रमशः अपभ्रष्ट होकर 'काठमाण्डू' नाम से पुकारा जाने लगा।

'नेपाल की तश्वीर' नाम के नेपाल–सरकार के प्रकाशन में इस काष्ठमण्डप के बारे में एक रोचक कथा वर्णित है। सन् 1156 ई0 में राजा लक्ष्मीनरसिंह द्वारा यह काष्ठमण्डप घुमक्कड़ साधुओं के आवास के लिए बनवाया गया था। इसी (काष्ठमण्डप) से राजधानी का आधुनिक नाम काठमाण्डू पड़ा। यह पूरा मण्डप कुल एक वृक्ष की लकड़ी का बना कहा जाता है। नेपाली–वंशावली में इसकी कहानी इन शब्दों में दी हुई है:

'इसी (राजा लक्ष्मीनरसिंह) के राजत्व–काल में मत्स्येन्द्रनाथ की रथयात्रा के अवसर पर स्वयं देवतरू कल्पवृक्ष एक मनुष्य के वेष में उस उत्सव को देख रहे थे कि किसी 'बिसेता' ने उन्हें पहचानकर पकड़ लिया और तब तक उन्हें नहीं छोड़ा, जबतक देवतरू ने यह मंजूर नहीं किया कि उनके प्रभाव से वह 'बिसेता' एक ही वृक्ष की लकड़ी से ऐसी इमारत बना सकेंगे।''

काठमाण्डू–उपत्यका में नेपाल के तीन सबसे बड़े नगर बसे हैं। ये हैं काठमाण्डू, ललितपुर (पाठन) और भक्तपुर (भतगाँव)। इनमें से काठमाण्डू तो नेपाल की आधुनिक राजधानी ही है और बाकी दो नगर इसके प्राचीन प्रतियोगी रहे हैं। वास्तव में, एक समय ललितपुर ही इसकी राजधानी मानी जाती थी और भक्तपुर में तो ईसवी–सन् 865 में आनन्दमल्ल ने अपनी राजधानी ही प्रतिष्ठित की थी। इस देश के ये तीनों मनोरम नगर नेपाली कला–कौशल के प्रतीक हैं, जो देखने ही योग्य हैं। किन्तु, काठमाण्डू की बात ही और है।

संदर्भ संकेत :

1. श्री काशी प्रसाद श्रीवास्तव ''नेपाल की कहानी'', पृ0 14
2. नेपाल की तस्वीर '' प्रकाशन विभाग, नेपाल सरकार

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 5-9

सुलगते सवाल

हिन्द महासागर एवं भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा : एक विहंगम दृष्टि

✍ डॉ. लक्ष्मी कुमार मिश्र
✍ डॉ. गोपाल कृष्ण सेमवाल

अमेरिकी नौ–सेना विशेषज्ञ अल्फ्रेड थेयर महान ने 19वी शताब्दी के आरम्भ में हिन्द महासागर की महत्ता को मद्दे नजर रखते हुए कहा था कि "भविष्य के सभी युद्धों का निर्णय, स्थल पर न होकर सागर पर होगा। जो भी देश हिन्द महासागर पर नियंत्रण रखेगा। वह एशिया को पूर्ण रूप से अपने नियंत्रण में रहेगा। यह महासागर सात समुद्रों की कुंजी है। 21वीं शताब्दी में विश्व का भाग्य निर्धारण इसकी समुद्री सतहों पर होगा।" अल्फ्रेड थेयर महान का यह कथन ब्रिटेन, अमेरिका सहित सभी महाशक्तियों के लिये नौ सेना नीति निर्धारित करता आ रहा है।

हिन्द महासागर ने केवल भारत अपितु सम्पूर्ण दक्षिण एशिया, द. पू. एशिया, आस्ट्रेलिया, प. एशिया तथा पूर्वी– दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रों की सामुद्रिक शक्ति को प्रभावित करता है। इनके अतिरिक्त यह महासागरीय क्षेत्र रूस, सं. रा. अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन तथा अन्य विश्व शक्तियों की रुचि का क्षेत्र बन गया है। इनमें से कुछ शक्तियों ने तो अपने समुद्री अड्डे भी इस क्षेत्र में बना लिये हैं। जैसे– डीगो गार्सिया एंग्लो– अमेरिकन समुद्री अड्डे के रूप में चर्चा का विषय बना हुआ है।

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिन्द महासागर अपनी भू–सामरिक स्थिति के कारण विश्व शक्तियों के संघर्ष का क्षेत्र बन गया है। विश्व शक्तियों की प्रतिद्वन्दिता के फलस्वरूप इसके तटवर्ती राष्ट्रों की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है। भारत एशिया का सबसे बड़ा राष्ट्र है जिसे तीन ओर से हिन्द महासागर प्रभावित करता है। चूंकि भारत हिन्द महासागर के केन्द्र में स्थित है और इसकी तटीय रेखायें हिन्द महासागर द्वारा निर्धारित होती हैं, इसलिये हिन्द महासागर का भारत के लिये स्त्रातेजिक महत्व बढ़ जाता है। इसके अलावा प्राचीन काल से भारत का 85 प्रतिशत सामुद्रिक व्यापार हिन्द महासागर द्वारा ही सम्पन्न होता है, इसलिए हिन्द महासागर का भारत के आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक एवं ऐतिहासिक जीवन ये सम्बन्ध रखना स्वाभाविक है।

हिन्द महासागर, प्रशांत महासागर व एटलांटिक महासागर के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा महासागर है। जो 10,400 किलोमीटर लम्बा तथा 9,600 किलोमीटर चौड़ा है। इस महासागर से विश्व के लगभग दो तिहाई देशों के स्वार्थ आपस में टकराते हैं। यह विश्व के 20.6 प्रतिशत समुद्री क्षेत्र में फैला हुआ है और 47 राष्ट्र उसके तटों को छूते हैं। पूरब से पश्चिम की दिशा में यह आस्ट्रेलिया से अफ्रीका तक और उत्तर से दक्षिण में यह केप मोमोरिन से अंटार्कटिका महाद्वीप तक फैला हुआ है। इसका जल आस्ट्रेलिया, एशिया और अफ्रीका तीनों महाद्वीपों को स्पर्श करता है तीसरी दुनिया के अधिकांश राष्ट्र इसके तट पर स्थित हैं। इस विशाल जल क्षेत्र में सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण द्वीप और प्रवालद्वीप हैं। जिसमें मेडागास्कर, मारीशस, अण्डमान निकोबार, मालद्वीव, श्रीलंका, सुमात्रा तथा जावा जैसे बड़े द्वीप बसे हुए हैं।

K.M. Panikkar, Geographical Factors in Indian History के पृष्ठ सं. 57 पर लिखते हैं कि "हिन्द महासागर के पूर्वी एवं पश्चिमी प्रवेश द्वार दो प्रमुख तंग जलडमरू से रक्षित होते हैं, जो बेब एल मेन्डेब (Bab el mandeb) तथा मलक्का (Malacca) जलडमरू मध्य हैं, जिन्हें सरलता से नियंत्रित किया जा सकता है। बेब एल मेन्डेल से लाल सागर में प्रवेश किया जाता है, जो एक आन्तरिक समुद्र होने के

✍ एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा अध्ययन, राजकीय महाविद्यालय पचवस, बस्ती, उ. प्र.
✍ प्रवक्ता, रक्षा अध्ययन, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर (उत्तराखण्ड)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

कारण दूसरी ओर स्थल भाग से प्रभावित होता है। मलक्का के तंग मार्ग प्रशान्त महासागर की ओर रास्ता खोलते हैं।

78 हिन्द महासागर में रूस की उपस्थिति एवं अमेरिका को चुनौती

हिन्द महासागर पर प्रभाव जमाने की दृष्टि से रूस की गतिविधियों को कतई अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इस क्षेत्र में रूस द्वारा नौ–सैनिक आधार सुविधाएं ढूंढने का मुख्य उद्देश्य हिन्द महासागर में अमेरिका के एकाधिकार तथा अमेरिका–चीन गठजोड़ पर अंकुश लगाना है। इसके अलावा चीन से किसी नये संघर्ष से पूर्व अपने दक्षिण पार्श्व को सुरक्षित रखने के साथ ही साथ पूर्वी एवं पश्चिमी मार्गों के बीच जल, थल मार्ग सुचारू रखना है। अतः रूस किसी भी हालात में हिन्द महासागरीय मार्गों की उपेक्षा नहीं करना चाहता है। इसके साथ ही इस क्षेत्र के राष्ट्रों के औद्योगिक विकास, सैन्य एवं नौ–सैनिक शक्ति के विकास में लगी अपनी पूंजी का लाभ लेना चाहता है, जिसमें वह चीन, अमेरिका को बाधक के रूप में देखता है। रूस इस तथ्य से भलीभांति अवगत है कि पाकिस्तान चीन के मध्य मधुरतापूर्ण सम्बन्धों के फलस्वरूप चीन काश्गर, गिलगित, कारांची सड़क मार्ग द्वारा सरलता पूर्वक अरब सागर में पहुंचकर उसे प्रभावित करेगा। रूस की मंशा यह है कि हिन्द महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों में अमेरिका एवं चीन का प्रभाव न बढ़े ताकि इस क्षेत्र की सैनिक व राजनैतिक व्यवस्था उसके अनुकूल रहे।

हिन्द महासागर में अपनी सुरक्षा के नाम पर दूसरी महाशक्ति साम्यवादी रूस ;पूर्व सोवियत संघ ने भी सक्रियता दिखायी। हिन्द महासागर में सन् 1967 ई. में ब्रिटेन द्वारा स्वेजनहर के नौ–सैनिक अड्डों को छोड़ देने की घोषणा के बाद पहली बार सोवियत नौ–सैनिक गतिविधियों की शुरूआत हुई। मार्च 1968 ई. में जब अमेरिका पोलरिस पनडुब्बियों को अरब सागर में ले आया तो सोवियत संघ इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियों को सक्रियता से बढ़ाने लगा। इस क्षेत्र में अमेरिका के पहुँचने के फलस्वरूप सोवियत संघ के दक्षिणी एवं केन्द्रीय क्षेत्रों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया, जो कि उस समय तक अमेरिका के सम्भावित नाभिकीय आक्रमण के दायरे से परे थे। फलतः अमेरिका की इस कार्यवाही ने सोवियत संघ को हिन्द महासागर में युद्धपोतों, पनडुब्बियों तथा इलेक्ट्रॉनिक फिशिंग पोतों को भेजने हेतु मजबूर किया, ताकि पोलरिस पनडुब्बियों का पता लगाया जा सके। तत्पश्चात् सोवियत संघ के पनडुब्बीरोधी हेलीकाप्टर वाहन पोत भी हिन्द महासागरीय देशों के बन्दरगाहों पर लंगर डालने लगे। उस समय 35 से 50 की संख्या में सोवियत युद्धपोत इस क्षेत्र में लगातार गतिविधियां संचालित करते रहे और दक्षिणी यमन का सकोत्रा रूस के युद्धपोतों के ठहरने का महत्वपूर्ण बन्दरगाह बन गया, इसके अतिरिक्त सोमाली, सूडान, सेशलीज में भी उसने नौ–सैनिक सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। परन्तु अमेरिका की तरह हिन्द महासागरीय क्षेत्र में स्थाई नौ सैन्य या सैनिक अड्डा स्थापित नहीं किया ।

सन् 1979 ई. से सोवियत संघ ने हिन्द महासागरीय क्षेत्र में अपनी गतिविधियों को एकाधिक बढाया और इस क्षेत्र में अधिक संख्या में युद्धपोतों को भेजना प्रारम्भ किया। लगभग 20–40 सोवियत जहाज इस क्षेत्र में लगातार उपस्थित रहने लगे। कुछ समय बाद सोवियत संघ ने सोकोतरा द्वीप अदन, होदेदा, कम्पूचिया में कुछ सामान्य नौ–सैनिक सुविधाएं प्राप्त कीं।

हिन्द महासागर में सोवियत संघ की सैनिक उपस्थिति, जो अमेरिका की आक्रमक कार्यवाही का केवल जवाब है सन् 1971ई. से न्यूनतम स्तर पर बनी हुई है। रूस इसमें भारी कटौती करने को तत्पर दिखाई देता है। यदि अमेरिका एवं अन्य तटवर्ती देश भी ऐसा करने को तैयार हो तो हिन्द महासागर में शान्ति स्थापित हो सकता है। वर्तमान में रूस के कई अफ्रीकी–एशियाई देशों के साथ व्यापारिक आर्थिक सम्बन्ध हिन्दमहासागर के माध्यम से बने हुए हैं। भौगोलिक दृष्टिकोण से रूस के लिए हिन्द महासागर का अपार आर्थिक महत्व है।

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

हिन्द महासागर में फ्रांस एवं चीनी उपस्थिति व इरादे

फ्रान्स व चीन हिन्द महासागर की सामरिक स्थिति से भली–भाँति अवगत हैं। फ्रॉस का री–यूनियन द्वीप पर अधिकार है। इसलिए फ्रॉस इस क्षेत्र में कभी–कभार अपनी गतिविधियों को चलाता रहता है। इस क्षेत्र में महाशक्यिों की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखने के लिए उसने दो रूपों में अपनी उपस्थिति प्रदर्शित की है– एक तो खाड़ी क्षेत्र में युद्धोपयोगी शस्त्रों के सौदागर के रूप में। दूसरा अपने सैनिक अड्डों के संरक्षण के रूप में। वर्तमान में फ्रॉस के 12 युद्धपोत हिन्द महासागर में विद्यमान हैं।

हाल ही में चीन भी हिन्द महासागरीय क्षेत्र में अधिक रूचि लेने लगा है। वह इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराके अमेरिका व सोवियत संघ के समकक्षी बनना चाहता है। फलतः चीन ने फारस की खाड़ी तक पहुॅच बनाने हेतु पाकिस्तान के ब्लूचिस्तान प्रान्त में ग्वादर बन्दरगाह विकसित करने के लिए तकनीकी और आर्थिक सहायता प्रदान की है। इससे चीन को ग्वादर बन्दरगाह की सहायता से खाड़ी देशों से आने वाले तेल शिपमेन्ट की सुरक्षा के लिए हिन्द महासागर में महत्वपूर्ण नौ– सैनिक अड्डा भी प्राप्त हो जायेगा। पिछले दो दशकों से चीन ने म्यांमार को मजबूत आर्थिक, सैनिक और राजनीतिक गठबन्धन में जकड़ रखा है। म्यांमार को अराकान के तट पर नौ–सैनिक सुविधाएं देने में चीन तकनीकी सहयोग प्रदान कर रहा है। कोको द्वीप जिस पर बर्मी सम्प्रभुता है चीन को म्यांमार ने लीज पर दिया है तथा चीन ने वहॉं पर एक भारी नौ–सैनिक अड्डा, खुफिया स्टेशन, टोही स्टेशन भी विकसित किया है। इसके अलावा चीन ने बांग्लादेश के चटगांव बन्दरगाह तक नौ–सैनिक पहुँच बनाने के साथ ही वहां के प्राकृतिक गैस भण्डारों पर शिंकजा कसने के लिये एक सड़क मार्ग का निर्माण करना चाहता है जो म्यांमार के रास्ते चीन जाता है। भारत के सीमा के नजदीक चीनी गतिविधियां बढ़ने से सामरिक हितों के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

हिन्द महासागर में शक्ति शून्यता की की स्थिति एवं ब्रिटेन

पुर्तगालियों के विरूद्ध वीरता का प्रदर्शन कर 16 वीं शताब्दी में कुंजलियों का बौद्धिक विशिष्टता एवं कीर्ति चारों दिशाओं में फैली। 17वीं शताब्दी में डच और 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी एवं अंग्रेजी घुसपैठ के विरूद्ध युद्ध लड़े गये। 18वीं शताब्दी में कान्होजी शासक आंग्रे ने अंग्रेजी, पुर्तगाली और डच आक्रान्ताओं के खिलाफ शौर्य एवं पराक्रम का प्रदर्शन कर अरब सागर पर नियंत्रण स्थापित किया। सन् 1729ई. में आंग्रे शासक के मृत्यु के बाद यह नियंत्रण कमजोर हुआ और सन् 1750 ई. में अंग्रेजों की आर्कट विजय के पश्चात पूर्णतः यह नियंत्रण समाप्त हो गया था।

सन् 1805 ई. के ट्रेफाल्गर युद्ध के परिणामस्वरूप 1941 ई.तक अंग्रेजों ने हिन्द महासागर अपने पूर्ण नियंत्रण में रखा। दूसरी तरफ प्रशान्त महासागर एवं दक्षिण चीन सागर में लड़े गये युद्ध को विजित कर जापानियों ने हिन्दमहासागर में अपनी शक्ति का विस्तार किया। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य यूरोपीय शक्तियों ने हिन्द महासागर एवं प्रशान्त महासागर में अपनी शक्ति विस्तार के उद्देश्य से अफ्रो–एशियाई समुद्र तटों पर सैनिक अड्डे स्थापित किये। इन अड्डों में मेडागास्कर में डायगो सुआरेज का फ्रांसीसी अड्डा अबीसीनिया में मसावा का इटालवी अड्डा, इण्डोनेशिया में सोराव्य का डच अड्डा प्रमुख थे। इसी दौरान ब्रिटेन ने हिन्द महासागर के प्रवेश द्वारों, पूर्व में मलक्का और पश्चिम में वाब–अल–मंडेब पर अपने नौ–सैनिक आधार बना लिए थे।

जर्मनी ने हिन्द महासागर पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पूर्वी अफ्रीका के टांगानाइका, जंजीवा और बर्लिन बगदाद रेलमार्ग पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। सन् 1941 ई. में जापानियों के आक्रमण तक यहॉं पर नियंत्रण स्थापित करने की होड़ लगी रही। सन् 1943–44 में जापानी नौ सेना अमेरिकनों से कई बार पराजित हुई। इस दौरान एक बार फिर अंग्रेजों का इस पर नियंत्रण स्थापित हो गया।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने मलाया एवं एशिया के कुछ भागों को अपने नियंत्रण से मुक्त कर दिया। 1947 ई. में भारतीय उपमहाद्वीप 1957 ई. मे मलाया, 1960–70 ई. के मध्य टंगानाइका कीनिया, जंगीवार, अदन, सिंगापुर पर अपना नियंत्रण खोने के बाद अग्रेजी सैनिक अड्डों का अभाव होता गया। आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड से सम्बन्ध एवं हांगकांग की जिम्मेदारी के कारण हिन्द महासागर से अंग्रेजों का लगाव एवं आकर्षण कम नहीं हुआ, किन्तु आर्थिक परेशानियों के कारण इस क्षेत्र में पुनः स्थापना की सम्भावनायें क्षीण हो चुकी हैं। इस तरह यहाँ शक्ति शून्यता (Power Vacnum) की स्थिति पैदा हो गई और संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ इस शक्ति शून्यता को भरने की तैयारी करने लगे। सन् 1991 ई. में पूर्व सोवियत संघ के विखण्डन के साथ ही शीत युद्ध भी समाप्त हो गया। फलतः अमेरिका एक मात्र महाशक्ति के रुप में उभर कर आर्थिक संसाधनों को ध्यान में रखकर इस क्षेत्र में अपनी दूरगामी नीति को लागू करने में जुट गया।

हिन्द महासागर की समस्याएं

1. आतंक का प्रसार।
2. आणुविक प्रसार।
3. मध्यमदूरी के प्रक्षेपास्त्रों का प्रसार।
4. क्षेत्रीय, आर्थिक एवं सैनिक संगठन का अभाव।

हिन्द महासागर एवं भारतीय सुरक्षा

भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा में हिन्द–महासागर का विशेष महत्व है हिन्द महासागरीय क्षेत्र में हुई प्रत्येक गतिविधि का भारतीय सुरक्षा पर सीधा प्रभाव पड़ रहा है। दिसम्बर 1958 ई. में जनरल करिप्पा ने हिन्दी महासागर के सम्बन्ध में कहा था कि "इस महासागर में सामुद्रिक मार्गों व सामुद्रिक व्यापार की रक्षा की दृष्टि से भारत के लिए इस क्षेत्र की सुरक्षा सर्वोपरि है। यदि ये मार्ग भारत के हाथ में आ जाते हैं तो इससे भारत की आर्थिक व व्यापारिक विकास के साथ उसकी स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ जायेगी।"

भारत प्रारम्भ से ही हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने की कोशिश करता रहा है। बाद में भारतीय दृष्टिकोण का स्वागत करते हुए तथा अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए श्री लंका, तंजानियां, इराक, बर्मा, द. यमन एवं मारीशस आदि ने भी इस क्षेत्र में बाहरी महाशक्तियों की उपस्थिति का विरोध करते हुए शान्ति क्षेत्र निर्माण का पूर्ण समर्थन किया है। कुछ देश ऐसे भी हैं जिन्होंने अपना मत पूर्णतः स्पष्ट तो नहीं किया है किन्तु वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र निर्मित किये जाने का समर्थन करते हैं। ये देश हैं–भूटान, नेपाल, सूडान, जाम्बिया, कुवैत, युगाण्डा आदि। दूसरी और पाकिस्तान, आस्टेलिया, न्यूजीलैण्ड, मेडागास्कर, थाईलैण्ड, द. अफ्रीका देश शान्ति क्षेत्र का सिद्धान्ततः समर्थन तो करते हैं। परन्तु साथ ही शान्ति क्षेत्र के सम्बन्ध में आपत्तियां भी कभी कभार उठाते रहते हैं। वास्तविकता यह है कि ये देश अनेक क्षेत्रीय निगुट देशों के विपरीत पश्चिमी खेमों से जुड़े हुये हैं। इसी कारण वे पश्चिमी खेमों द्वारा लगायी गयी पाबन्दियों का विरोध नहीं कर पाते हैं।

ज्ञातव्य है कि भारत के आर्थिक एवं सैनिक हितों की पूर्ति में हिन्द महासागर की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान समय में भारत का लगभग 90 प्रतिशत व्यापार हिन्द महासागर से होता है। भारत अपने उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल तथा अन्य खाद्य संसाधनों एवं मशीनों का आयात इसी महासागर के माध्यम से करता है। भारत के महत्वपूर्ण बन्दरगाह अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी में अवस्थित हैं, ये दोनों हिन्द महासागर के ही भाग हैं। भारत के पास कुल 247 द्वीप हैं जिसमें 204 द्वीप बंगाल की खाड़ी में तथा 36 अरब सागर में स्थित हैं। बंगाल की खाड़ी में सागर द्वीप (गंगासागर) न्यूमूर द्वीप, श्री हरिकोटा द्वीप तथा अरब सागर में लक्ष्यद्वीप आदि महत्वपूर्ण हैं। भारत की स्थलीय सीमा की

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

लम्बाई 15,200 किमी. है तो जलीय सीमा की लम्बाई अण्डमान निकाबार को लेकर 7516.5 किमी. है। भारत के महत्वपूर्ण रक्षा उद्योग एवं कलकारखाने तथा तीन महानगर समुद्र तट पर अवस्थित हैं। भारतीय इतिहास का यदि मूल्यांकन किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि "भारत के ऊपर स्थल मार्ग से जो आक्रमण हुए उन आक्रमणों से भारत के सुरक्षाहित उतने प्रभावित नहीं हुए क्योंकि आक्रमणकर्ताओं ने यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति को स्वीकार कर लिया, लेकिन समुद्री मार्ग से भारत पर जो आक्रमण हुए उनके परिणामस्वरूप भारत 200 वर्षों तक गुलामी की जंजीरों से जकड़ा रहा।" इसलिए यदि भारत को अपनी हितों की दीर्घकालीन सुरक्षा करनी है तो समुद्र पर, विशेषकर हिन्द महासागर पर नियन्त्रण करना आवश्यक होगा।

एशिया में आधिपत्यवादी ध्येयों की पूर्ति और विश्व प्रभुत्व की स्थापना की साम्राज्यवादी हलकों की नीति के कारण यहाँ तनाव में वृद्धि पर भारत गम्भीर चिन्ता व्यक्त करता रहा है। भारत निरन्तर इस बात की मांग करता रहा है कि हिन्द महासागर से नौ सैनिक एवं परमाणु अड्डे हटा लिये जाने चाहिए और इसे शान्ति क्षेत्र घोषित किया जाना चाहिए। सन् 1971 ई. में श्रीलंका की पहल पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने का प्रस्ताव पारित हुआ। हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र में परिवर्तित करने के विचार को साकार करने के लिए तटवर्ती देशों का पहला सम्मेलन 1979 ई. में न्यूयार्क में हुआ, जिसमें सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों तथा हिन्द महासागर के जल क्षेत्र का व्यापक उपयोग करने वाले कुछ अन्य देशों को पर्यवेक्षक के रूप में भाग लेने को आमंत्रित किया गया, लेकिन यह सम्मेलन असफल रहा। इसके बावजूद हिन्द महासागर सम्बन्धी विशेष समिति की सदस्यता में अभूर्तपूर्व वृद्धि देखी गयी। सोवियत संघ, फ्रांस, इटली, नार्वे, प. जर्मनी, कनाडा, साइबेरिया एवं हालैण्ड इसके सदस्य बने कुछ समय बाद अमेरिका और ब्रिटेन ने भी इसमें सहभागिता करने की इच्छा प्रकट की। इसके बाद कुछ समाजवादी देश पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड, बुल्गारिया, यूगोस्लाविया एवं रुमानिया को इसमें स्थान दे दिया गया। सन् 1980 में वृहद सदस्यता वाली समिति की तीन बैठकें आयोजित की गईं। इन बैठकों में यह बात सामने आयी कि अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्र हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करना नहीं चाहते हैं। जबकि भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के मंचों से यह मांग करता आ रहा है कि हिन्द महासागर से नौ सैनिक अड्डे तुरन्त हटायें जाये, जिससे इस क्षेत्र में शान्ति एवं सुरक्षा का वातावरण कायम हो सके।

उपर्युक्त विश्लेषणों के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा का हिन्द महासागर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्तमान समय में हिन्द महासागर भारत के जीवन व भाग्य के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इस पर नियंत्रण के अभाव में जहां भारत की विश्व के समक्ष स्थिति कमजोर होगी, वहीं दूसरी ओर उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा उस देश की दया दृष्टि पर निर्भर करेगी जो हिन्द महासागर पर अपना प्रभुत्व कायम करने में सक्षम होगा।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 10-13

राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्न

ग्रामीण समाज में धर्म और आधुनिक परिवर्तन

✍ **अलका सक्सेना**

ग्रामीण समाज वह समाज है जिसमें अनेक विशिष्टताओं का बोध होता है। इसमें प्रकृति पर निर्भरता, सम्बन्धों में घनिष्ठता एवं छोटा आकार जैसे तत्वों का समावेश होता है। यह आदिम या जनजातीय समाज से आकार में बड़ा लेकिन जटिल समाज (नगरीय समाज) से अपेक्षाकृत छोटा है। इस तरह के समाज को रेडफील्ड ने कृषक समाज भी कहा है। क्योंकि उनका मुख्य पेशा कृषि होता है। अतः ग्रामीण समाज की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान होती है। उसकी राजनीतिक व्यवस्था पर समुदाय–भावना का बड़ा प्रभाव होता है। भारत गाँवों का देश है क्योंकि आज भी हमारे देश की कुल जनसंख्या का लगभग 72 प्रतिशत से अधिक भाग ग्रामीण समाज में ही निवास करता है। अतः भारत में ग्रामीण जीवन का अत्यधिक महत्व है। 'ग्राम' या 'गांव' कोई नवीन शब्द नहीं है क्योंकि आदिकाल से ही इसका प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करने वाले संगठन के रूप में किया जाता रहा है।

ग्रामीण समाज

भारतीय समाज को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है–ग्रामीण समाज तथा नगरीय समाज। प्रत्येक मनुष्य इन दोनों में से किसी एक प्रकार के समुदाय में निवास करता है। ग्राम और नगर मानव जीवन के दो पहलू हैं। गाँवों का प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट का सम्पर्क पाया जाता है जबकि नगरों में कृत्रिमता की प्रधानता होती है। जहाँ मानव और प्रकृति के बीच अन्तर्क्रिया का रूप अधिक निकट, प्रत्यक्ष और गहन है, वह ग्राम है और जहाँ इन दोनों के बीच सम्बन्ध अप्रत्यक्ष और क्षीण है, वह नगरीय स्थिति है। इन दोनों के पर्यावरणों में पर्याप्त अन्तर है। यह पर्यावरण सम्बन्धी अन्तर ही दो भिन्न प्रकार के सामाजिक जीवन को जन्म देता है। ग्रामीण को पुनः दो खण्डों में विभाजित किया गया है– जनजातीय समाज और कृषक समाज। भारतीय समाज का लगभग तीन–चौथाई हिस्सा ग्रामीण समाज के रूप में है। इसलिये यहाँ पर ग्रामीण समाज के ऊपर अध्ययन किया जाना महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य का विषय बन जाता है। किसी भी समाज पर किये जाने वाले अध्ययन न केवल उस समाज की विशेषताओं को सामने लाते हैं, बल्कि इस समाज में व्याप्त समस्याओं का परिचय भी प्रदान करते हैं। ग्रामीण समाज पर अध्ययन के दृष्टिकोण से वर्ष 1955, भारत के लिये उल्लेखनीय रहा है। भारतीय समाज में विगत कुछ वर्षों में घटित होने वाले परिवर्तनों को केवल संस्कृतीकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणा के आधार पर ही नहीं समझा जा सकता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय समाज पर रूस, अमेरिका और अन्य देशों का प्रभाव भी पड़ा है। आधुनिकीकरण में उन सभी आधुनिक परिवर्तनों को शामिल किया गया है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और पारिस्थितिकी के क्षेत्र में घटित हुए हैं। शिक्षा का प्रसार, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, उत्पादन में मशीनों एवं जड़ शक्ति का प्रयोग, परानुभूति, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किकता, नगरीकरण, औद्योगीकरण, अर्जित पदों के महत्व में वृद्धि, वयस्क मताधिकार एवं प्रजातन्त्र आदि सभी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अंग हैं।

उच्च जातियों द्वारा अपनी परम्परात्मक जीवन विधि का त्याग और निम्न जातियों के रीति–रिवाजों को अपनाने की प्रक्रिया को मजूमदार ने विसंस्कृतीकरण का नाम दिया है। श्रीनिवास ने लौकिकीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख भी किया है। लौकिकीकरण में धर्म की पुनर्व्याख्या, बुद्धिवाद और तर्क पर विशेष जोर दिया जाता है। पवित्रता एवं अपवित्रता का स्थान स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियम ले लेते हैं। लौकिकीकरण में अनेक परम्परात्मक कर्मकाण्डों को त्याग दिया जाता है।

✍ सहायक प्राध्यापक, बी0एड0 विभाग, डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर

धार्मिक विचारों की प्रधानता

भारतीय ग्रामीण जीवन में धार्मिक रीति–रिवाजों की अधिक प्रधानता पाई जाती है तथा सदस्यों का अधिकांश व्यवहार एवं कार्य धार्मिक विश्वासों के अनुसार ही होता है। साथ ही, परम्पराओं एवं प्रथाओं की प्रधानता के कारण रूढ़िवादिता भी अधिक पाई जाती है। प्राकृतिक विपत्तियों जैसे बाढ़, अकाल आदि के कारण अलौकिक शक्तियों एवं धार्मिक विचारों का महत्व अधिक हो जाता है। सदस्य सोचते हैं कि इन आपत्तियों से छुटकारा केवल मात्र अलौकिक शक्तियाँ ही दिलवा सकती हैं। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज के सदस्यों के जीवन के चारों ओर परम्पराओं, अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों का साम्राज्य हो जाता है।

ग्रामीण जीवन में धर्म की भूमिका

भारतीय ग्रामीण पर धर्म का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। ग्रामीण सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष धर्म से प्रभावित होता है। उनकी प्रत्येक क्रियाओं को धर्म नियंत्रित करता है। साथ ही धर्म ग्रामीण जीवन में व्याप्त विपत्तियों, निराशाओं तथा कुंठाओं से वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण जीवन में धर्म की भूमिका को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ग्रामीण लोग अपवित्र कार्यों से बहुत दूर रहते हैं क्योंकि वे ईश्वर से बहुत डरते हैं। उनका यह विश्वास है कि धार्मिक जीवन से दूर हो जाना अच्छा नहीं है, इससे ईश्वर अप्रसन्न हो जाता है। इसीलिए ग्रामीण लोग धार्मिक कृत्यों और उत्सवों के अवसर पर बड़ी पवित्रता तथा लगन से भाग लेते हैं। समाज के अधिकतर लोग किसी–न–किसी रूप में धर्म को मानते हैं और धार्मिक विश्वासों का पोषण करते हैं। समाज के असंख्य ग्रामीण व्यक्तियों का व्यक्तित्व व चरित्र धार्मिक विश्वासों के कारण ही रूपान्तरित हो जाता है। धार्मिक विश्वास व आदर्श ग्रामीण जीवन पर इतना प्रभाव डालता है कि धर्म जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है। धर्म स्वयं मानव जीवन के सद्गुणों, आचारों, मूल्यों एवं पाप–पुण्य से सम्बन्धित विश्वासों का संकलन होता है। धर्म मानव के नैतिक व अध्यात्मिक जीवन की अभिव्यक्ति है। अपने धार्मिक विश्वास की सहायता से ग्रामीण अतिवृष्टि, सूखे और महामारी की स्थिति में भी जीवन से निराश नहीं होते बल्कि इन सभी दशाओं में पुनः लग जाते हैं। ग्रामीण धर्म से सम्बन्धित सभी आयोजन, उत्सव, संस्कार और अनुष्ठान ग्रामीणों के विचारों और व्यवहारों को समाज की प्रत्याशाओं के अनुरूप बनाए रखते हैं। यह स्थिति भी व्यक्तित्व के समन्वित विकास में सहायक सिद्ध हुई है। ग्रामीण धर्म का एक प्रमुख कार्य ग्रामीण समुदाय में विभिन्न प्रकार के तनावों तथा संघर्षों को कम करना एवं एकीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना है। धर्म सदैव सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित होता है, व्यक्तिगत स्वार्थों का पूरा करने से नहीं। वास्तव में जब कभी भी व्यक्तिगत स्वार्थों और समूह–कल्याण के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है तब धर्म समूह कल्याण को ही महत्वपूर्ण स्थान देकर सामाजिक एकीकरण में वृद्धि करता है। सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय में धर्म सामाजिक नियन्त्रण का सबसे प्रभावपूर्ण साधन रहा है। वर्तमान युग में प्रशासनिक तन्त्र का अत्यधिक विस्तार हो जाने के पश्चात् भी केवल कानूनों और पुलिस के द्वारा ही ग्रामीण जीवन में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में धार्मिक विश्वास एक मात्र वह आधार है जो ग्रामीणों को आत्म–नियन्त्रण की प्रेरणा देकर उनके व्यवहारों को व्यवस्थित बनाता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जीवन में नियंत्रण स्थापित करने में धर्म ने सदैव से ही एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामीण धर्म एक ओर परिवर्तन को हतोत्साहित करता है तो दूसरी ओर ग्रामीणों में एक ऐसा आत्मबल उत्पन्न करता है जिससे वे अपना विकास स्वयं करने की शक्ति संचित कर सकें। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण धर्म परिवर्तन का प्रत्येक स्थिति में विरोध ही नहीं करता बल्कि यह लोकाचारों, विश्वासों तथा कर्तव्य की भावना को दृढ़ बनाकर अनावश्यक परिवर्तनों पर नियन्त्रण बनाए रखता है। सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में धर्म का महत्व उल्लेखनीय है। धर्म में एक अलौकिक

शक्ति पर विश्वास किया जाता है। हमारे प्रत्येक व्यवहार उसको ज्ञात होते हैं। यदि हम बुरे व्यवहार करते हैं तो वह शक्ति नाराज होती है, इसलिए उस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न रखने के लिए हम धार्मिक नियमों का पालन करते हैं एवं धर्म के द्वारा मान्य क्रियाओं एवं व्यवहारों को करते हैं। यदि कोई इन व्यवहारों और क्रियाओं की अवहेलना करता है तो ईश्वर उसे दण्ड देगा, यह भय उन्हें लगा ही रहता है। यह धार्मिक विश्वास भी ग्रामीण लोगों के व्यवहार को नियन्त्रित करता है। प्रत्येक धर्म कुछ धार्मिक नियमों को बनाता है, जैसे– बौद्ध धर्म अहिंसा की शिक्षा देता है, जैन–धर्म अहिंसा, सत्य और चोरी आदि बुरे कर्मों को न करने की शिक्षा देता है। इस्लाम धर्म अल्लाह के सभी बन्दों को भाई समझने की शिक्षा देता है।

गांव का सामाजिक जीवन भी धर्म पर आधारित होता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण सामाजिक जीवन में संस्कार हैं। मानव जीवन में जन्म से मृत्यु तक अनेक संस्कारों को किया जाता है और ये भी संस्कार धर्म पर आधारित होते हैं। गांव के लोग बड़ी ही निष्ठा और भक्ति के साथ इन संस्कारों का पालन करते हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन पर धर्म का प्रभाव महत्वपूर्ण है। धर्म के अन्तर्गत इतने अधिक उत्सवों, अनुष्ठानों और संस्कारों का विकास केवल इसलिए हुआ जिससे मनुष्य की विनोदी प्रवृत्ति और उसकी सामूहिकता की प्रवृत्ति को संरक्षण मिलता रहे। मनोरंजन के अभाव में मनुष्य का जीवन उसी प्रकार यन्त्रवत हो जाता है जिस प्रकार वर्तमान युग में कम्प्यूटर कार्य तो कर सकता है, लेकिन समाज के लिए स्वस्थ जीवन प्रदान नहीं कर सकता। धर्म ग्रामीणों की विनोदप्रियता की सन्तुष्टि करके उन्हें मानसिक तथा सामाजिक स्तर पर सन्तोष प्रदान करता है। ग्रामीण जीवन में व्यक्तियों को भावात्मक सुरक्षा प्रदान करने के क्षेत्र में धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गाँवों में व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार की अनिश्चितताओं, असुरक्षा तथा अभावों का अनुभव करता रहता है। व्यक्ति का जीवन असुरक्षित है क्योंकि वह अधिकांश प्राकृतिक विपत्तियों को अपने वश में नहीं कर सकता।

इन सभी परिस्थितियों में धर्म ही एक मात्र ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को प्रत्येक स्थिति से अनुकूलन करने में सहायता देती है। इसके फलस्वरूप ही व्यक्ति स्वयं को मानसिक रूप से सन्तुष्ट एवं संगठित अनुभव करता है। धर्म एक विश्वास है लेकिन फिर भी यह व्यक्ति की मानसिकता को स्वस्थ बनाकर उसे जीवित रहने का एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। ग्रामीण धर्म ने व्यक्तियों को प्रकृति से प्रेम करना सिखाया है। प्रकृति की समस्त चीजें उनके लिये पूजनीय हैं। केवल वे पेड़, पौधे, पशु, पहाड़, नदी, तालाब, फसल आदि की पूजा ही नहीं करते हैं, बल्कि उनके जीवन का ये अविभाज्य अंग हैं। उनके कच्ची मिट्टी के मकानों में पशु–पक्षी, पेड़ आदि के चित्र होते हैं। उनकी पूजा की सामग्री में प्रकृति की चीजें होती हैं। उनके वन्दना और घर की सजावट में प्रकृति होता है। प्रकृति उनके लिये साधन भी हैं और साध्य भी हैं।

परम्परागत ग्रामीण समाज के सम्बन्ध स्थानीयता से बंधे होते थे। गांव के निवासी स्थानीय आधार पर अपने सभी कार्यों को निपटाते थे। उनकी आवश्यकताएं भी सीमित ही होती थीं। वे जाति, नातेदारी और अपने गांव के लोगों से सम्पर्क रखकर अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन को बिता देते थे। उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय होती थी। मुद्रा से उन्हें अधिक लगाव नहीं होता था। वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वस्तुओं को एक–दूसरे से बांटकर पूरी कर लेते थे। वे प्रायः कच्चे मकानों में रहते थे। उनके घर खुले–खुले तथा दूर–दूर होते थे। गांवों में चोरी इत्यादि की समस्या भी प्रायः न के बराबर होती थी।

कृषि समाज नये रूप में जन्म ले रहा है। किसानों और ग्रामीण व्यक्तियों में नगरीय चेतना का प्रभाव पड़ा है। वह अनेक धर्म सम्बन्धी बातों को अब अन्धविश्वास कह कर नकारने लगे हैं। वह सामूहिक धार्मिक उत्सवों में भी जाने से बचता है। यदि गया भी तो औपचारिकतावश। इस तरह हमारी प्राचीन लोक संस्कृति से जुड़ा धर्म अपनी जमीन से विलीन होता जा रहा है। निश्चय ही अन्धविश्वास और

रूढ़ियां समाप्त होनी चाहिए पर लोक–धर्म यदि समाप्त हो गया तो ग्रामीण समाज की पहचान भी विलुप्त हो जायेगी। हमारी पहचान हमारी संस्कृति से है पाश्चात्य संस्कृति से नहीं हमें हर कीमत पर ग्रामीण धर्म को सुरक्षित रखना है क्योंकि गांव आधुनिक बनने की दौड़ में शामिल हो गये हैं। अतः ग्रामीण समाज का परम्परागत ढांचा आधुनिक बनने की दौड़ में शामिल हो गये हैं। अतः ग्रामीण समाज का परम्परागत ढांचा परिवर्तित होता जा रहा है। पढ़ लिखकर वे शहरों में नौकरी के लिए जाने लगे हैं। इसी प्रकार भूमिहीन मजदूर भी रोजगार की तलाश में शहरों की ओर आने लगे हैं। गांववासियों का निरन्तर शहरों से सम्पर्क होने के कारण, वे नगरीय विशेषताएं ग्रहण करने लगे हैं। वे अब शहरों की तरह पक्के घर बनाकर रहने लगे हैं। बिजली–पानी की सुविधा मिलने के कारण, वे अब अपने घरों को आधुनिक रूप देने लगे हैं। अब गांवों में टी0वी0, रेडियो, टेलीफोन, फ्रिज, मोटर–साइकिल आदि का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

कभी–कभी धर्म धार्मिक संघर्ष भी उत्पन्न करता है। धर्म ने जहां ग्रामीण समाज में एकीकरण किया है वहां समाज में विघटन एवं पृथक्कीकरण भी उत्पन्न किया है। आज ग्रामीण समाजों में धार्मिक संघर्ष एक बहुत बड़ी समस्या बन गयी है। धर्म के नाम पर हजारों लोग– स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान, मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। सामान्य दैनिक जीवन में भी धर्म के कारण आपसी वैमनस्य बना रहता है। यह धार्मिक संघर्ष भी ग्रामीण जीवन में परिवर्तन लाता है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि गांवों का परम्परागत स्वरूप पूर्णतया विलीन हो रहा है और उस पर नगरीयता का आवरण चढ़ता जा रहा है। अतः अब गांवों को प्राचीन कृषकों की बस्तियां कहना उचित न होगा क्योंकि खेतों के समीप ग्रामीण आवास की प्रवृत्ति अब प्रायः लुप्त होती जा रही है। अब ग्रामीण आवासों में आधुनिक परिवर्तनों की छाप देखने को मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विद्याभूषण एवं डी0आर0 सचदेवा : एन इण्ट्रोडक्शन टू सोसियोलाजी।
2. गिलिन एवं गिलिनः कल्चरल सोशियोलॉजी, मैक्मीलन, लन्दन, 1948
3. मेयर ए0सी0 : कास्ट एण्ड किनशिप इन सेन्ट्र इण्डिया– ए विलेज एण्ड रीजन, 1990
4. प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी 2005
5. Y. Singh : Modernization of Indian Traditions
6. रूप नरायनः कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, सितम्बर–2004
7. एन0आर0 स्वरूप सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक' 2006

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 14-16

राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्न

ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्यायें एवं समाधान

✍ डॉ. सरिता रानी

प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विसंगितयों एवं समस्याओं की विहंगम विवेचना का प्रयास किया गया है और उनके समाधान हेतु ठोस उपाय सुझाये गये है। ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओ की शैक्षिक दशा अभी भी शोचनीय है, जिसका कारण ग्रामीण समाज में व्याप्त अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियाँ, रुढ़िवादिता एवं निर्धनता है। यद्यपि सरकार ने इस दिशा में सुधार के लिये सकारात्मक कदम उठाया है, लेकिन अभी और प्रयास की आवश्यकता है।

स्वतंत्रता के बाद से आज तक के हमारे शैक्षिक प्रयासों के बावजूद हमारे गाँवों की दशा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आया है। हम किसी गाँव का शिक्षा पटल देखें तो उसमें बालिकाओं की शैक्षिक दशा में कोई प्रगति नही दिखाई देती। यह उपेक्षित शिक्षा पटल वास्तव में घोर चिन्ता का विषय है। जहाँ हर जगत महिलायें में पुरुषों के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही हैं वहीं स्त्री शिक्षा की आवश्यकता एवं सामाजिक विकास में शिक्षित महिलाओं का योगदान एक सामाजिक मुद्दा बन गया है। बालिकाओं की शिक्षा का अर्थ है पूरे परिवार की शिक्षा, समाज और राष्ट्र की शिक्षा। मानवीय साधनों का पूर्ण विकास परिवार तथा समाज में सुधार, बच्चें के चरित्र निर्माण एवं देश के उत्थान के लिये बालिकाओं की शिक्षा अनिवार्य है।

साक्षरता के आंकड़ों से पता चलता है कि बालिकाओं की साक्षरता आज भी औसत से कम है। बालिकाओं की शिक्षा की स्थिति आज जो शोचनीय बनी हुई है उसका अहम् कारण लोगों की मानसिकता है, लेकिन सबसे बड़ी कमी बालिकाओं द्वारा बीच में ही शिक्षा छोड़ देना है। यह उपेक्षित शिक्षा पटल वास्तव में घोर चिंता का विषय है और आवश्यकता इस बात की है कि हम उस उपेक्षा का विश्लेषण करें और समाधान की ओर संकेत करें जिससे राष्ट्र के आधार एवं आत्मा के रुप में स्थित इन गॉवों की बालिकाओं की शिक्षा की दुर्दशा में सुधार आ सकें।

बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं के कारण

अभिभावकों की अशिक्षा

गाँवों की अधिकांश बालिकाओं के अभिभावक अशिक्षित है वे शिक्षा को नौकरी का केवल एक साधन मात्र मानते है। वे आज भी 'उत्तम खेती मध्यम बान निकृष्ट चाकरी भीख निदान' की बात में विश्वास करते है। उनकी अशिक्षा एवं गरीबी बालिकाओं की शिक्षा के लिये अभिशाप बन जाती है। इसी कारण वे बालिकाओं को विद्यालय भेजने के बजाय किसी ऐसे कार्य पर भेजना पसन्द करते है जिससे परिवार को आर्थिक सहायता मिल सकें। आज भी हमारे गॉवों में ज्यादातर परिवार ऐसे है जहॉ महिलायें घर की चहारदीवारी के बाहर कदम नहीं रख सकतीं। कुछ अभिभावक यह सोचते है कि लड़कियों को इतना ही पढ़ाना चाहिये कि वे पत्र लिखने व पढ़ने में सक्षम हो जाये इसी कारण वे लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते।

सामाजिक कुरीतियॉ एवं रुढ़िवादिता

हमारे ग्रामीण समाज में अनेक ऐसी कुरीतियाँ व्याप्त है जो बालिकाओं की शिक्षा प्रसार में बाधक हो रही है। जैसे बाल–विवाह, जाति–प्रथा, बालिकाओं की शिक्षा के प्रति उदासीनता, सह–शिक्षा को बुरा मानना, अस्पृश्यता एवं रुढ़िवादिता। जब कम उम्र में विवाह हो जाता है तो बालिकायें अपना

✍ असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, हंडिया पी0जी0 कालेज, हंडिया, इलाहाबाद

अध्ययन बीच में ही समाप्त कर देती है। आज भी ऐसे कट्टरवादी लोग हैं जो अपने घर की बालिकाओं को रुढ़िवादिता के कारण स्कूल नहीं भेजते।

उदासीनता एवं निर्धनता

बालिकाओं के शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का एक प्रमुख कारण जन–साधारण की सामान्य उदासीनता एवं निर्धनता भी है। अभिभावक बालिकाओं की शिक्षा पर धन व्यय नहीं करना चाहते, क्योंकि उनका मानना है कि उन्हें कन्याओं के विवाह में दहेज देने के लिये धन जोड़ना है।

विद्यालयों की संख्या में कमी

ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में विद्यालयों का न होना भी बालिका शिक्षा में बाधक होता है। अभिभावक दूर–दूर स्थित विद्यालयों में कन्याओं को अकेले भेजने का जोखिम नहीं उठाना चाहते। वे कन्याओं की सुरक्षा की दृष्टि से वहाँ नहीं भेजते। इसके अतिरिक्त यातायात के साधनों की भी समुचित व्यवस्था न होने के कारण कन्यायें दूर के विद्यालयों में पढ़ने नहीं जा पातीं।

उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि बालिकाओं की शिक्षा अभी भी पिछड़ी हुई दशा में है और इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक सम्भव विधि से इसका पोषण किया जाये। बालिकाओं की शिक्षा के सर्वतोमुखी उन्नति के लिये निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं :–

1. ग्रामीण क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में बालिका विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिये, प्रत्येक कन्या विद्यालय में कम से कम दो बड़ें कमरे, ब्लैकबोर्ड, नक्शें, शैक्षिक सामग्री, पीने का पानी आदि सुविधायें उपलब्ध करायी जायें।
2. शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बालिका का मौलिक अधिकार होना चाहिये। और प्रत्येक अभिभावक के लिये यह जरुरी होना चाहिये कि वे बालिकाओं को नियमित रुप से विद्यालय भेजें, ऐसा न करने वाले अभिभावकों को दण्डित करना चाहिये।
3. स्थानीय म्यूनिसिपल और प्रान्तीय सार्वजनिक कोशों से बालिकाओं तथा बालकों के विद्यालयों में उचित अनुपात में धन व्यय किया जाये।
4. बालिका विद्यालय को उससे अधिक आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये जितनी कि उन्हें मिल रही है। अतः यह आवश्यक है कि बालिका विद्यालयों के लिये सहायता अनुदान के लिये नियम सरल हों।
5. यह बात अमान्य है कि जो शिक्षा बालकों के लिये उपयोगी हो वह बालिकाओं के लिये भी लाभप्रद सिद्ध हों। अतः यह आवश्यक है कि बालिकाओं का पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकें बालकों से कुछ भिन्न हों। बालिकाओं को साहित्यिक विषयों की अपेक्षा प्रायोगिक विषयों की शिक्षा देना अधिक उपयुक्त होगा। इसके अतिरिक्त उनके लिये गृह–विज्ञान, संगीत, कला, चित्र–कला आदि विषयों को उनके पाठ्यक्रम में रखा जाये। उनके लिये अल्पकालीन एवं उपयोगी पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिये।
6. बालिकाओं में शिक्षा का प्रसार करने के लिये आवश्यक है कि उनको निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाये और शिक्षा अवधि में वृद्धि करने के लिये छात्रवृत्ति देने की योजना कार्यान्वित की जाये।
7. यदि बालिकाओं के निवास स्थान विद्यालय से दूर हैं तो उन्हें विद्यालय आने में बहुत कठिनाई होती है। अतः स्कूल के प्रबंधकों को छात्रावासों की व्यवस्था करने के लिये प्रोत्साहित किया जाये।
8. कन्या विद्यालयों का कार्यभार स्थानीय संस्थाओं को स्थानान्तरित कर दिया जाये। जिन क्षेत्रों की संस्थायें इस कार्य के लिये अन्यमनस्क हों वहाँ विद्यालय का प्रबंध स्वयं सरकार द्वारा किया जाये।

9. स्त्रियों के अध्यापन कार्य के लिये नियुक्त किया जाये। जिन पुरुषों एवं स्त्रियों को शिक्षा में रुचि हो उन्हें कन्या विद्यालयों की प्रबंधकारिणी समितियों में स्थान दिया जाये। ऐसा करने से उनका और उनके द्वारा शेष स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त हो जायेगा फलस्वरुप विद्यालयों के कार्यो में कोई अड़चन नहीं पड़ेगी। महिला समितियों के गठन के माध्यम से बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

10. विकलांग, बेसहारा और गरीब बालिकाओं के लिये अलग से शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये।

11. रुढ़िवादिता एवं धर्मान्धता जैसे विचारों को समाप्त करने पर बल देना चाहिये। बालिकाओं के साक्षरता हेतु राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक कार्यक्रम चलाना चाहिये। इस कार्य में गैर सरकारी संगठनों को भी शामिल किया जाना चाहिये।

12. बालिकाओं के शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना चाहिये। बाल–विवाह एवं विवाह की अनुचित धारणा में परिवर्तन हेतु चलचित्रों माध्यम से प्रयास करना चाहिये।

13. बालिकाओं की शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में परिस्थिति के अनुसार होनी चाहिये। दूरस्थ शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा का तीव्र विकास किया जाना चाहिये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में महिलाओं के समानता के लिये निम्न स्तर निर्धारित किये गयें

1. लड़कियों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा का समयबद्ध–चरणबद्ध कार्यक्रम।
2. 1995 तक 15 से 35 आयुवर्ग की महिलाओं के लिये प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रम।
3. व्यवसायिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी में महिला सहभागिता को बढ़ावा देना।
4. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से नये मूल्यों का विकास।
5. बालिकाओं को बालकों के विद्यालय में भेजना उन्हें मुफ्त पुस्तकें, वस्त्र एवं लेखन सामग्री उपलब्ध कराना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है और महिला एवं पुरुष के बीच साक्षरता के अन्तर को कम करने का भी सफल प्रयास किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयास सरकार द्वारा किये जा रहे है। बालिकाओं को 12वीं कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था छात्रवृत्ति, निःशुल्क पुस्तकों एवं स्कूल ड्रेस की सुविधा मुहैया कराकर बालिकाओं को शिक्षित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। बालिकाओं की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देकर सरकार ने इस दिशा में सकारात्मक कदम उठाया है और सरकार के हाथ सफलता भी लगी है किन्तु इस क्षेत्र में कुछ और प्रयास की आवश्यकता है। संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयासों से बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को दूर करके उन्हें उन्नत बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता एस0पी0 – भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. जौहरी बी0पी0 एवं पाठक पी0डी0 – भारतीय शिक्षा का इतिहास आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. प्रतियोगिता दर्पण मार्च 1999
4. योजना, मई 2007
5. कुरुक्षेत्र मार्च 2008

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 17-18

आधी दुनिया का यथार्थ

स्त्री विमर्श का साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

✍ डॉ. मंजुला श्रीवास्तव

भारतीय साहित्य में स्त्री के विषय में प्रबल विरक्त एवं उत्कृष्ट अनुरक्ति जैसी दो विरोधी विचाराधारा हर काल में रहीं है। एक तरफ वह शक्ति स्वरूपा मानी गई, दूसरी तरफ अबला। संतों ने तो उसे 'माया' कहकर त्यागने की ही सलाह दे डाली। संतों के 'स्त्री निन्दा' अभियान के पीछे उनकी अपनी व्यक्तिगत कुंठा थी। निम्न कुल में जन्म लेने और विपन्न होने के कारण जब उन्हें उचित शिक्षा व गृहस्थ जीवन का सुख न मिला, तो वे प्रतिक्रिया स्वरूप योग साधना व ब्रह्मचर्य के बहाने स्वर्ण व स्त्री की निन्दा करने लगे। वैसे सभी सन्त स्त्री विरोधी नहीं थे। 250 संत संप्रदायों में केवल एक दर्जन संत स्त्री विरोधी थे। शेष या तो तटस्थ हैं या स्त्री के पक्षधर। सिक्ख सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरू नानक देव ने तो 'गुरू ग्रन्थ साहब' में तीन–तीन स्त्री संतों को स्थान दिया है।

भक्त कवियों में स्त्री के सम्बन्ध में मतभेद है। जायसी के अनुसार स्त्री 'खुदा है' तुलसीदास एक तरफ जहाँ स्त्री के प्रति संवेदना प्रकट करते हैं, वहीं दूसरी तरफ उसे जी भर के कोसते हैं। कोसने का कारण उनकी अपनी व्यक्तिगत कुण्ठा ही ठहरती थी। विद्यापति व सूर ने अवश्य जिस वर्जनामुक्त स्त्री समाज की कल्पना की है, वह आधुनिक समाज का सूत्रबीज बनता है। जहाँ तक स्त्री–अस्मिता का प्रश्न है –इस दिशा में कवियित्रियों ने ही महत्वपूर्ण खोज की थी। दक्षिण की 'अंड़ाल' तथा हिन्दी की 'मीरा' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रीतिकाल में कवियों ने नायिका भेद के बहाने एक तरफ तो अपने वासनात्मक उद्‌गार प्रकट किये, वहीं दूसरी तरफ छोटी बड़ी विभिन्न जातियों की नायिकाओं का वर्गीकरण भी किया। जिसके कारण साहित्य में पहली बार मध्य व निम्न वर्ग की कामकाजी स्त्रियों को महत्व मिला।

आधुनिक काल के साहित्य में स्त्री, चिन्तन और सर्जना के बीचों–बीच खाई खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव और निजी आत्मबोध के कारण इस काल में नयी स्त्री चेतना का विकास हुआ। बंगाल और महाराष्ट्र के नवजागरण के फलस्वरूप सती प्रथा, बाल विवाह, वेश्यावृत्ति पर रोक लगी। पर जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने पहली बार 'बाल बोधनी' नामक स्त्री पत्रिका निकाली, तो उसका विरोध यथास्थितिवादियों ने पूरी शक्ति से किया। द्विवेदी काल में उपेक्षित स्त्री पात्रों के प्रति हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों का ध्यान गया और उन्होंने पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया। छायावादी कवियों में – प्रसाद ने स्त्री को 'श्रद्धा', निराला ने 'ज्योर्तिमयी, पंत ने – 'देवी', 'माँ', 'सहचरि', 'प्राण' कहकर सम्मानित किया। महादेवी वर्मा ने कविताओं में जहाँ स्त्री की सकरूण मुद्रा गढ़ी वहीं 'श्रंखला की कड़ियाँ' लिखकर स्त्री के बन्धनों की तरफ सबका ध्यान आकृष्ट किया। माखन लाल चतुर्वेदी, राम कुमार वर्मा, 'नवीन', 'दिनकर', सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी स्त्री के बारे में सहानुभूति से विचार किया। प्रगतिवादी कवियों ने स्त्री को कुछ 'बोल्ड' तो प्रयोगवादियों ने 'वल्गर' ही बना डाला।

आजादी के बाद के साहित्य को हम स्त्री सशक्तिकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कह सकते हैं। प्रेमचन्द्र इस क्षेत्र में पहले ही महत्वपूर्ण कार्य कर चुके थे, उन्होंने अपने पूर्व के साहित्य में चित्रित स्त्री सम्बन्धी दोनों अतियों का विरोध किया। पहली अति शरतचन्द्र ने की थी–जिनके अनुसार स्त्री तभी सहानुभूति की पात्र हो सकती है, जब वह सामाजिक मानदण्डों की अग्नि परीक्षा से गुजर जाये। दूसरी छायावादी अति जिसके अनुसार 'स्त्री' केवल 'श्रद्धा' है। ये दोनों ही विचार स्त्री के प्रति न तो पूर्ण थे न वैज्ञानिक। प्रेमचन्द्र ने स्त्री को सहज मानवीय प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयास किया था।

प्रेमचन्द्र की परम्परा में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाशचन्द्र जोशी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, लक्ष्मी नारायण मिश्र आदि रचनाकारों ने क्रमशः कविता,

✍ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, दयानन्द गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

कहानी व नाटकों में स्त्री की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों का चित्रण करके यह मान्यता दी कि स्त्री को सहानुभूति व सामाजिक न्याय मिलना ही चाहिये।

स्त्री सशक्तिकरण में स्त्री लेखन की सबसे ज्यादा भूमिका है। स्त्रियों ने लेखन के क्षेत्र में प्रवेश कर सिद्ध कर दिया है कि वे इस क्षेत्र में पुरूषों से कमतर नहीं। कहीं–कहीं तो वे उनसे भी ज्यादा सफल हैं–जैसे आंगन के कथात्मक तथ्योद्घाटन में। आज जहां पुरूष रचनाकार वैचारिक प्रतिबद्धता या बाजार के वशीभूत होकर सोद्देश्य विवाद–विसंवादी लेखन की ओर अग्रसर हैं, वहीं स्त्री रचनाकार वर्जना–मुक्त साहित्य रच रही है। सच तो यह है कि हिन्दी कथा साहित्य के जन्म का कारण भी स्त्री विमर्श बना। पंडित गौरी दत्त द्वारा रचित हिन्दी का पहला उपन्यास 'देवरानी–जेठानी की कहानी' (1887) इसका उदाहरण है और हिन्दी की पहली कहानी लेखिका 'बंग महिला' इस कथन का प्रमाण है।

साठ के बाद कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, निरूपमा सेवती जैसी लेखिकाओं ने 'जिन्दगीनामा', 'ए लड़की', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'मित्रों मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'रूकोगी नहीं राधिका', जैसे उपन्यास लिखकर नारी मुक्ति, छात्रावास संवासिनियों के अजनबीपन, यौन मनोवैज्ञानिक, बलात्कार, तथा यूनीसेक्स, की समस्या पर प्रकाश डाला। ममता कालिया ने 'बेघर' उपन्यास में जहां स्त्री के अस्तित्व –संघर्ष पर प्रकाश डाला, तो अलका सरावगी, प्रभा खेतान, राजी सेठ आदि ने मारवाड़ी समाज के विधि–निषेदों पर प्रहार किया। मृदुला गर्ग ने 'चितकोबरा', 'वंशज', 'कठ गुलाब', आदि उपन्यासों में वर्जनाओं से मुक्ति की मांग की।

मैत्रेयी पुष्पा ने व्यक्तिवान स्त्री पात्रों की रचना अपने उपन्यासों 'बेतवा बहती रही', इदन्नमम, चाक, 'अलमा कबूतरी', आदि में की। मन्नू भण्डारी पति–पत्नी के विग्रह से प्रभावित किशोर मनोविज्ञान का चित्रण 'एक इंच मुस्कान', और 'आपका बंटी' में करती है। रेत की मछली (कान्ता भारती) में तो पुरूष सत्ता को ही चुनौती दी गई है। देह शुद्धि के मिथक पर चोट, मंजुल भगत के 'बेगाने घर' मेहरून्निशा के 'कोरबा', चन्द्रकान्ता के 'बाकी सब खैरियत', अपने –अपने कोणार्क में बेवाकी से की गई है। 'एलान गली जिन्दा है' में कश्मीरी स्त्री की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। चित्रामुद्गल का 'आँवा', सूर्यबाला का 'दीक्षान्त' स्त्री शक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। शशिप्रभा ने 'नावें' और 'क्योंकि' उपन्यासों में स्त्री–पुरूष भेद की चर्चा की है। इस दृष्टि से सुभा वर्मा के 'मोहतरमा', 'फ्रीलांसर', 'अनाम रिश्तों के नाम', उपन्यास भी महत्वपूर्ण है।

आज स्त्री लेखन हर विधा में इतनी प्रचुरता से हो रहा है कि सभी का उल्लेख मुश्किल काम है। इसलिये स्त्री लेखन की समवेत स्थापनाओं पर चर्चा करना ठीक होगा। आज का स्त्री लेखन, न स्त्री की पूजा के पक्ष में है, न माडलिंग के। उसके अनुसार स्त्री मनुष्य है देवी नहीं, इसलिये उसे न सौभाग्यवती सुहागन कहो न कुलटा। उसे पूर्ण व मनचाही शिक्षा का अधिकार दो। कन्या जन्म पर शोक व कन्या भ्रूण हत्या बन्द करो। किराये पर कोख का कारोबार बन्द हो। स्त्री को विवाहोपरान्त उपनाम परिवर्तन और पितृ गृह छोड़ने की बाध्यता न हो। 'पति परमेश्वर' की सोच बदली जाये व 'सह अस्तित्व' को महत्व दिया जाये। कुछ लेखिकाओं द्वारा विवाह–व्यवस्था, मातृत्व और पारिवारिक बन्धनों के विरोध के साथ ही अनब्याही मातृत्व की स्वीकृति का अधिकार मांगा गया। इससे भी आगे मुक्त यौन के समर्थन की बात उठी। पर अधिकतर लेखिकायें पश्चिमी नहीं, वरन् भारतीय संदर्भों में आधुनिकता की समर्थक हैं।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010, पेज : 19-21

आधी दुनिया का यथार्थ

नारी अबला या सबला वास्तविक परिदृश्य

✍ डॉ. मिथलेश गुप्ता

समाज के सृजन का श्रेय नारी को है नारी ने पुरूष को जन्म दिया फलतः नारी उसकी जन्मदात्री भी बनी और अंकशयनी भी। जगत जननी ने प्रकृति रूप में पुरूष के सहवास से मानव बीज को अपने सृष्टि गर्भ में धारण करके सृष्टि सृजन का सूत्रपात किया। सृजन के साथ ही नारी पुरूष पर आश्रित हुई और नारी का अस्तित्व पूर्णतया पुरूषाधीन हो गया। पुरूष ने नारी को सुख दिया और सुरक्षा भी। पुरूष ने नारी अस्तित्व को अपने अधीन किया और नारी पुरूष की भोग्या, आश्रित व पराश्रित बनी तथा आज भी संसार के समागम से लेकर सामाजिक जीवन के उद्भव व अभ्युदय के साथ–साथ आज के सुसभ्य व सुसंस्कृत कहे जाने वाले विकसित समाज में भी वह पुरूष के अधीन ही है। इस पुरूष की सुरक्षा के बदले में नारी ने जो मूल्य चुकाया है, उसने सामाजिक समानता के सिद्धान्त की प्राणवायु से जीवित सामाजिक अन्तर्चेतना व अन्तर्रात्मा को झकझोर कर रख दिया है। स्वतन्त्र भारत तथा इससे पूर्व महिलाओं से सम्बन्धित अनेक कानून भी इस दिशा में कोई मदद नहीं कर पाये। परिणामस्वरूप स्थिति बद से बदतर होती जा रही है।

आंकड़ों की दृष्टि से मजबूत परन्तु सामाजिक दृष्टि से कमजोर महिलाओं की हमेशा गरिमामय पहचान रही है। मई महिलाएं इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए सफलता के ऊंचे मुकाम पर पहुंची हैं। आज भी प्रशासनिक सेवा, अन्तरिक्ष, वैज्ञानिक, व्यापार, कॉरपोरेट जगत, खेल तथा राजनीति के क्षेत्र में अग्रणी कुछ महिलाओं के नाम बड़े गर्व के साथ लिये जाते है लेकिन उनकी संख्या व प्रतिशतता बहुत ही कम है। इसके विपरीत ऐसी महिलाओं का एक बृहद सैलाव है जिन्हें आगे बढ़ने के लिये उचित अवसर और अनुकूल वातावरण मिलने की बात तो दूर जीवित रहने के लिये बुनियादी आवश्यकतायें भी नसीब नहीं हो पातीं। आज तक न तो संसद में महिलाओं का 33 प्रतिशत आरक्षण देश की मुख्य धारा से जोड़ने के लिये और ना ही उनके जीवन स्तर को सुधारने हेतु कोई सशक्त प्रयास हुए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 39, समानता का अधिकार इस बारे में सर्वे रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि 48 प्रतिशत लड़कियों का मानना है कि उनके माता–पिता उनसे अधिक तरजीह अपने बेटे को देते हैं। जिसका तात्पर्य है कि परिवार में भेदभाव की जबरदस्त भावना आज भी मौजूद है। समान वेतन अधिनियम 1970 के बन जाने के बावजूद श्रम मंत्रालय के आंकड़े बताते हैं कि आज भी कृषि के क्षेत्र में स्त्री और पुरूषों को मिलने वाली मजदूरी में 27.6 प्रतिशत का अन्तर है। जबकि आज भी खेती में पुरूषों की तुलना में महिलाएं ज्यादा तादाद में मजदूरी कर रही हैं। यह स्थिति केवल भारत में ही है, ऐसा नहीं है। वर्ल्ड वूमन रिपोर्ट में भी कहा गया है कि महिलाओं के समान कार्य करने के बावजूद भी पुरूषों से न केवल 16 प्रतिशत कम वेतन मिलता है अपितु उन्हें पर्याप्त सामाजिक संरक्षण भी उपलब्ध नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) तथा इन्टरनेशनल ट्रेड यूनियन कन्फैडरेशन (I.T.U.C.) की रिपोर्ट में भी यह बात स्पष्ट हुई है।

"महिलाओं के लिए रोजगार का विश्व परिदृश्य मार्च, 2008" नामक रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं को पहले की तुलना में अधिक रोजगार मिला है लेकिन बेरोजगार महिलाओं की संख्या भी बढ़ी है। उन्हें पुरूषों की तुलना में कम वेतन, कम उत्पादन वाले असुरक्षित किस्म के कार्यों में लगाया जाता है लेकिन इसके बावजूद भी महिलाएं अपनी नैसर्गिक क्षमता के कारण सन्तुलन बनाये हुए है। रिपोर्ट में बताया गया है कि अमेरिका में पुरूषों की तुलना में महिलाओं का वेतन 22.4 प्रतिशत कम है।

✍ वरिष्ठ व्याख्याता, बाबू शोभाराम कला महाविद्यालय, अलवर (राज0)

यह अन्तर ब्रिटेन में 20 प्रतिशत, कनाडा में 28.5 प्रतिशत, पैराग्वे में 31.3 प्रतिशत तथा यूरोप में 14.5 प्रतिशत है। जबकि बहरीन में पुरूषों की तुलना में महिलाओं को 40 प्रतिशत अधिक व कतर में 2.2 प्रतिशत वेतन अधिक मिलता है।

विज्ञान तथा तकनीकी के विकास ने सोनोग्राफी के माध्यम से मां के गर्भ में पल रहे गर्भस्थ शिशु के विकास के स्तर का पता लगाने हेतु उपकरण उपलब्ध कराया और यह आधुनिक तकनीकी ही भ्रूण हत्या का कारण बनें, तो इससे अधिक शर्म की बात और क्या हो सकती है? वैज्ञानिक तथा तार्किक सोच रखने वाले लोग भी यदि आधुनिक तकनीकी के जरिये कोख में पल रहे बच्चें का लिंग पता लगाकर गर्भपात के जरिये बेटी को जन्म देने से रोकने की कोशिश करें तो किसी भी संभ्रान्त समाज के लिये इससे बड़ा कोई कलंक नहीं है। राज्य की 2001 की जनगणना के तुलना में यदि 1991 की जनगणना से करें तो 1991 में 1000 लड़कों पर 945, राजस्थान में 916 व अलवर में 914 थी। जो एक दशक बाद ही 927, 909 व 888 रह गई। आंकड़ों द्वारा बेटी और बेटे का फर्क साफ तौर पर उभरकर सामने आता है कुल 32 जिलों में से 21 में इन दस वर्षो में लड़कियों की संख्या घटी है। 1000 लड़कों पर अलग-अलग जिलों में लड़कियों की संख्या गंगानगर में 958, झुन्झूनूं जहां के बारे में कहा जाता है कि सेना को हर घर से सिपाही दिया है। वहां 967, जयपुर जो कि राजधानी भी है यहा पर 972 लड़कियां होना चिन्ता का विषय तो है ही साथ ही महिला सशक्तिकरण के तमाम प्रायसों और दलीलों को झूठला रहा है। अन्य जिलों हनुमानगढ़ 895, बीकानेर 889, चुरू 948, अलवर 887, नागौर 951, जोधपुर 908, करौली 858, दौसा 899, सीकर 951, टोंक 936, उदयपुर 972, चित्तौड़गढ़ 966, बारां 909, बांसवाड़ा, 978, कोटा 895, झालावाड़ 928, भीलवाड़ा 964, बूंदी 908, सिरोही 944, धौलपुर 828, सवाईमाधोपुर 889, बाड़मेर 898 है। केवल राजसमंद 1002 तथा डूंगरपुर 1027 ही दो ऐसे जिले है जहां लड़कियों की संख्या 1000 लड़कों की तुलना में अधिक है। 30 जुलाई के दैनिक भास्कर में 'एक करोड़ भाईयों की कलाई सूनी' शीर्षक राखी के उपलक्ष्य में प्रकाशित समाचार के माध्यम से नेशनल फेमिली हैल्थ सर्वे, सेम्पल रजिस्ट्रेशन सर्वे और जिला स्तर पर प्रत्येक परिवार का सर्वे करने वाली इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पोपूलेशन स्कीम संस्थाओं ने 1991 में हुई जनगणना से लेकर 2005 तक किये गये आंकलन में बताया कि गैर कानूनी ढंग से एक करोड़ लड़कियों के गर्भ में रहते ही हत्या कर दी गई। चण्डीगढ़ की स्थिति तो और नाजुक हैं जहां 1000 लड़कों की तुलना में केवल 773 लड़कियां ही है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत देश में 1000 पुरूषों पर सिर्फ 933 महिलायें है। इस मामलें में चीन बांग्लादेश और पाकिस्तान भी भारत से आगे हैं। रूस, जापान और अमेरिका में तो महिलाओं की आबादी पुरूषों से ज्यादा है। महिला सशक्तीकरण के विपरीत स्त्रियों के प्रति समाज की नकारात्मक सोच को ही परिलक्षित करती है। इस दृष्टि से राज्य लिंगानुपात के मामले में रैड अलर्ट क्षेत्र बन गया है। लिंगानुपात के बढ रहे अन्तर से समाज के भावी स्वरूप की उभरती तस्वीर चिन्ताजनक एवं दुष्परिणामों को आमन्त्रण देने वाली है। कोख में कन्या को मारकर देवी का आह्वान कैसे हो पायेगा? महिला पुरूष लैंगिक अनुपात में पिछड़े राजस्थान में शिशु बालिकाओं को जन्म देते ही मार देने का प्रचलन तो सदियों पुरानी परम्परा है। लेकिन आधुनिक माता-पिता ऐसे भी है जो लड़की का जन्म होने पर उसे चुपके से शिशु गृह के दरवाजें पर छोड़कर कन्या के दायित्व से मुक्ति पा लेते है। समाज कल्याण विभाग के शिशु गृह में पिछले वर्ष गोद दिये बारह बच्चों में से लड़कियां लगभग नवजात होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि अनचाही लड़कियों में कन्यायें अधिक हैं। उनके कपड़े और ऑवल इस बात का द्योतक है कि वे सम्पन्न परिवार के बच्चे हैं। अनाथ अवैद्य बच्चों को गोद जाना पड़े यह तो नियति हो सकती है पर लैंगिक भेदभाव के चलते आज स्वयं अभिभावक ही अपनी बेटियों को जन्म देते ही अनाथ कर देने से बाज नहीं आतें ऐसी लड़कियों की प्रथम या दूसरी सुबह शिशु गृह की देहरी पर ही हो रही है। क्या यही महिला सशक्तीकरण है। अब आप महिला के इन उदाहरणों के बाद उसे अबला कहेंगे या सबला ?

एक अन्य रूह कंपा देने वाली बात नागपुर से 180 कि.मी. दूर अकोला जिले के दधम गांव में साहूकार कर्ज के बदले में मांग रहे बहू, बेटियां। यह सब क्या है? क्या महिलाओं की वास्तविक स्थिति के चित्रण हेतु यह उदाहरण नाकाफी हैं? घरेलू हिंसा कानून 2005 देखने में शादीशुदा स्त्रियों को ताकतवर बनाना प्रतीत होता है लेकिन वह इतना एक पक्षी और असंतुलित है कि उससे दाम्पत्य जीवन ध्वस्त होने की पूरी आशंका है। क्या परिवार नष्ट होने के मायने ही सशक्तीकरण है?

यदि हम महिलाओं से सम्बन्धित अपराधों पर दृष्टिपात करें तो अपराधों का ग्राफ भी पहले से कम नहीं हुआ, बढ़ा ही है। भारत में 50वें मिनट में एक महिला दहेज की बलि चढ़ा दी जाती है। हर 40 मिनट में अपराधिक वारदात होती है। ये महज आंकड़े नहीं बल्कि महिला समाज की जगह–जगह पर दर्द में डूबी चीख और कराहों का सीधा–साधा हिसाब है। किसी ने ठीक कहा है –

सांप के मुद्दसर में वह जहर कहां होता है।
इन्सान जो अदावतों में जहर उगलता है।।

निठारी काण्ड की दिल दहला देने वाली तस्वीर से उद्वेलित होकर बासकृपाल नगर, अलवर के सर्वेक्षण में 60 फीसदी से अधिक लड़कियों ने ऐसे हालातों से कुपित होकर बताया कि उन्हें लड़की होना ही मंजूर नहीं। उत्तर प्रदेश में यह आंकड़ा 85 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 79 प्रतिशत और दिल्ली राजधानी क्षेत्र में 87 प्रतिशत पहुंचा है। पहले तीनों राज्य राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश को जो कि सामाजिक रूप से विकसित समाज है, में भी मानसिक पिछड़ापन बरकरार है। इस दृष्टि से भी महिला सशक्तिकरण की बात, बेमानी व खयाली पुलाव ही कही जा सकती है। राजस्थान सरकार ने महिलाओं के सर्वोन्मुखी विकास के लिए घोषित महिला नीति में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि संविधान द्वारा घोषित महिलाओं के मौलिक अधिकारों का उन्हें लाभ नहीं मिल पाया। अधिकांश महिलायें हजारों सालों से चल रहे दकियानूसी संस्कारों के चलते धार्मिक कट्टरवाद, रूढ़िवाद एवं अन्धविश्वास की शिकार हैं, साथ ही गरीबी से अभिशप्त होकर ज्ञान व विकास की किरणों से वंचित हैं। अहमवादी पुरूष उसे मुख्यधारा से जुड़ने नहीं देता। उसे भय है कि यदि नारी आगे आ गई तो वह स्वयं दोयम दर्जे का हो जायेगा।

सुझाव

यदि हम सही मायने में महिलाओं को सशक्त करना चाहते हैं तो हमें विकास और पिछड़ेपन के मानक बदलने होंगें। कानूनों का केवल निर्माण कर देना ही पर्याप्त नहीं। कानूनों की पालना हेतु जनमानस और जनचेतना पैदा करते हुये उनकी पालना की तरफ व्यावहारिक दृष्टिकोण बनायें। भावी पीढ़ी के लिए, बड़ों के हस्तक्षेप से दूर बच्चों के लिए कुछ संस्थायें, सहारे, सोच व सदाशयता विकसित करने की आवश्यकता है। भावना में बहने की बजाय भावना की दिशा एवं वेग को बदलना होगा। भावना जहां एवरेस्ट फतह करा सकती है वहीं भावना मर्डर भी कर सकती हैं। स्वयं में आत्मविश्वास पैदा करके ही महिलायें अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकती है। इसके लिए उनके लिये जागरूकता शिविर लगाकर उन्हें उनके लिए बने कानूनों की जानकारी देना अत्यन्त आवश्यक है।

22

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 22-25

आधी दुनिया का यथार्थ

इन्दौर शहर की महिलाओं में उपभोक्ता जागरूकता पर : एक अध्ययन

डॉ. रजनी भारती

आज प्रत्येक नागरिक उपभोक्ता के रूप में किसी न किसी समस्या से परेशान है, चाहे वह समस्या पानी, बिजली, टेलिफोन सेवाओं की हो अथवा टैक्सी ड्रायवरों द्वारा अधिक भाड़ा वसूलने की या फिर खाद्य पदार्थों में मिलावट, इलेक्ट्रॉनिक एवं विद्युत उपकरणों की घटिया किस्म, भ्रामक व अश्लील विज्ञापनों को हो। हर कदम पर उपभोक्ता ठगा जा रहा है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार– "उपभोक्ता वस्तुओं व सेवाओं का खरीददार होता है" इस रूप में वह जन्म से ही उपभोक्ता होता है और जैसी ही वह जन्म लेता है उसके उपभोग की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। उसे जीवन भर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भोज्य पदार्थ, वस्त्र, साबुन, तेल, दवाईयां आदि वस्तुओं की आवश्यकता होती है जिसे वह बाजार से खरीदता है। बाजार से खरीदते समय व्यक्ति की यह अपेक्षा रहती है कि उसे सही गुणवत्ता, सही माप व सही कीमत में वस्तुएं प्राप्त हो ताकि उसके धन का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। आधुनिक समय में जब बाजार वैश्वीकरण के दौर से गुजर रहा है, तब उपभोक्ता के सामने उत्पादों व सेवाओं के चुनाव के असीमित अवसर है। ऐसी स्थिति में खरीददारी संबंधी विवेकपूर्ण निर्णय– क्रिया अपेक्षाकृत कठिन हो गई है। नई तकनीक जैसे इन्टरनेट, डेबिट कार्ड, एटीएम आदि ने एक ओर उपभोक्ता के जीवन को आसान बना दिया है जबकि दूसरी ओर उसकी आर्थिक सुरक्षा पर खतरा भी बढ़ गया है क्योंकि इस क्षेत्र में भी ठगने के अवसर बढ़ गए हैं। अतः यह आवश्यक है कि इस मुक्त बाजार व्यवस्था और उपभोक्ता संरक्षण के मध्य संतुलन बनाये रखा जाए।

उपभोक्ता की असहायता के मुख्य कारण है :–

- उपभोक्ता संरक्षण कानूनों के बारे में उसकी अनभिज्ञता।
- उपभोक्ताओं में एकता का अभाव
- अपने प्रति होने वाले अन्यायों के प्रति उदासीनता।
- इस बात का ज्ञान नहीं होना कि उपभोक्ता के रूप में उसे कौन से अधिकार प्राप्त है।

सामान्यतः एक छोटे समाज में जहां उत्पादन विक्रेता व उपभोक्ता के मध्य प्रत्यक्ष व मानवीय संबंध होते थे वहीं वर्तमान समय में इन्दौर जैसे शहर में जोकि महानगर का रूप ले चुका है, वहां उत्पादक, विक्रेता व उपभोक्ता के मध्य प्रत्यक्ष संबंध नहीं रह गए हैं। संचार व्यवस्था विकसित होने से जहां इंटरनेट पर भी शॉपिंग की जा सकती है वहां खरीददार व विक्रेता के मध्य संबंध केवल औपचारिक होते है और उत्पादक व विक्रेता महज लाभ हानि के लिए उपभोक्ता के साथ व्यवहार करते है। वह उपभोक्ता के हित की अपेक्षा स्वयं के हित के बारे में अधिक सोचते हैं।

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि उपभोक्ता को उसके अधिकारों के बारे में बताया जाए, उपभोक्ता को संगठित किया जाए, उसे शिक्षित कर उनमें जागरूकता उत्पन्न की जाए व उसमें इतनी हिम्मत पैदा की जाए कि वह अपने ऊपर होने वाले अन्यायों के विरूद्ध आवाज उठा सके। यद्यपि वर्तमान समय में इस दिशा में कुछ प्रयत्न प्रारंभ हो गए है।

आज का उपभोक्ता प्राचीन समय की अपेक्षा उपभोक्ता शिक्षा के माध्यम से अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हुआ है। वह विवेकपूर्ण निर्णयों द्वारा अपनी समस्याओं का निदान करके अपने धन

सहायक प्राध्यापक–अर्थशास्त्र विभाग, शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

का उचित मूल्य प्राप्त करने का प्रयास करता है। किन्तु फिर भी उसे और अधिक सजग होने की आवश्यकता है ताकि अधिक लाभ की चाहत रखने वाले उत्पादनकर्ताओं, भ्रमित विज्ञापनों व चतुर दुकानदारों से अपने आपको संरक्षित कर सके।

अध्ययन के उद्देश्य :– प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है –

- इन्दौर शहर की शिक्षित महिला उपभोक्ताओं में उपभोक्ता जागरूकता का स्तर ज्ञात करना।
- इन्दौर शहर की शिक्षित महिला उपभोक्ताओं में उपभोक्ता फोरम के प्रति कितनी जागरूकता है यह ज्ञात करना।
- उपभोक्ता जागरूकता बढ़ाने के उपायों पर विचार कर सुझाव देना।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन में इन्दौर शहर की शिक्षित महिला उपभोक्ताओं में उपभोक्ता जागरूकता का स्तर ज्ञात करने हेतु प्रश्नावली विधि का उपयोग किया गया। शिक्षित उपभोक्ताओं में उपभोक्ता फोरम के प्रति कितनी जागरूकता है यह ज्ञात करने हेतु उपभोक्ता फोरम से जानकारी ली गई।

यह अध्ययन इन्दौर शहर के 100 शिक्षित उपभोक्ताओं पर किया गया। अध्ययन से प्राप्त जानकारी इस प्रकार है –

तलिका 1– महिला उपभोक्ता की जागरूकता का स्तर

क्र	विवरण	हाँ प्रतिशत में	नहीं प्रतिशत में	कुल
1.	उपभोक्ता अधिकारों की जानकारी है	59	41	100
2.	उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की जानकारी है	56	44	100
3.	सरकार द्वारा किए गए प्रयासों की जानकारी	26	74	100

इस तालिका के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि यद्यपि उपभोक्ता की जागरूकता का स्तर पहले की तुलना में बढ़ा है किन्तु अभी भी 41 से 44 प्रतिशत उपभोक्ताओं में जागरूकता कर स्तर निम्न पाया गया।

तलिका 2– जिला उपभोक्ता फोरम में महिला उपभोक्ता द्वारा दायर प्रतिवादों का विस्तृत विवरण

क्र	संबंधित विषय	वर्ष 2006	वर्ष 2007	कुल
1	बीमा	21	48	69
2	टेलीफोन	09	12	21
3	गृह निर्माण	35	50	85
4	बैंकिंग	49	81	130
5	ट्रांसपोर्ट	07	08	15
6	शिक्षा	03	05	08
7	ऑटोमोबाईल	05	04	09
8	विद्युत मंडल	16	14	30
9	मेडिकल	07	11	18
10	गृह उपयोगी सामान	02	03	05
11	एयरलाइंस	01	03	04
12	पोस्ट ऑफिस		01	01
13	अन्य	06	19	25

उपभोक्ता तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि –

❉ इन्दौर शहर जो कि आज महानगर का रूप ले चुका है वहां वर्ष 2006 में उपभोक्ताओं द्वारा दायर किए गए प्रतिवादों की कुल संख्या 990 थी जिसमें महिलाओं की संख्या 161 थी जोकि लगभग 16 प्रतिशत है एवं वर्ष 2007 में उपभोक्ताओं द्वारा दायर किए गए प्रतिवादों की कुल संख्या 1333 थी जिसमें महिलाओं की संख्या 259 थी जोकि लगभग 19 प्रतिशत है।

❉ महानगर की दृष्टि से इन्दौर शहर में दायर किए गए प्रतिवादों की कुल संख्या काफी कम है। करीब 74 प्रतिशत उपभोक्ता यह मानते है कि व्यवसायियों द्वारा उनका शोषण किया जाता है। किन्तु फिर भी केवल 16 प्रतिशत उपभोक्ता की उपभोक्ता फोरम में शिकायत दर्ज करवाते है।

❉ उपभोक्ता फोरम में शिकायत दर्ज करवाने वालों में इन्दौर शहर की शिक्षित महिला उपभोक्ताओं की संख्या पुरूषों की तुलना में काफी कम है।

❉ इन्दौर शहर में वर्ष 2006 की तुलना में वर्ष 2007 में उपभोक्ताओं द्वारा 343 शिकायतें अधिक दर्ज करवाई। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि उपभोक्ताओं में कुछ हद तक जागरूकता बढ़ी है किन्तु फिर भी वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुए यह कम है।

❉ उपभोक्ता फोरम में दर्ज शिकायतों में सबसे अधिक शिकायतें बैंकिंग की है, उससे कम गृह निर्माण की है व उसके बाद बीमा की है। सबसे कम शिकायतें पोस्ट ऑफिस की है।

उपभोक्ता जागरूकता बढ़ाने के सुझाव

❉ विभिन्न विशेषज्ञों से विचार विमर्श द्वारा, समाचार पत्र पत्रिकाओं में दिए गए सुझावों, उपभोक्ता शिक्षा पुस्तिकाओं एवं शोध निष्कर्षों के आधार पर उपभोक्ता जागरूकता बढ़ाने के सुझाव इस प्रकार है –

(1) शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपभोक्ता जागरूकता और महिला सशक्तिकरण में चोली दामन का साथ है, क्योंकि उपभोक्ता व्यवहार अध्ययन से पता चलता है कि क्रय संबंधी निर्णय महिलाएं ही लेती हैं।

(2) श्री एस.एस.सिंह व सपना चड्डा जो कि उपभोक्ता संरक्षण एवं कल्याण के प्रोफेसर हैं, उनके अनुसार– उपभोक्तावाद का महत्वपूर्ण घटक है– उपभोक्ता द्वारा स्व.संरक्षण। एक उपभोक्ता को अपने अधिकारों का ज्ञान रखना चाहिए। किसी प्रकार के शोषण के विरूद्ध आवाज उठानी चाहिए और अपनी शिकायत का समाधान तलाश करना चाहिए। अपने अधिकारों को जानना और उसकी रक्षा करना एक उपभोक्ता का कर्त्तव्य भी है।

(3) श्री सिंह व चड्डा के ही अनुसार, उपभोक्ता आंदोलन का महत्वपूर्ण घटक है, स्वयंसेवी उपभोक्ता संगठन जो उपभोक्ताओं को संगठित करने और उनके हितों की रक्षा करने में जुटे हुए हैं। कुछ विकसित देशों में उपभोक्तावाद, निर्माताओं व सेवादाताओं पर कानूनी, नैतिक और आर्थिक दबाव बनाकर उपभोक्ताओं की सहायता और सुरक्षा करने वाली जोरदार ताकत के रूप में विकसित हो चुका है।

(4) उपभोक्ता नीतियों के विकास के इतिहास में 9 अप्रैल 1985 का दिन काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी दिन संयुक्त राष्ट्र महासभा ने उपभोक्ता संरक्षण के लिए निर्देशों को मंजूरी दी थी तथा सदस्य देशों को कानून बनाकर या नीतियों में बदलाव के जरिए इन्हें लागू करने के लिए राजी करने की जिम्मेदारी संयुक्त राष्ट्र महासचिव को दी गई थी। ये दिशा निर्देश एक व्यापक नीति की रूपरेखा थे जो यह स्पष्ट करती थी कि सरकारों को उपभोक्ता संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए क्या कदम उठाने चाहिए। ये दिशा निर्देश निम्न सात प्रमुख क्षेत्रों में उपभोक्ता संरक्षण के कदम उठाए जाने पर बल देते हैं –

अ. शारीरिक सुरक्षा

ब. उपभोक्ता के आर्थिक हितों का संरक्षण और प्रोत्साहन

स. उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं की गुणवत्ता और सुरक्षा के लिए मानक

द. उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं के वितरण की सुविधाएं

य. उपभोक्ताओं की शिकायतों के निराकरण के लिए व्यवस्था

र. भोजन, पानी और दवाओं के संबंध में व्यवस्था

ल. उपभोक्ता शिक्षा और सूचना कार्यक्रम

आज की भूमंडलीयकृत और खुली अर्थव्यवस्था के दौर में संयुक्त राष्ट्र के यह दिशा निर्देश विभिन्न देशों को उपभोक्ता अधिकारों की सुरक्षा संबंधी प्राथमिकताएं तय करने में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

(5) सन् 1999 में इनमें 'संभलकर उपभोग' धारणा को भी जोड़ा गया। इसका अर्थ है कि आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संचय न करते हुए सादगी पूर्ण जीवन जीना चाहिए ताकि सभी को उसका हक मिल सके।

(6) उपभोक्ता संरक्षण अभियान को प्रभावी और सार्थक बनाने के लिए सरकार, व्यापारिक संस्थानों, सामाजिक संगठनों, स्कूल–कॉलेज आदि शैक्षणिक संस्थाओं और अनुसंधान संस्थाओं के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

(7) सरकार द्वारा चलाए जा रहे उपभोक्ता संरक्षण कार्यक्रम को सफलता तभी मिल सकेगी जब बड़े पैमाने पर आम व्यक्ति इसमें सहभागिता करेगा।

यह कहा जाता है कि एक जागरूक उपभोक्ता किसी भी समाज की बहुमूल्य संपत्ति होता है। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है सामाजिक जिम्मेदारी को समझते हुए उपभोक्ताओं के प्रति पूर्ण समर्पण। यह कार्य सद्भावना के साथ होना चाहिए तभी हमारा समाज रहने के लिए एक बेहतर जगह बना सकेगा।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 26-28

आधी दुनिया का यथार्थ

मुस्लिम महिलाओं की राजनीतिक सशक्तिकरण का एक यथार्थ अध्ययन
(इलाहाबाद जनपद के विशेष संदर्भ में)

✍ डॉ. लक्ष्मीना भारती

इस समय भारत के राजनीतिक गलियारों में महिला आरक्षण की सरगर्मी तेज हो चली है। महिलाओं के 33 प्रतिशत आरक्षण की बात 1996 में चली, लोक सभा में कई बार इस बिल को प्रस्तुत भी किया गया, परन्तु वह आज तक पारित न हो सका। आज भारत में महिलाओं की समान भागीदारी की बात खुले मंच से की जा रही है। पर क्या है इसकी व्यावहारिकता? इसे उसी बात से आंका जा सकता है कि आज भी पुरुष मानसिकता अपनी सत्ता लोलुपता के कारण महिलाओं की राजनीति में पूर्ण सहभागिता को खुले मन से स्वीकार नहीं कर रहा। भारत की राजनीति में महिलाओं की भूमिका अभी भी कोई खास नहीं तथा मुस्लिम महिला वर्ग की राजनीति में भागीदारी अंशमात्र ही है। यद्यपि संविधान के 73वें व 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से स्थानीय निकायों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने के बाद, आज पंचायत, नगर पंचायत एवं नगर निगम के चुनावों में आरक्षित महिला सीटों पर आम व पिछड़े क्षेत्रों की मुस्लिम महिलाओं की भागीदारी तेजी से बढ़ी है, तथापि इन मुस्लिम महिलाओं को इन राजनीतिक संस्थाओं (स्थानीय निकायों) में कार्य करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इलाहाबाद जनपद के स्थानीय निकायों (ग्राम पंचायत, नगर पंचायत, नगर निगम) में प्रतिनिधित्व करने वाली कुल 70 मुस्लिम महिला प्रतिनिधियों का मैंने सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण में इन मुस्लिम महिला प्रतिनिधियों ने कई समस्याओं की ओर संकेत किया। जैसे इन प्रतिनिधियों ने बताया कि अभी भी अधिकांश महिला प्रतिनिधि अशिक्षित हैं या फिर केवल पढ़ना–लिखना जानती हैं। वे उच्च शिक्षा से महरुम है जिसके कारण उन्हें पंचायत के कार्यों को समझने में परेशानी आती है। इसके अलावा इन निकायों में पारस्परिक सहयोग व सद्भावना का प्रायः अभाव पाया जाता है, जिससे कार्य करने में दिक्कतें आती हैं। इन निकायों में दलबंदी एवं गुटबंदी भी पायी जाती हैं जिससे मिलजुलकर कार्य करने में कठिनाई आती है। समाज में प्रचलित बहुत सारी कुरीतियों के कारण भी कार्यों में कठिनाई आती है। पंचायत राज संस्थाओं में महिला जनप्रतिनिधियों की सहभागिता अधिक रचनात्मक और प्रभावी बनाने हेतु प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित किये जाते हैं, पर यह बिडम्बना ही है कि इन प्रशिक्षण शिविरों में सभी महिलायें भाग नहीं लेती हैं और कुछ ऐसी भी महिला प्रतिनिधि हैं जिनके स्थान पर उनके परिवार के सदस्य इन शिविरों में भाग लेते हैं। जिससे महिला प्रतिनिधियों को अपने पंचायत के कार्यों एवं अधिकारों की सही जानकारी नहीं मिल पाती और उन्हें कार्यों को समझने एवं करने में परेशानी होती है। अशिक्षा एवं अज्ञानता के चलते सर्वेक्षण में भाग लेने वाली महिलाओं में से बहुत सारी महिलाओं को विकास योजनाओं के बारे में जानकारी नहीं थी। चूंकि सर्वेक्षण में प्रतिभागी सभी महिलायें विवाहित हैं इसलिए उन्हें दोहरे दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। अतः महिला प्रतिनिधियों को अपने कार्यकलापों में परिवार के सदस्यों की सहायता लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जो स्वाभाविक है। यद्यपि सर्वेक्षण में ज्यादातर महिलाओं ने स्वीकार किया कि उन्हें परिवार का पूरा सहयोग मिलता है, किन्तु कुछ महिलायें ऐसी भी थीं जिन्हें किन्हीं कारणों के चलते परिवार का सहयोग नहीं मिल पाता था, जिसके कारण इन्हें अपनी दोहरी भूमिका निभाने में कठिनाई आती है।

महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण को मजबूत बनाने के उद्‌देश्य से स्थानीय निकायों में दिये गये 33 प्रतिशत आरक्षण के फलस्वरूप महिलायें इन निकायों में चुनकर तो आ गई हैं किन्तु अभी भी कुछ उदाहरण ऐसे दिखाई पड़ते हैं जहां पर पुरुष ही मुख्य भूमिका में नजर आते हैं। वे ही निर्णय लेते हैं और बैठकों में भाग लेते हैं यहाँ तक कि बैठकों के बुलाने का कार्य भी इन्हीं के द्वारा ही किया

✍ असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला महाविद्यालय, फतेहपुर (उ.प्र.)

जाता है, महिलायें सभी निर्णयों पर केवल मुहर लगाने का कार्य करती हैं। ऐसी विजयी महिलाओं को इस बात की जानकारी ही नहीं है कि वे अपने पद पर रहते हुए जनकल्याण के कौन–कौन से कार्य कर सकती हैं। वे सत्ता में आकर भी अपने पति या परिवार के पुरुष अभिभावक के दिशा–निर्देश की मोहताज रहती हैं। अनेक मामलों में उनको कुछ बताया ही नहीं जाता है। केवल निर्णयों से अवगत कराकर उनसे हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं। यद्यपि सर्वेक्षण में भाग लेने वाली अधिकांश प्रतिनिधियों ने अपनी इच्छा और विवेक से स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का दावा किया, जो उनके राजनीतिक सशक्तिकरण को दर्शाता है किन्तु पूर्ण सशक्तिकरण हेतु सभी महिलाओं का अपने विवेकानुसार कार्य करना आवश्यक है। पंचायतों में प्रथम बार भागीदारी करने वाली मुस्लिम महिला प्रतिनिधियों का कहना है कि हम राजनीति में पहली बार चुनकर आये हैं। हमें कोई जानकारी नहीं है। हमें चुनाव में खड़े होने को कहा गया और बस हमें जिताने के लिए भी पुरुषों ने ही मेहनत की तो उनके सहयोग के बिना और पंचायत कार्यों की जानकारी न होने के कारण हम कैसे, क्या कार्य कर सकते हैं? सर्वेक्षण में भाग लेने वाली अधिकांश महिलायें पारिवारिक दृष्टि से राजनीतिक पृष्ठभूमि से संबंधित हैं। महिला प्रतिनिधियों ने बताया कि वे मुस्लिम महिलाओं के प्रतिनिधित्व से संतुष्ट नहीं हैं। इसके पीछे उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी कारणों को दोषी बताया। इनका कहना है कि अभी भी अधिकांश मुस्लिम महिलायें अशिक्षा, गरीबी, अज्ञानता, चेतनाहीन, सामाजिक कुरीतियों की जकड़न में जकड़ी हुई हैं। उन्हें अपने अधिकारों की कोई जानकारी नहीं है, उन्हें जो बता दिया जाता है, जो कहा जाता है, जो निर्देश दिया जाता है, उसी के अनुसार आचरण करना अपना कर्तव्य समझती हैं। उन्हें इस्लाम एवं संविधान में दिये गये अधिकारों की बहुत कम जानकारी है। उन्हें जो मिला उसे ही अपनी नियति समझती हैं और बिना किसी विरोध के जीवन बसर कर देती हैं। उन्हें उनकी दुनिया घर के चहारदीवारी तक ही सीमित नजर आती है। उन्होंने कभी भी खुली हवा में साँस नहीं लिया। अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण वे आज भी पुरुषों पर निर्भर हैं। अपना और बच्चों का भरण–पोषण करने के लिए उन्हें अभी भी पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है। कुछ महिलायें छोटे–छोटे धंधे रोजगार करके पेट भरने का इंतजाम कर लेती हैं मगर अभी भी अधिकांश मुस्लिम महिलायें आर्थिक रुप से काफी कमजोर हैं।

उपर्युक्त कारणों के कारण मुस्लिम महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी काफी प्रभावित होती हैं। अशिक्षा के कारण उन्हें अपने राजनीतिक अधिकारों का कोई ज्ञान नहीं है। साथ ही आर्थिक स्थिति मजबूत न होने के कारण वे इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाती हैं। इस प्रकार ज्यादातर मुस्लिम महिलायें अभी भी राजनीतिक भागीदारी से वंचित हैं। महिला प्रतिनिधियों ने यह भी बताया कि जिन पंचायतों में महिलायें सरपंच हैं और अगर वे अपनी मर्जी से कार्यों का सम्पादन करने का प्रयास करती हैं तो वहाँ के पुरुष सदस्य उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर उन्हें बेदखल करने का प्रयास करते रहते हैं। इस तरह के षड़यत्रों की शिकार होने के बाद महिलाओं की पंचायतों में सशक्त भागीदारी पर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है। अर्थात् राजनीतिक निकायों में अभी भी पुरुष दम्भ के कारण महिला प्रतिनिधियों को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने में परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व करने वाली मुस्लिम महिला प्रतिनिधियों के समक्ष अशिक्षा, सामाजिक पिछड़ापन, जागरूकता एवं राजनीतिक चेतना का अभाव, पुरुष प्रधान समाज जैसी विभिन्न समस्यायें हैं। स्थानीय निकाय महिलाओं को राजनीतिक रुप से इसलिए सशक्त नहीं बना पा रही है क्योंकि इन स्थानीय निकायों में अभिजन एवं दबंग लोगों की पैठ जम चुकी है, इसके अतिरिक्त जो महिला प्रतिनिधि इसमें प्रतिनिधित्व करती हैं वे खुलकर, सशक्त ढ़ंग से इनका प्रतिरोध कर पाने में अभी सक्षम नहीं हैं साथ ही कुछ महिलाओं का प्रतिनिधित्व उनके पति या परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा किया जाता है। महिलाओं को विकास योजनाओं के पूर्ण क्रियान्वयन हेतु नौकरशाहों एवं अन्य पुरुष प्रतिनिधियों का सहयोग नहीं मिल पाता है। इसके विपरीत इन विकास कार्यों में नेता, अफसर रुकावटें पैदा करते हैं, चूंकि अभी भी ज्यादातर महिलायें उच्च शिक्षा से महरूम है इसलिए पर्याप्त ज्ञान के अभाव में वे इन समस्याओं का सही निदान स्वयं ढूंढ पाने में अभी सक्षम नहीं हो पायी हैं। दूसरी ओर ग्रामीणों

एवं नगरवासियों द्वारा दिखायी जा रही उदासीनता भी ग्रामीण एवं शहरी विकास में बाधक बनती जा रही है। पंचायत प्रतिनिधियों का कहना है कि पानी पीने के हैण्डपम्प लगे हैं पर जनता रख–रखाव की जिम्मेदारी नहीं लेती है। इसी तरह शहरों में आम जनता घरों का कूड़ा–करकट सड़कों पर बिखेर देती हैं। सभी सरकार से अपेक्षाएँ तो करते हैं पर स्वयं की जिम्मेदारी से बचते हैं। स्वार्थ–परता बढ़ती जा रही है, विकास कार्यों हेतु जन सहयोग की भावना लुप्त होती जा रही है। जिससे महिला प्रतिनिधियों को विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में कठिनाई आती है।

महिला प्रतिनिधियों द्वारा उपर्युक्त समस्याओं के समाधान पूछे जाने पर सभी महिला प्रतिनिधियों ने शिक्षा को सर्वोपरि रखा। अशिक्षित व्यक्ति न तो स्वयं अपना विकास कर सकता है और न ही समाज व देश का विकास कर सकता है। इसलिए इन निकायों में कार्य करने वाले प्रतिनिधि अगर अशिक्षित होंगे तो भला वह निकाय समुचित ढंग से कैसे कार्य कर सकता है।

इस प्रकार मुस्लिम महिलाओं के समक्ष अभी भी बहुत सारी समस्यायें व्याप्त हैं जिसके चलते वे सही मायने में राजनीतिक रुप से सशक्त नहीं हो पा रही हैं। अतः इस हेतु जरुरी है कि कुछ बातों पर ध्यान दिया जाय जैसे–स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों के लिए न्यूनतम शिक्षा का निर्धारण एवं शिक्षित करने का सकारात्मक प्रयास, प्रशिक्षण व्यवस्था, अधिकारों में वृद्धि, संसाधनों में पर्याप्त वृद्धि, स्थानीय निकायों को मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाना, ग्राम पंचायत कार्यालय का प्रतिदिन खुलना, सहयोग एवं आपसी समन्वय में वृद्धि, भेदभाव, भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही का उन्मूलन किया जाना, ग्राम सभा की बैठकें नियमित करवाना, विकास धारा से दूर रह गये वर्गों को प्राथमिकता देना, योजनाओं का सफल क्रियान्वयन (महिलाओं का विशेष ध्यान रखना और ऐसा न होने पर संरपंच, उपसरपंच को जवाब करके जनपद या जिला पंचायत अधिकारियों को उचित कार्यवाही करनी चाहिए), रोजगार कार्यक्रमों में वृद्धि करना आदि उपायों को महिलाओं एवं स्थानीय निकायों को सशक्त बनाने हेतु अमल में लाया जा सकता है और अंत में समाज एवं उन निकायों में कार्यरत पुरुष वर्ग को अपना नजरिया महिलाओं के प्रति बदलना होगा। उन्हें महिलाओं को अपना सहयोगी समझकर सहारा देना होगा न कि अपना प्रतिद्वन्दी समझकर उन्हें नीचा दिखाना या आलोचना करना। क्योंकि बिना पुरुषों के सहयोग के महिलाओं को सशक्त बनाने का यह अभियान सफल नहीं हो सकता।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 29-31

वैदिक साहित्य में चिन्तन के विविध सन्दर्भ

योग का उद्भव एवं विकास

✍ **डॉ. वन्दना कुलश्रेष्ठ**

महर्षि पतञ्जलि कृत "पातञ्जल योग" योग दर्शन का सर्वप्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आज इसी ग्रन्थ के माध्यम से "योग' प्रचलन में आया है किंतु इसका मूल हमें वेदों में प्राप्त होता है। समग्र विश्व के ज्ञानभण्डार स्वरूप वेदों से कुछ भी अछूता नहीं है। वैदिक संहिताओं से लेकर अत्यंत पश्चातवर्ती पुराणों तक हमें "योग" विषयक संदर्भ प्रचुरता से मिलते हैं। अनेक वैदिक ऋचाएँ प्रत्यक्षतया अथवा परोक्षतः "योग" के विभिन्न पक्षों को उदघाटित करती हैं। समाहित मन, प्राण, साधना आदि "योग" की विभिन्न स्थितियों और प्रक्रियाओं पर ये ऋचाएँ किंचित प्रकाश अवश्य डालती हैं।

ऋग्वेद के 1.18.7, 1.34.9, 10.13.1 आदि मंत्रों को हम "योग" विषयक उद्घोषणा करता हुआ पाते हैं। यजुर्वेद के अनेक मंत्रों में हम समाहित मन और उसके प्रतिफल का सुंदर निदर्शन पाते हैं। यजुर्वेद के 11वें. अध्याय में "योग" की उत्कृष्ट घोषणा की गई है – "युञजते मनऽउत युञजते धियो विप्रा विप्रस्य वृहतो विपाश्चितः"। मंत्र में "युञजते" पद का अर्थ सिद्धयोग मनीषी ऋषि दयानन्द ने "स्थिर करना" किया है। मन को स्थिर करने का भाव "युञ्जते मनः" में है। बुद्धियों को स्थिर करने का भाव "युञजते धिया" में है जबकि मेधावी सद् असद् विवेकवान व्यक्ति "विपश्चितः" शब्द से बोध्य है। यजुर्वेद के 11वें अध्याय का प्रथम मंत्र दृष्टव्य है –

युञजानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः।[1] ऋग्वेदादिभाश्यभूमिका में ऋषि दयानंद ने इस मंत्र मे आए "युञजानः" पद का अर्थ "योगं कुर्वाणः सन् (मनुष्याः) "योग" करते हुए (मनुष्य) किया है।

यजुर्वेद के उपरोक्त पांचों मंत्र (11वे अध्याय के 1–5 मंत्र) "योग" की विस्तृत परिचर्चा करने वाले श्वेताश्वतर उपनिषद् में यथावत् पढ़े गए हैं।[2] में भी हम बीजरूप में "योग" शब्द विद्यमान पाते हैं। "योग" प्रक्रिया में सबसे अहम सोपान "प्राण–विद्या" का वैदिक ऋचाओं में विस्तृत उल्लेख है। वैदिक संहिताओं में प्राण, अपान, ब्यान, उदान और समान प्राणों का बहुशः उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि प्राण एक ही है परंतु कार्य वैभिन्य एवं स्थान, स्थिति और चेष्टा भेद ले इनके नामों में भिन्नता है। यजुर्वेद संहिता में प्राण, अपान, व्यान, उदान का बहुशः उल्लेख है जबकि समान नामक प्राण का यत्र तत्र ही उल्लेख मिला है।[3] अथर्ववेद में प्राण–अपान तथा व्यान–उदान के युगल का अतिशय उल्लेख उपलब्ध होता है –

"प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिष्च या।
व्यानोदानौ वाड.मनस्ते वा आकूतिमावहन्।।[4]
प्राणापानौचक्षुः श्रोत्रमक्षितिष्च क्षितिष्च या।
व्यानोदानौ वाड्.मनः षरीरेण त ईयन्ते।।[5]

वस्तुतः अथर्ववेद में प्राणों का सबसे विस्तृत उल्लेख है। अथर्ववेद में 11वें काण्ड का चौथा सूक्त प्राणविद्या का अनुपम विवरण प्रस्तुत कहता है। इस सूक्त में व्याष्टि से समाष्टि तक प्राण के विभिन्न आधारों एवं कियाकलापों को स्मरण कर नमन किया गया है। सूक्त का प्रथम मंत्र ही प्राण की व्यापकता को रेखांकित करते हुए कहता है कि उस प्राण के प्रति सबका नमन, जिसके वश में यह सब कुछ है। जो समस्त प्राणियों का ईश्वर है और जिसमें यह सब प्रतिष्ठित है : –

✍ प्रवक्ता – संस्कृत, स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय, झाँसी

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।।[6]

यजुर्वेद की एक ऋचा इन प्राणों को ऋषि कह कर संबोधित करती है – सप्तऋशयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।[7] इस मंत्र में सप्तऋषि पद का अर्थ प्रायः सभी भाष्यकारों ने सात प्राण ही किया है। शरीर में विद्यमान प्राणरूप यह ऋषि ही मन–मस्तिष्क को ऋषि रूप में विकसित और प्रतिष्ठापित करते हैं। ऋषि का अभिप्राय है – अन्तर्निहित तथ्यों और रहस्यों को यथावत् जानने समझने की दृष्टि विशेष तार्किक और बौद्धिक उत्कर्ष की चरमावस्था है यह ऋषित्व। ऋषित्व के अभाव में शासत्रोक्त तथ्यों और विधानों का सम्यक् परिज्ञान प्रायः असंभव ही है। योगचर्या के अभाव में ऋषित्व की प्राप्ति असंभाव्य है। अतः स्पष्ट ही है कि योगजन्य प्रज्ञाविवेक से ही वेदमंत्रों में अन्तर्भूत तथ्यों को जाना जा सकता है।

अहिर्बुध्न्य संहिता "योग" के आदि प्रवक्ता के रूप में हिरण्यगर्भ का परिचय देती है। इसके अनुसार "योगानुशासन" एवं "पाशुपत योग" इन दोनों के प्रवर्तक हिरण्यगर्भ हैं। अहिर्बुध्न्य संहिता योग को बहिरंग तथा अंतरंग नामक दो भेदों वाला बताकर इसे यमादि अंगों वाला निरूपित करती है। याज्ञवल्क्य स्मृति[8] और महाभारत[9] "हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः" कहकर हिरण्यगर्भ को ही योग का आदि प्रवक्ता स्वीकार करते हैं। महाभारत के एक स्थल पर इस हिरण्यगर्भ को "द्युतिमान्" और "विभुः" बताते हुए इसे वेदों में बहुशः स्मृत कहा गया है।[10] ऋग्वेद के दशम मण्डल का 121वां सूक्त "हिरण्यगर्भ सूक्त" है। महाभारत द्वारा "द्युतिमान्" और "विभुः" कहा गया हिरण्यगर्भ वस्तुतः ऋग्वेदीय हिरण्यगर्भ सूक्त का ही तेजोमय ब्रह्मा है। अद्भुत रामायण इस हिरण्यगर्भ को जगत का अंतरात्मा घोषित करती है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट ही है कि वैदिक परम्परा "योग" को ईश्वरप्रोक्त ही स्वीकार करती रही है:– "हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा"।[11]

उपनिषदों में हमें इस हिरण्यगर्भ प्रोक्त "योग" का अपेक्षाकृत विकसित रूप प्राप्त होता है, य़द्यपि यह इतना क्रमिक और सुसम्बद्ध नही है जितना योगसूत्रों में। पुनरापि योग" शास्त्र की समस्त रूप रचना उपनिषदों में उपलब्ध है। योगदर्शन का लक्ष्य है – चित्तवृत्ति निरोध द्वारा दृष्टा की स्वस्वरूप में अवस्थिति। उपनिषदों का भी यही लक्ष्य है। मैत्रेयी के समक्ष किया गया याज्ञवल्क्य का आह्वान आत्मविषयक उत्कण्ठा का चरमोत्कर्ष है : –

"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"। उपनिषदों में प्रमुख केन, छांदोग्य, वृहदारण्यक, मैत्रायणी, कौशीतकी तथा श्वेताश्वतर आदि में उपदिष्ट ब्रह्मविद्या योग विद्या से इतर नहीं है। उपनिषदों में हमें स्पष्ट रूप से आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योगांगों के नाम तथा विधि उपलब्ध होती है। यम–नियम के अंगभूत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं सत्यपरक विवरण तो जैसे उपनिषदों के प्राणभूत हैं।

भारतीय दार्शनिक चिंतनधाराओं में योगानुष्ठान को अत्यंत महत्व मिला है। दर्शन ग्रंथों एवं उनके भाष्यों में "योग" प्रमुखता से वर्णित है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से योग व सांख्य दर्शन का युग्म है। य़द्यपि सांख्य दर्शन योग दर्शन की अपेक्षा प्राचीन है किंतु अत्यंत समानता के कारण दोनों को परस्पर पूरक भी समझा गया है। भगवान कृष्ण ने तो भगवद्गीता में स्पष्टरूपेण इन दोनों को पृथक समझने वाले व्यक्ति को बाल बुद्धि ही घोषित किया है – "सांख्ययोगौ पृथक बालाः प्रवदन्ति न पण्डितः।[12] योगशास्त्र में वर्णित आसन, वृत्तियाँ और उनका स्वरूप, उनका विरोध और निरोध का प्रतिफल, पंच क्लेश, वृत्ति निरोध के साधन, अभ्यास और वैराग्य, क्रिया योग, ध्यान और समाधि आदि का वर्णन सांख्य सूत्रों से पर्याप्त साम्य रखता है। कुछ सूत्र तो दोनों शास्त्रों में शब्दशः समान हैं – "स्थिर सुखमासनम्।"[13] "वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः।"[14]

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

न्याय शास्त्र समाधि की सत्कार्यता के लिए यम–नियमों पर विशेष बल देता है। वेदांत दर्शन मन को समाहित करने के लिए ध्यान सहित कई योगांगों का प्रतिपादन करता है। इसके अतिरिक्त हम प्राचीन साहित्य में भी योगानुष्ठान का महती निदर्शन पाते हैं। महाभारत के अनेक प्रकरणों विशेष तथा शांति पर्व, अश्वमेध पर्व तथा अनुशासन पर्व में योग विषयक महत्वपूर्ण सूचनाऐं हैं। महाभारत की अंतर्वर्ती गीता तो ''योग'' विषयक अनेक क्रांतिकारी परिभाषाओं और घोषणाओं का जीवंत दस्तावेज ही है। ''योग'' शब्द को नए–नए संदर्भों में प्रयुक्त कर योगाचार के क्षेत्र और उसके आधारों को जैसा विस्तार और स्वरूप गीता ने किया है वह सचमुच युगांतकारी है। ''योग'' की परिभाषा एवं योगचर्या और उसके अन्तर्निहित तत्वों–तप, कर्म, स्वाध्याय, ध्यान, एकाग्रता, अभ्यास, वैराग्य, आहार विहार, दिनचर्या आदि का जैसा मनोरम, सरस, प्रवाहशील विवरण हमें गीता में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभप्रायः ही है। ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग आदि के रूप में योगचर्या के बहुआयामी रूप का हम गीता में पर्याप्त विस्तार पाते हैं।

पुराणों में भी हमें योग विषयक उल्लेख बहुलता से मिलता है। वायु, शिव, ब्रह्म, गरूड़, विष्णु, अग्नि तथा लिंग पुराण में ''योग'' का विशेषतः वर्णन है। गरूड़ पुराण के चौदहवें अध्याय का ध्यान–योग वर्णन, अग्नि पुराण का कियायोग वर्णन, विष्णु पुराण का यम–नियमादि अष्टांग योग विवरण किसी भी अध्येता को सहज ही आकर्षित करते हैं। वायु पुराण का दशम अध्याय हमें योगांगों से होने वाले हानि लाभ से परिचित करवाता है। इस प्रकार वैदिक काल में ही ''योग'' का उद्भव हो चुका था तथा ''पातञजल योग'' के अतिरिक्त भी यत्र तत्र इसका विकास दृष्टिगत होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. यजु. 11/1
2. अथर्व वेद 19/8/2
3. यजु.– 18.2, 6.20, 22.33, 1.20, 7.27, 13.19
4. अथर्व. – 11.8–4
5. अथर्व. – 11.8.26
6. अथर्व. – 11.4.1
7. यजु.– 34.55
8. यजु. – 12.5
9. यजु. – 12.349.65
10. महाभारत – 12.342.96
11. अद्भुत रामायण – 5.6
12. गीता– 5/4
13. योगसूत्र 2.46 तथा सांख्यसूत्र 3.34
14. योगसूत्र 1.5 तथा सांख्यसूत्र 2.33

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 32-36

वैदिक साहित्य में चिन्तन के विविध सन्दर्भ

पाश्चात्य समीक्षा के परिप्रेक्ष्य में वेद

✍ डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

'वेद' न केवल भारत अपितु विश्व के ज्ञान, विज्ञान सभ्यता एवं संस्कृति का आधार–स्तम्भ हैं। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा' (यजुर्वेद 7.14) 'सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनुस्मृति 2.7), वेदमेव सदाभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः (मनु0 2.166), वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनु0 2.6) इत्यादि सूक्तियाँ वेद के विश्वज्ञानमय होने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। सदियों से वेद के अनन्त एवं अक्षय ज्ञान–निधि ने न केवल भारतीय मनीषियों अपितु पाश्चात्य विद्वानों को भी अध्ययन व समीक्षा हेतु अपनी ओर आकृष्ट किया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों को अक्षय ज्ञान का स्रोत एवं मानवमात्र के लिए अभ्युदय का आधार माना है। वेदों की ज्योति से ही समस्त विश्व आलोकित हो रहा है तथा इसी से सभी का कल्याण सम्भव है। महर्षि यास्क का कथन है कि वेदों में जो गूढ़ तत्त्व छिपे हैं, उन्हें ऋषि या तपस्वी ही जान सकते हैं – 'नहि एषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा'। निरुक्त 12.13

पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी मान्यताओं के अनुरुप वेदों का अध्ययन करके अंग्रेजी, फ्रैंच, तथा जर्मन आदि भाषाओं में अनेक ग्रन्थ लिखे। इनमें मैक्समूलर, रोजन लुडविग, ग्रासमैन, रॉथ, ओल्डेनबर्ग, बैवर, कोलब्रुक, विलियम जोन्स, वर्नफ, विल्सन, कीथ, ब्लूमफील्ड, ह्विटनी, मैक्डॉनल, जैकोबी, ग्रिफिथ, बोहतलिंग, प्रो0 रेनू, हिलब्राण्ट प्रो0 लांगल्वा, डॉ0 केलण्ड, प्रो0 इंग्लिंग, प्रो0 स्टेनकोनो, प्रो0 जेगोंड, तथा गेल्डनर अधिक प्रख्यात हैं। इनमें से प्रायः सभी ने वेदों के देवता, वैदिक धर्म, वरुण देवता, वैदिक व्याकरण, वैदिक छन्द इत्यादि वेद सम्बन्धी विषयों पर अपनी–अपनी भाषा में ग्रन्थ रचना कर अपने विचार व्यक्त किये। सन् 1784 में सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान वैदिक अनुशीलन की ओर आकृष्ट हुआ। इसका सम्पूर्ण श्रेय सर विलियम जोन्स को है। जिन्होंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' की स्थापना की।

पाश्चात्य विद्वान् विकासवाद के प्रबल समर्थक थे। यही कारण है कि पाश्चात्य वैदिकी समीक्षा में उनका विकासवाद सम्बन्धी पूर्वाग्रह स्पष्टतया झलकता है। विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार आदिकाल में मानव अविकसित अवस्था में था। पाश्चात्त्यों का ऐसा मानना है ऐसी अवस्था में वेदों की विचारधारा में किसी उच्चस्तरीय बात की कल्पना करना व्यर्थ है। आदिमानव सूर्य–चन्द्र–पृथ्वी–अग्नि–वायु आदि शक्तियों को आश्चर्यचकित होकर देखता था और इन सबको देवता मानकर इनकी पूजा करता था। इस दृष्टि से मैक्समूलर के अनुसार वेदों में 'एकेश्वरवाद' का विचार हो ही नहीं सकता जबकि ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'एकेश्वरवाद' का प्रतिपादन स्पष्टतः किया गया है–

'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति–अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

ऋग्वेद– 1.164.46

अथर्ववेद में भी द्रष्टव्य है –

'स एष एक एकवृद् एक एव। अथर्ववेद 13.4.12
'न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थी नाप्युच्यते। अथर्व0 13.5.16

✍ एसो0 प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत–विभाग, रामस्वरुप ग्रामोद्योग परास्नातक महाविद्यालय पुखरायाँ, रमाबाई नगर

अर्थात् ईश्वर तो एक ही है, अग्नि आदि तो उस एक ईश्वर के ही भिन्न–भिन्न नाम हैं। पाश्चात्त्यों का तर्क है कि यह मन्त्र तो वेदों में बहुत बाद में सम्मिलित किया गया है। वस्तुतः वे इसे मानने को इसलिए तैयार नहीं हैं क्योंकि एकेश्वरवाद विकासवाद के विपरित धारणा है। इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द का कहना है कि पाश्चात्त्य विद्वानों के मन में विकासवाद के प्रति इतना प्रबल आग्रह है कि यदि वेदों का कोई अर्थ विकासवाद की पुष्टि नहीं करता तो वे या तो अर्थ को ही तोड़मरोड़ देते हैं या मन्त्र को ही प्रक्षिप्त घोषित कर देते हैं। इस प्रकार का चिन्तन वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि पाश्चात्त्य विद्वानों ने वेदों पर बहुत परिश्रम किया तो भी वे उनमें निहित ज्ञान की थाह न पा सके। सच्चाई तक पहुँचने में विकासवाद के अतिरिक्त उनका पूर्वाग्रह और स्वार्थ भी आड़े आया। वे ब्रिट्रिश साम्राज्य को स्थायी बनाने के लिए भारतवासियों को ईसाई बनाना आवश्यक समझते थे। भारतीय स्वाधीनता के प्रथम युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमंत्री लॉर्ड पामर्स्टन ने घोषणा की' –

"It is not only our duty but in our won interest to promote the deffusion of christianity as far as possible throughout the length and breath of India."

अर्थात् यह हमारा कर्त्तव्य ही नहीं अपितु हमारा अपना हित इसी में है कि भारत भर में ईसाइयत का प्रचार–प्रसार हो।

लॉर्ड पामर्स्टन के पूर्ववर्ती ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के चेयरमैन मिस्टर मेंगल्स ने ब्रिट्रिश पार्लियामेन्ट में कहा था –

"Providence has entrusted the extensive empire of India to England in order that the banner of christ should wave triumphant from one, end of India to the other. Everyone must exert all his strength that three may be nodilatorness on any account in continuing in the country the grand work of making all Indians christians."

अर्थात्– 'विधाता ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इंग्लैण्ड के हाथों इसलिए सौंपा है कि वह ईसामसीह का झण्डा इस देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक फहराये। प्रत्येक ईसाई का कर्त्तव्य है कि वह समस्त भारतीयों को अविलम्ब ईसाई बनाने के महान् कार्य में पूरी शक्ति के साथ जुट जाए।

यद्यपि जहाँ एक ओर भारतीय विद्वानों ने वेदों को नष्ट होने से बचाया वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों को भारत में ही सीमित न रहने देकर सम्पूर्ण विश्व के अध्ययन का विषय बना दिया। पाश्चात्य विद्वानों ने सायण का अनुगमन किया तथा उन्होंने नैरुक्त– प्रक्रिया की उपेक्षा की। सायणाचार्य ने वैदिक वाङ्मय के क्षेत्र में महनीय कार्य किए। उन्होंने न केवल संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा आरण्यकों के भाष्य किये बल्कि अनेक विषयों पर बहुत से प्रौढ़ ग्रन्थों की रचना की। उनके वेद भाष्य में व्याकरण आदि का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। परन्तु कर्मकाण्ड के भंवर में फंसकर उन्होंने वेदार्थविषयक मूलभूत सिद्धान्तों की अवहेलना कर दी। वस्तुतः शासनव्यवस्था का प्रभाव छोटे–बड़े सभी पर पड़ता है सायण विजय नगर राज्य में प्रधान अमात्य के पद पर नियुक्त थे। वह यज्ञ प्रधान युग था और यज्ञों में उन दिनों हिंसा अनिवार्य मानी जाती थी। उन्हीं तथ्यों के आधार पर उन्होंने वेद भाष्य किये। त्रिविध प्रक्रियाओं में याज्ञिक प्रक्रिया भी एक है, तदनुसार भी अर्थ होना चाहिए। परन्तु सायणाचार्य ने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का परित्याग कर केवल याज्ञिक प्रक्रिया परक ही अर्थ तर्क किया। वेद के आशय को बलपूर्वक कर्मकाण्ड के संकुचित सांचे में ढालने की चेष्टा की। जिससे वेद की दिव्य पवित्र वाणी का गौरव जाता रहा। ऋग्वेद का एक मन्त्र है –

"यद्ङ.ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः।।

अर्थात् हे प्रियतम देव ! शरणागत का कल्याण करना, तुम्हारा अटल नियम है।

मन्त्र के इस भावपूर्ण अर्थ का दर्शन न करके सायण यज्ञमान के 'वित्तगृह प्रजा पशु रूपं कल्याणम्' की कामना करते हैं। स्पष्ट है कि यज्ञपरक मिथ्या धारणा ने सायण को वेद मन्त्रों के यथार्थ तक पहुँचने ही नहीं दिया। इसी कारण सायण का अनुगमन करने वाले पाश्चात्त्य विद्वान् भी वेदमन्त्रों के यथार्थ तक नहीं पहुँच सके।

मैक्समूलर ने भी कहीं–कहीं वेद को समझने में भूल की है। उसका मानना था कि गड़ेरियों के इन गीतों में (वेदों में) कोई अच्छी बात मिलने से रही। इसलिए जो कोई वेदों को पढ़ेगा उसे अपने आप उनसे घृणा हो जायेगी। वेद के प्रति उसकी धारणा इसी से व्यक्त हो जाता है कि वह वेदों के सन्दर्भ में लिखता है[2] –

"That the veda is full of childish, silly and monstrous conceptions, who whould deny?"

अर्थात् वेद बचकाना, मूर्खतापूर्ण और राक्षसवत् विकराल, नितान्त असंगत बातों से भरपूर है – इससे कौन इनकार कर सकता है ?

वेद वास्तव में ऐसे ही हैं –यह सिद्ध करने के लिए मैक्सूलर ने वेदों का भाष्य किया। वेद के अनुसंधान और अनुवाद कार्य में लगने का क्या उद्देश्य था?यह उसके अपने पत्नी के नाम लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाता है[3]–

" This edition of mine and the translation of the veda, will, here after, till to a great extent on the fate of India. It is the root of their religion and to show them what the root is'I feel sure in the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years."

'अर्थात् 'मेरा यह संस्करण और वेद का अनुवाद भारत के भाग्य को दूर तक प्रभावित करेगा। यह उनके धर्म का मूल है और उन्हें यह दिखा देना है कि वह मूल कैसा है, गत तीन हजार वर्षों में इससे उत्पन्न होने वाली सब बातों को समूल उखाड़नें का एक मात्र उपाय है।'

सचमुच विदेशी विद्वानों ने भारतीय न होते हुए भी संस्कृत साहित्य में, विशेषतः वैदिक वाङ्मय में, अनुकरणीय उद्योग किया, परन्तु जातीय पक्षपात् तथा शास्त्रविषयक गहरा ज्ञान न होने से वे वैदिक साहित्य को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत न कर सके। वस्तुतः उनका उद्देश्य ही भारतीयों में अपने धर्म, संस्कृति, साहित्य, सभ्यता तथा परम्पराओं के प्रति अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न करना था। इस दृष्टि से उन्हें सायण का भाष्य अपने अनुकूल जान पड़ा। उन्होंने वेदादि शास्त्रों में जो अनुवाद किये वे प्रायः सायण के आधार पर ही किये और इस प्रकार वेदों को गड़ेरियों के गीत और जंगलियों की बड़बड़ाहट सिद्ध करने में सफल रहे।

मैकडॉनल जो मैक्समूलर के प्रिय और प्रमुख शिष्यों में है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Vadie Reader for student' की भूमिका में लिखा है– 'ऋग्वेद के दस मण्डलों में से आदि के आठ मण्डल पहले लिखे गये फिर नौवाँ और अन्त में दसवाँ। पहले के आठ मण्डल एक इकाई बनाते हैं।'' फिर मैक्समूलर महोदय का यह कहना कि ''इदं मित्रं ...... एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'' यह मन्त्र प्रक्षिप्त या बाद में डाला गया है, ये कैसे? जबकि यह मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल (1.164.46) का है। कहीं इसलिए तो नहीं कि यह पाश्चात्यों के विकासवादी विचारधारा में फिट नहीं बैठता?

आधुनिक भारतीय आचार्यों में स्वामी दयानन्द ने नैरुक्त– प्रक्रिया का आश्रय लेकर वेदों की नई मीमांसा की। वस्तुतः वेद 'विश्ववारा प्रथमा संस्कृति' व भारतीय विचारधारा के आधारभूत स्तम्भ हैं। वेदों

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

की रचना शैली अत्यन्त अद्‌भुत है। एक–एक ऋचा अनेक अर्थो का प्रतिपादन करती है। जिस प्रकार उससे आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है, उसी प्रकार उससे आधिभौतिक तथा आधिदैविक सत्य भी प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की इस अद्‌भुत और अनन्त रत्नगर्भा निधि को उस पर पड़ी हुई धूलि और गर्द– गुबार को झाड़–पोंछकर विशुद्ध रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया। आधुनिक युग के सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् श्री माधव पुण्डलीक[4] ने वेदों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण तथा उनके भाष्य के महत्व की चर्चा करते हुए लिखा है – 'गत शताब्दी के मध्य में वेदों को पुनः भारत के राष्ट्रीय जीवन में सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रतिष्ठापित करने में स्वामी दयानन्द का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने ज्योतिर्मय वेदों के सम्बन्ध में भ्रान्तियों और पक्षपातपूर्ण पाश्चात्त्य विचारधारा का प्रत्याख्यान करके प्रत्येक भारतीय को प्रेरणा दी कि वे सत्य को सीधा देखने का प्रयत्न करें।

मैक्समूलर भी दयानन्द की वेद विषयक क्रान्ति से प्रभावित हुआ और अपने अन्तिम ग्रन्थ 'The six systems of Philosophy' में स्वीकार किया कि वेदों में इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि सभी एक परमेश्वर के नाम हैं। साथ ही 'Biographical Essays' में स्वामी दयानन्द पर लिखे निबन्ध में यह भी स्वीकार किया कि स्वामीदयानन्द की दृष्टि में वेदों में पूर्ण सत्य का प्रतिपादन किया गया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी व्याख्या द्वारा औरों को भी विश्वास दिलाने में सफलता प्राप्त की कि जो कुछ भी ज्ञातव्य है, जिसमें इंजन, बिजली, तार–बेतार आदि भी सम्मिलित हैं, वर्तमान विज्ञान के इन सब नवीनतम आविष्कारों का भी वैदिक ऋषियों को ज्ञान था।

स्वामी दयानन्द के भाष्य से प्रभावित होकर श्री अरविन्द ने लिखा है कि वेदों का अन्तिम तथा सम्पूर्ण भाष्य चाहे कुछ भी हो, ऋषि दयानन्द वेदों के यथार्थ स्वरूप के प्रथम अन्वेषक के रूप में सदा प्रतिष्ठित रहेगें। दीर्घकाल के अज्ञान और भ्रान्ति से उत्पन्न अव्यवस्था तथा अन्धकार के बीच उन्होंने सत्य का साक्षात्कार कर उसे संसार के सामने प्रस्तुत किया। समय ने सच्चाई को जिन तालों में बन्दकर रखा था, उन्होंने, चाबियाँ पाकर एक झटके के साथ उसे सबके लिए खोल दिया।[5]

पाश्चात्य विद्वानों में प्रो0 रॉथ एक ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने सायण के व्याख्या–पद्धति को अपनाने से इनकार किया। जिनका नारा था "Down with sayan" अर्थात् सायण को मत मानो। उन्होंने बोहतलिंग के साथ मिलकर संस्कृत महाकोश' की सात खण्डों में रचना की। वर्तमान में वेदार्थ के सम्बन्ध में यदि देखा जाय तो यह सब कुछ होने पर भी कुछ अपवादों को छोड़कर, अभी तक मध्यकालीन पौराणिक आचार्यों तथा आधुनिक पाश्चात्त्य विद्वानों का दृष्टिकोण ही मान्य है। प्रसिद्ध विद्वान् एवं शिक्षाशास्त्री डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी ने अपने 'गणेश' नामक नामक पुस्तक में यजुर्वेद के प्रसिद्ध मन्त्र 'गणानान्त्वा0' के सन्दर्भ में उव्वट और महीधरकृत भाष्य देखकर लिखा है कि इस अर्थ को देखकर आश्चर्य होता है परन्तु दूसरा अर्थ सम्भव नहीं। वे इस मन्त्र से अगले मंत्रों के भाष्यों पर लिखते हैं–''भाष्यकारों ने जो अर्थ किया है, वह कपोल कल्पित नही है।'' इससे स्पष्ट है कि वे उव्वट और महीधर के भाष्यों को ठीक मानते थे। इस आधार पर वे वेदों में अश्लीलता को मानते थे। स्वामी विद्यानन्द जी ने अपने वेदार्थ –भूमिका नामक पुस्तक में लिखा है कि मैंने इस विषय में उन्हें एक पत्र लिखा। जिसमें मैंने उव्वट और महीधर के भाष्यों में दोष दिखाते हुए उक्त मंत्र का युक्ति संगत तथा प्रमाण समन्वित अर्थ भी लिखकर भेजा। स्वामी विद्यानन्द जी ने लिखा है कि इसके उत्तर में उन्होंने मुझे लिखा– ''जहाँ तक गणानान्त्वा0 वाले मन्त्र का सम्बन्ध है, सम्भव है उसका वही अर्थ है जो आपने लिखा है। परन्तु ....प्रत्येक ऐसे मन्त्र की जिसका सहज अभिधेयार्थ हमें अच्छा न लगता हो, ऐसी व्याख्या करना जो आजकल की रुचि के अनुकूल हो, मेरी समझ में भूत के साथ अन्याय करना है।''

महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गड्.गेश्वरानन्द जी ने चारों वेदों का अत्यन्त शुद्ध तथा सुन्दर संस्करण तैयार करके वेद भगवान' के नाम से देश–विदेश में अनेकत्र प्रतिष्ठित किया है। परन्तु उन्होंने वेद भाष्य' वेदोपदेश चन्द्रिका में मन्त्रों का अनर्थ करके पाश्चात्त्य तथा पौरस्त्य विद्वानों को भी बहुत पीछे

छोड़ दिया। यथा–ऋग्वेद का प्रथम मंत्र–अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।। (ऋ01.1.1) है जिसका अर्थ उन्होंने इस प्रकार किया है– " यहाँ अग्नि का अर्थ हनुमान है। सृष्टिक्रम बोधक ' आकाशाद् वायुः वायोरग्नि'0 इस श्रुति के अनुसार आकाश से वायु और वायु से अग्नि की उत्पति होने से अग्नि का वायु पुत्र होना स्पष्ट है । हनुमान पवनसुत नाम से प्रसिद्ध हैं। वेद कहते हैं कि मैं वायुपुत्र अर्थात हनुमान जी की स्तुति करता हूँ।"

वस्तुतः वेद के सभी शब्द प्रातिपदिक किंवा धातुज हैं। अतः धात्वर्थ के आधार पर यौगिक प्रक्रिया से ही वेद के अर्थ को ठीक–ठीक जाना जा सकता है। निर्वचन के आधार पर प्रकरणानुसारी अर्थो का निरुपण नैरुक्त– प्रक्रिया के बिना सम्भव नहीं। वेद के शब्दों को रुढ़ि मानकर लौकिक संस्कृत के साधारण कोशों की सहायता से वेदों के सत्यार्थ का प्रकाशन नहीं हो सकता है।

सन्दर्भ

1. Christianity and Government of India by Mahew P. 194.
2. India - What can it teach us? By Maxmullar P. 57
3. Life and letter's of Frederick Maxmuller, Vol. 1, Chap. XV. P- 34.
4. Mystic Approach the veda and Upnishad by - Madhav Pundlick P.17
5. Dayanand and Veda by Shri Aurobindo & Vedic Magazine, Lahore Nov. 1916

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 37-40

अध्यात्म एवं दर्शन

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म–योग

डॉ. कुमार पाल

श्रीमदभगवद्गीता योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण की संगीतमयी वाणी है। 'गीता' शब्द का अर्थ है– गाई गई या कही गई। महाभारत युद्ध के समय युद्ध के परित्याग की इच्छा पर अर्जुन को श्री कृष्ण ने जो उपदेश दिया वही गीता है।[1] भगवान् के मुख कमल से उक्त होने से इसे भगवद्गीता या श्रीमदभगवद्गीता कहा जाता है। भारतीय परम्परा के श्रद्धा व विश्वास के आधार पर गीता के कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्ण हैं पर जिस रूप में गीता उपलब्ध है, उस रूप में गीता का प्रणयन श्रीकृष्ण ने नहीं किया होगा। कृष्ण के मध्यमावाक् में दिये गये उपदेशों का संकलन महाभारतकार वेदव्यास ने स्वः कवित्व शक्ति के अनुरूप गीता के वर्तमान स्वरूप में किया है। वेद, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र में जिस ज्ञान का वर्णन किया गया है, वही गीता में है तथा जिस प्रकार ज्ञान श्रेष्ठतम है, वैसे ही गीता का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। इसमें न केवल शब्दों का संगीत है अपितु भावों का भी संगीत है। अनेक प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक भावों का संगीत इसमें उपलब्ध है, जिसे ऋषियों की दिव्य दृष्टि प्रभावित करती है। इसमें जीव, प्रकृति, ईश्वर, ज्ञान, कर्म, भक्ति, सांख्य, योग, तथा वेदान्त सम्बन्धी विविध भावों के विचित्र सामंजस्य के गायन प्रस्तुत हुए हैं, जिसे योगी अपने दिव्य अन्तःकरण में अनुभूत करते हैं।

"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।"[2] कर्म क्या है और अकर्म क्या है ? इसे निश्चित करने में विद्वान् भी मोहग्रस्त हो जाते हैं। अर्थात् विद्वान् व्यक्ति भी कर्म, अकर्म, के विषय में निश्चय नहीं कर पाते हैं। लोकमान्य तिलक गीता को कर्मयोगशस्त्र मानते हैं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'कर्मयोग' का ही उपदेश दिया है। अर्जुन के हृदय में शोक एवं मोह उत्पन्न हुआ था, वे कर्म पथ से हट रहे थे। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। श्रीकृष्ण के कर्मयोग के पाठ से प्रभावित होकर अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हुए। सांसारिक पुरुषों का कर्म–अकर्म, करणीय–अकरणीय के विषय में विमूढ़ता उत्पन्न होती है। सही दिशा पाने पर मानव कर्त्तव्य कर्म करता हुआ पुण्य का भागी हो जाता है और निर्देशन के अभाव में अथवा गलत दिशा पाकर वह पाप का भागी हो जाता है। कर्मयोग ही गीता का मुख्य विषय है। अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण ने सभी लोगों को कर्मयोग का पाठ पढ़ाया। कर्म मार्ग बड़ा कठिन है–"गहना कर्मणो गतिः।"[3]

गीता महासागर में कर्म सिद्धान्त सम्बन्धी अगणित रत्न विद्यमान हैं, जो अनवरत रूप से मानव जीवन को प्रकाशित कर रहे हैं। कोई भी मनुष्य बिना कर्म किये नहीं रह सकता है। सबको प्रकृति–जन्य गुण भूख–प्यास आदि बेबस करके काम करवाते रहते हैं। यहाँ तक कि कोई व्यक्ति सोता ही रहे तो भी उसे मादक द्रव्य आदि सेवन रूप कर्म करना ही पड़ता है और निद्रा में भी श्वास–प्रश्वास किया चालू रहती है।[4] कर्म कैसे करना चाहिए, यह जान लेना चाहिए।

कर्म दो प्रकार के होते हैं–(1) आसक्त कर्म और (2) अनासक्त कर्म। प्रायः मनुष्य आसक्ति के कारण ही कोई कर्म करता है। आसक्ति ही कर्म करने की प्रेरणा देती है। कर्मयोगी को आसक्ति पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। फल की कामना का त्यागकर कर्म करना चाहिए। निष्काम कर्मयोगी सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय से ऊपर उठकर कार्य करता है। कर्मयोगी लाभ–हानि की भावना से प्रेरित नहीं होता है, ऐसा कर्म निष्काम या अनासक्त कर्म कहलाता है। श्रीकृष्ण इसी कर्मयोग का उपदेश देते हैं, जब तक तू स्वजन–सुख, शत्रुजन–दुःख, धन–धान्य, धरती–राज्य अथवा लाभ–हानि, जय–पराजय, इनकी गणना कर लेगा, तब तक स्वार्थ के कारण कुछ न कुछ पाप का भागी अवश्य

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, एस0 बी0 जे0 महाविद्यालय, बिसावर, महामायानगर (उ0 प्र0)

होगा। जब तू सुख–दुःख, लाभालाभ, जय–पराजय की चिंता छोड़ के न्याय रक्षा रूप स्वधर्म को सामने रखकर लड़ेगा तो पाप तुझे छू नहीं सकता है।

"सुख–दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।"[5]

कर्मयोगी के लिए स्वकर्म ही स्वधर्म है। गीता में सभी वर्णों के कर्म निश्चित हैं। ये निश्चित कर्म ही उनके स्वकर्म कहे जाते हैं और यही स्वधर्म है। प्रत्येक मनुष्य का अपने स्वधर्म के अनुसार आचरण करना ही पवित्र कर्त्तव्य है और यही उनका धर्म है।

पूर्वोक्त आसक्त और अनासक्त कर्मों को क्रमशः सकाम और निष्काम कर्म भी कह सकते हैं। सकाम कर्म वह हैं जिसमें फल पाने की इच्छा हो; निष्काम कर्म वह है, जिसमें फल पाने की इच्छा न हो। इस कर्मयोग में आरम्भ अर्थात् बीज का नाश नहीं हैं और उसका फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्मयोग रूप धर्म का थोड़ा सा भी साधन जन्म मृत्यु रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है।[6] तात्पर्य यह है कि कर्म का सर्वोच्च दिव्य गुण है, कृष्णभवनामृत में कर्म या इन्द्रिय तृप्ति की आशा न करके कृष्ण के हित में कर्म करना। ऐसे कर्म का लघु आरम्भ होने पर भी कोई बाधा नहीं आती है, न कभी इस आरम्भ का विनाश होता है। भौतिक स्तर पर आरम्भ किये जाने वाले किसी भी कार्य को पूरा करना होता है अन्यथा सारा प्रयत्न निष्फल हो जाता है। किन्तु कृष्ण भावनामृत में प्रारम्भ किये जाने वाला कोई भी कार्य अधूरा रहकर भी स्थायी प्रभाव डालता है। अतः ऐसे कार्य करने वाले को कोई हानि नहीं होती, चाहे यह कर्म अधूरा ही क्यों न रह जाय।

निष्काम कर्म में कामनाओं का सर्वत्र अभाव पाया जाता है। ऐसे कर्म से बन्धन नहीं होता। निष्काम कर्म तृष्णा रहित कर्म है। निष्काम कर्म को ही गीता में कर्मयोग कहा गया है –

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतुभूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।"[7]

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं 'तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तुम कर्मों के फलों का हेतु न हो तथा तुम्हारी आसक्ति भी न हो।' अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण संसार को उपदेश दे रहे हैं कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, फल भोगने में नहीं। मनुष्य को कौन से कर्म का क्या फल होगा और वह फल किस जन्म में मिलेगा, इसका ज्ञान मनुष्य को नहीं है क्योंकि फल को निश्चित करना ईश्वर के अधीन है।

श्रीकृष्ण योग को परिभाषित करते हुए कहते हैं –

"योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"[8]

हे अर्जुन! जय अथवा पराजय की समस्त आसक्ति त्यागकर समभाव से अपना कर्म करो। ऐसी समता योग कहलाती है। अर्थात् योग का अर्थ है सदैव चंचल रहने वाली इन्द्रियों को वश में रखते हुए ही परमतत्त्व में मन को एकाग्र करना। जब मनुष्य मनोधर्म से उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओं का परित्याग कर देता है और जब इस तरह से विशुद्ध हुआ उसका मन आत्मा में सन्तोष प्राप्त करता है तो वह विशुद्ध दिव्य चेतना को प्राप्त स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति किसी रागद्वेष से विचलित नहीं होता है –

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।"[9]

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

अर्थात् जब त्रिविध तापों के होने पर भी मन विचलित नहीं होता है अथवा सुख में प्रसन्न नहीं होता है और जो आसक्ति, भय तथा क्रोध से मुक्त है, वह स्थिर मन वाला मुनि कहलाता है। जो व्यक्ति न तो शुभ की प्राप्ति से हर्षित होता है और न अशुभ के प्राप्त होने पर घृणा करता है, पूर्ण ज्ञान में स्थिर रहता है।

कर्म के विषय में तीन बातें विचारणीय हैं– कर्म (स्वधर्म), विकर्म तथा अकर्म। कर्म(स्वधर्म) वे कर्म हैं, जिनका आदेश प्रकृति के गुणों के रूप में प्राप्त किया जाता है। अधिकारी की सम्मति के बिना किये गये कर्म विकर्म कहलाते हैं और अकर्म का अर्थ है– अपने कर्मों को न करना। अकर्म पापमय है। अतः कर्त्तव्य के रूप में युद्ध करना ही अर्जुन के लिए एकमात्र कल्याणकारी मार्ग था।

निष्काम कर्म के दो अंग हैं (1) कर्त्तापन या ममता का त्याग एवं (2) आसक्ति या तृष्णा का त्याग। किसी भी कर्म में कर्त्तव्य (मैं इस कार्य का कर्त्ता हूँ) का अभाव और निःस्पृह भाव से कर्म करे तो यह कर्म निष्काम या अनासक्त–कर्म कहलाता है। जिस प्रकार बीज को यदि भूँज दिया जाय तो उसकी वपनशक्ति समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार रागद्वेष से रहित होकर कर्म में बन्धन की शक्ति नहीं होती है। निष्कामकर्म से जीव को बन्धन नहीं लगता है और वह संसार के भवचक्र से मुक्त हो जाता है।

निष्काम कर्म का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से लगाया है। उदाहरणार्थ स्त्री, पुत्र, धन अदि के लिए यज्ञ, दान, तप आदि करना काम्य कर्म है। अतः काम्यकर्म का त्याग ही कर्म का त्याग है। कुछ विद्वान् काम्य–कर्म से निषिद्ध कर्मों का त्याग समझते हैं। जैसे चोरी, झूँठ, व्यभिचार आदि कर्मों को छोड़ देना, परन्तु गीता के अनुसार निष्काम–कर्म का अर्थ है, संसार के सभी कर्मों में ममता और आसक्ति का त्याग है। अतः निष्काम कर्म नैष्कर्म नहीं अर्थात् कर्मों का त्याग नहीं किया जाता, बल्कि कर्मफल का त्याग किया जाता है। निष्काम कर्म ईश्वरार्थ कर्म है। ईश्वरार्थ कर्म ही अनासक्त कर्म है। ऐसा पुरूष कर्म करता हुआ भी पाप में लिप्त नहीं होता, जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से अछूता रहता है।

ब्रह्मण्याधाय कर्मणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।[10]

ईशोपनिषद् में कहा गया है कि सारी वस्तुएँ परब्रह्म से सम्बन्धित हैं, अतएव ये केवल उन्हीं की हैं। जो यह भली भाँति जानता है कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म की है और वे ही प्रत्येक वस्तु के स्वामी हैं अर्थात् प्रत्येक वस्तु भगवान् की सेवा में ही नियोजित है, उसे स्वभावतः शुभ–अशुभ कर्मफलों से कोई प्रयोजन नहीं रहता है।

निष्काम–कर्म के द्वारा मनुष्य परमात्मा तक पहुँच सकता है। निष्काम कर्म से संसार के बन्धन कट जाते हैं। मनुष्य जन्म और मरण के चक्र को पार करके परमात्मा में मिल जाता है। निष्कामकर्म का आचरण ही स्वकर्म है, स्वकर्म ही स्वधर्म है। इस स्वकर्म या स्वधर्म के आचरण से सिद्धि की प्राप्ति होती है।

"स्व–स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धं लभते नरः।"[11]

गीता 'कर्तव्य, कर्तव्य के लिए शिक्षा देती है। स्वकर्म ही स्वधर्म है। निष्काम–कर्म की शिक्षा गीता की देन है मनुष्य को कर्तव्य, कर्तव्य के लिए' ही कर्म करना चाहिए, यही श्रीमद्भगवद्गीता का कर्म–योग है।

सन्दर्भ

1. समापोढेष्वनीकेषु कुरूपाण्डवयोर्मृधे।
   अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम्।। महा0 शान्ति पर्व 348.8
2. श्रीमद्भगवद्गीता 4/16
3. वही 4/16
4. श्रीमद्भगवद्गीता 3/16
5. श्रीमद्भगवद्गीता 2/38
6. वही 2/40
7. श्रीमद्भवगद्गीता 2/47
8. श्रीमद्भगवद्गीता 2/48
9. वही 2/56
10. श्रीमद्भगवद्गीता 5/10
11. वही 18/45

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010, पेज : 41-44

अध्यात्म एवं दर्शन

परम्परागत साहित्य में सन्निहित है शिव का वैविध्य

✍ डॉ. ए. के. रूस्तगी
✍ डॉ. बीना रूस्तगी

मंगलकारी त्रिपुरारि भोले शंकर भण्डारी अथवा शिव सृष्टि नियंता, कल्याणकारी, कष्टों का हरण करने वाले जगद्पिता हैं। पुरावैदिक काल से अर्वाचीन काल तक इस महाशक्ति की उपासना किसी न किसी रूप में होती रही है।

विश्व की उपलब्ध साहित्य सामग्री में वेद प्राचीनतम हैं और हमारे धार्मिक अथवा भौतिक इतिहास के सम्बन्ध में भी जो खोजबीन की जाती है, वह वेद से ही प्रारम्भ होती है। वेद ही हमारी समस्त मान्यताओं और विचारधाराओं के उद्गम हैं। यदि हम किसी प्राचीन देवता को पौराणिक शिव[1] का आदि रूप मान सकते हैं तो वह वैदिक देवता 'रुद्र'[2] ही हो सकता है। रुद्र का विशेष अस्त्र उसका धनुष है[3] तथा रुद्र की एक उपाधि कपर्दिन[4] भी कहा गया है, जिसकी औषधियाँ ठण्डी और व्याधिनाशक होती हैं। इस रूप में रूद्र का संबंध उर्वरता और पेड़–पौधे से भी है और सन्तान के लिए उनसे प्रार्थना की जाती है।[5] रुद्र के विनाशकारी रूप का अथर्ववेद में चित्रण किया गया है। उसका शर विषधर होता है और उससे व्याधियां फैलती हैं। प्राणिमात्र को उससे डर लगता है।[6] इसी क्रम में एक मंत्र में रुद्र से सतत् यही प्रार्थना की जाती है कि वह अपने शर को स्तुतिकर्ता की ओर से हटाये और उसका प्रहार उसके शत्रुओं पर अथवा कृपण लोगों पर करे।[7] खुले खेतों में चरते पशुओं को संरक्षित करने के लिए रुद्र को पहली बार 'पशुपति' कहा गया है, और उससे पशुवृद्धि तक के लिए प्रार्थना की गई है।[8] अथर्ववेद में रुद्र एक ऐसे देवता थे जिन पर जनसाधारण की आस्था थी। अथर्ववेद में एक लोकप्रिय देवता के रूप में ही अपनी प्रत्यक्ष शक्ति के कारण और अपने प्रकोप के आतंक के कारण रुद्र को आगे चलकर 'महादेव' की उपाधि दी गई। भूत–पिशाचादि से रक्षणार्थ भी रुद्र का स्तवन किया जाता है।[9]

अपर वैदिक काल के ऐतिहासिक अभिलेख पाणिनी के समय में भगवान शिव के विकसित स्वरूप का प्रमाण 'महेश्वर सूत्र' है जो भगवान शिव के प्रकट किये हुए माने जाते हैं।[10] इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय तक यह माना जाने लगा था कि मानव को वाक् शक्ति भगवान शिव से ही मिलती है। यह शिव के स्वरूप के महान उत्कर्ष का सूचक है। रामायण और महाभारत में रुद्र की उपासना के प्राचीन और अर्वाचीन दोनों रूप पाये जाते हैं। रामायण में रुद्र का स्वरूप अत्यधिक विकसित है। उनको सामान्यतः रुद्र नहीं अपितु शिव कहा जाने लगा। महादेव, महेश्वर, शंकर, यंबकम के पर्यायवाची रूपों का प्रयोग होने लगा। यजुर्वेद के एक मंत्र में शंकर और शिव को सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों को देने वाला कल्याण का कर्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला अपने भक्तों को सुख देने वाला और धर्मकार्यों में युक्त करने वाला अत्यन्त मंगल स्वरूप और धार्मिक मनुष्य को सुख देने वाला है, उसको हमारा बारम्बार नमस्कार हो का उल्लेख मिलता है।[11]

रामायण में रुद्र एक सौम्य और दयावान देवता के रूप में और सच्चे अर्थ में 'शिव' माना जाने लगा था। वे सदा मानव मात्र के कल्याण में लगे रहते हैं,[12] वे वरदाता हैं,[13] आशुतोष हैं और दयानिधि हैं। रामायण में जहाँ–जहाँ शिव का प्रसंग आया है, शिव को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उन्हें देवताओं में सर्वोच्च और सर्वोत्तम तथा देवों के देव कहा गया है।[14] अमर लोक में भी उन्हीं की उपासना होती है।[15]

✍ एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष– राजनीति विज्ञान विभाग, जे0एस0 हिन्दू (पी.जी.) कालेज, अमरोहा
✍ एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, जे0एस0 हिन्दू (पी.जी.) कालेज, अमरोहा

प्रत्येक महान संकट में देवतागण सहायतार्थ और परित्राणार्थ उन्हीं के पास दौड़े जाते हैं। एक बार तो स्वयं विष्णु अन्य देवताओं को लेकर उनकी शरण में गये थे। रामायण काल के शिव का लोक प्रचलित रूप आज भी चला आ रहा है। शिव एक कल्याणकारी देवता माने जाते हैं। उनकी पत्नी 'उमा' हैं, जिनको हिमालय की पुत्री माना जाता है।[16] वैदिक रुद्र और वेदोत्तरकालीन शिव सम्बन्ध में प्रचलित कथायें यह स्पष्ट करती हैं कि दोनों मूल रूप से एक ही देवता थे। कैलाश पर्वत पर शिव का आसन होना इसका प्रमाण है। शिव और पार्वती का एक और प्रचलित रूप इसकी पुष्टि करता है जिसमें शिव और पार्वती को पति-पत्नी माना जाता था, दयानिधान, कल्याणकारी शिव की पत्नी भी वैसी ही दयामूर्ति और सौम्य स्वभाव की थीं और दोनों कैलाश पर्वत पर अनन्त और परम आनन्द की अवस्था में रहते थे। प्रत्येक युग में मनुष्यों के लिए विवाहित प्रेम का आदर्श रहे हैं।[17] शिव को अत्यन्त सुन्दर आकृति वाला माना जाता था और पार्वती का रूप एवं लावण्य स्त्री जाति में सर्वोत्तम था। लोक प्रचलित स्वरूप में शिव के दो रूपों में एक सौम्य दूसरा भयंकर। शिव भक्त शिव के प्रकोप को भूलते नहीं हैं। पापियों के कुकर्मों से अथवा ईश्वरीय इच्छा के उल्लंघन के कारण शिव का क्रोध जागृत हो जाये, तो उनकी सौम्य आकृति बड़ा भयानक रूप धारण कर लेती है।

एक ओर भगवान शिव की लोक प्रचलित उपासना में शिव को प्रसन्न करने का उपाय सच्ची भक्ति है। तपस्या द्वारा शिव प्रसन्न होकर वरदान देते हैं। दूसरी ओर जनसाधारण के कुछ वर्गों में शिव की कल्पना 'कापालिक' के रूप में की गई है। इस रूप में उनका सम्बन्ध पिशाचों, डाकिनियों के साथ तथा हाथ में कपाल और लोकवर्जित श्मशान प्रदेश उनका प्रिय आवास है, जहाँ राक्षसों, बेतालों, पिशाचों इत्यादि के साथ विहार करते हैं। अश्वत्थामा ने भी शिव के कापालिक रूप की आराधना कर अपने आपको बलि चढ़ा दिया। कृष्ण ने इसकी घोर निन्दा भी की थी।[18]

कुछ समुदाय विशेषों में शिव का एक रूप मद्यप्रिय तथा विलास प्रिय देवता का था। जिसके प्रभाव स्वरूप शिव भक्तों द्वारा भाँग, धतूरा इत्यादि का सेवन आज भी किया जाता है। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि शिव के इस रूप की उत्पत्ति कैसे हुई? परन्तु उनके किरात वेश से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि महाभारत काल से पूर्व किसी समय शिव ने इसी किरात जाति के एक देवता को आत्मसात कर लिया था, जिसकी उपासना उस जाति में मद्यपान और विलास क्रीड़ाओं द्वारा की जाती थी। कश्मीर प्रदेश में भी इसी प्रकार की क्रीड़ाएं शिव की उपासना का एक अंग थी। सम्भवतः इसी रूप में शिव को एक नर्तक भी माना जाता था और कालान्तर में जब शिव का विलास प्रिय रूप क्षीण हो गया, तब भी नृत्य से उनका सम्बन्ध बना ही रहा। नीलमत पुराण में शिव के नटराज रूप की कल्पना इसी परम्परा की देन है।

शिव का एक रूप 'त्रिपुरारि' का है। "शिव द्वारा दानवों के तीन पुरों के ध्वंस की कथा ऐतरेय ब्राह्मण में आती है। कहा जाता है कि देवासुर संघर्ष में असुरों ने पृथ्वी, आकाश और द्यौ को तीन दुर्गों में परिणत कर दिया जो क्रम से लोहे, चाँदी और सोने के थे। शिव के सहयोग से देवताओं ने इन तीन दुर्गों को जीता। इस कारण शिव को त्रिपुरारि नाम से भी जाना जाने लगा।"[19] यही नहीं भगवान शिव का एक महत्वपूर्ण और मनोहर रूप यह भी है कि वह देवताओं और मनुष्यों द्वारा ही नहीं अपितु दानवों द्वारा भी पूजे जाते हैं। महाप्रतापी रावण का जब एक बार अभिमान टूट चुका तब वह शिव का भक्त हो गया।[20] विद्युत्केश दानव को पार्वती जी ने गोद लिया था तो शिव ने उसे अमरत्व का वरदान दिया था।[21] यही नहीं देवताओं के प्रार्थना करने पर भी शिव ने दानवों का संहार करने से इनकार कर दिया, क्योंकि वह पहले ही दानवों का संहार न करने का वचन दे चुके थे।[22] शिव ही एक मात्र ऐसे देवता थे, जिन्हें सारी सृष्टि के देव और दानव पूजते थे।

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

भगवान शिव (शंकर) के विषपान की कथा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सागर–मन्थन में निकलने वाला हलाहल देखकर जब देवतागण भयभीत हो गये तो शिव जी के पास गये। विष्णु ने देवताओं की ओर से उनसे प्रार्थना की। तब भगवान शिव उस विष को इस प्रकार पी गये मानों वह अमृत हो। जब हलाहल शिव के कण्ठ में पहुँचा, तब देवताओं की विनती पर उन्होंने उसे वहीं रोक लिया, जिससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया। वैदिक रूद्र की नीलग्रीव अथवा नीलकंठ उपाधि इसी के फलस्वरूप प्राप्त हुई है। ऐसे हैं मंगलकारी शिव जो विनाश को रोकने वाले और संसार का कल्याण करने वाले हैं।

गंगावतरण के प्रसंग में भी भगीरथ अपने पूर्वज सागर पुत्रों के उद्धार के लिए गंगा को स्वर्ग से उतार कर पृथ्वी पर लाना चाहते थे। उनकी भक्ति और प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने गंगा के प्रपात को रोकने के लिए उसे पृथ्वी पर पहुँचने से पहले अपने सिर पर लेना स्वीकार कर लिया। गंगा के अभिमान मर्दन के लिए शिव ने उसकी धारा को अपनी जटाओं में ले लिया और उन जटाओं के जंगल में गंगा ऐसी खोई कि लाख प्रयत्न करने पर भी बाहर निकलने का कोई मार्ग न पा सकी। अन्ततः भगीरथ के अनुनय करने पर शिव जी ने उसे मुक्त कर दिया।

लोक प्रचलित रूप के साथ शिव का दार्शनिक रूप भी है। दार्शनिक रूप में शिव को परमब्रह्म माना जाता है। वह असीम है, अचिन्त्य हैं, विश्व सृष्टा हैं और विश्व को अपने में समाये हुए हैं। वह परम हैं और उनसे परे कुछ भी नहीं है। वह महाभूतों के एकमात्र उद्‌गम और एक मात्र आधार हैं, वही नित्य और अव्यक्त और कारण हैं।[23] शिव भक्ति का योग ही परमात्मा है, वह परमात्मा ही आकाशादि के रूप में परिणत होता है बिल्कुल वैसे ही जैसे मृतिका अपने से अभिन्न घटरूप ग्रहण करती है, जैसे दुग्ध दही के आकार में बदल जाता है। शिव विश्वरूप है और विश्व शिवरूप इन अर्थों में शिव उपासना समष्टि विश्व की उपासना है, आत्मोपासना।[24]

आशुतोष भगवान शिव जब प्रसन्न होते हैं तो अपने भक्त (साधक) को अपनी दिव्य शक्ति प्रदान करते हैं जिससे अविद्या के अन्धकार का नाश हो जाता है और साधक को अपने इष्ट की प्राप्ति होती है। भगवान शिव को प्रसन्न किये बिना इष्ट की प्राप्ति सम्भव नहीं। महेश्वर की लीलाएं अपरम्पार हैं वे दया करके जिनको अपनी लीलाओं से परिचित कराते हैं, वे ही जान सकते हैं। वस्तुतः भगवान शिव हैं बड़े ही आशुतोष। उपासना करने पर शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। सकाम भाव से जो अज्ञानपूर्वक भी जो उनकी पूजा करते हैं, उन पर भी आप रीझ जाते हैं, भोले भण्डारी हैं देने में आगा पीछा नहीं विचारते, इसीलिए दुनिया शिव को भोलेनाथ कहती है। भोलेनाथ त्रिपुरारि ही जगत से मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं।

निःसन्देह इस संसार के कर्मक्षेत्र में भगवान भूतभावन श्री विश्वनाथ के चरित्रों से प्राणियों को नैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक आदि अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती है। समुद्र–मन्थन में निकलने वाले कालकूट विष का भगवान शंकर ने पान किया और अमृत देवताओं को दिया। शिवजी ने विष को न हृदय में न पेट में उतारा और न उसका वमन ही किया, किंतु कण्ठ में ही रोक रखा इसीलिए विष और कालिमा भी उनके भूषण हो गये। जो संसार के हित के लिए विषपान से भी नहीं हिचकते वे ही राष्ट्र या जगत के ईश्वर हो सकते हैं। शिवजी का कुटुम्ब भी विचित्र ही है, अन्नपूर्णा का भण्डार सदा भरा, पर भोले बाबा सदा के भिखारी, कार्तिकेय सदा युद्ध के लिए उद्यत पर गणपति स्वभाव से ही शान्तिप्रिय। फिर कार्तिकेय का वाहन मयूर, गणपति का मूषक, पार्वती का सिंह और स्वयं अपना नन्दी और उस पर आभूषण सर्पों के। सभी एक दूसरे के शत्रु पर गृहपति की छाया में सभी सुख तथा शान्ति से रहते हैं। घर की शान्ति के आदर्श की शिक्षा भी शिव से ही मिलती है। सच्चे शिव की आराधना भूलने से ही आज राष्ट्र का शिव अर्थात् मंगल नहीं हो पा रहा है।

सन्दर्भ

1. शिव– श्यति पापम– मांगलिक, सौभाग्यशाली– वामन आप्टे, संस्कृत हि. को. पृ0– 1019
2. रूद्र शिव का नाम। भयंकर, भयानक–देवसमूह विशेष, ऐसा माना जाता है कि शंकर या शिव के ही यह अपकृष्ट रूप हैं, शिव स्वयं इस समूह के मुखिया हैं– रूद्राणां शंकरश्चास्मि– भंग 10/23,– वामन आप्टे, संस्कृत हि.को. पृ.–859
3. ऋगवेद– 2, 33, 10, 7, 46
4. ऋगवेद– 1, 114, 1–51
5. ऋगवेद– 1, 143, 6, 2, 33
6. अथर्ववेद– 6, 901
7. अथर्ववेद– 6, 59, 3, 7, 75
8. अथर्ववेद– 11, 2, 10, 2, 24
9. अथर्ववेद– 6, 57, 1, 6, 90
10. "ओं नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।" –यजुः 16.79 उदधृत, आदर्श नित्य कर्म विधि, सम्पादक स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, पृ0 33
11. अष्टाध्यायी– 1, 49, 3, 53
12. रामायण बालकाण्ड– 36, 9–10
13. रामायण बालकाण्ड– 55, 13
14. रामायण बालकाण्ड– 45, 22, 26
15. रामायण बालकाण्ड– 13, 21
16. रामायण बालकाण्ड– 26, 16, 36
17. महाभारत द्रोण– 74, 35
18. महाभारत वन– 86, 31 द्रोण 50, 49
19. ऐतरेय ब्राह्मण– 1, 4, 6
20. रामायण उ. का.– 16, 24
21. रामायण उ. का.– 4, 29
22. रामायण उ. का.– 6, 3
23. महाभारत द्रोण– 74, 56, 61 और अनुशासन पर्व 22, 158
24. शिव उपासना, सत्यवीर शास्त्री (भूमिका)

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 45-46

अध्यात्म एवं दर्शन

संस्कृत वाङ्मय में नारी (वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत)

✍ डॉ. गीता वर्मा

युगों पूर्व सभ्यता के आदि काल में कौन कह सकता था कि यह संसार कब, क्यों और किसलिए बना ? इसके अस्तित्व का प्रयोजन क्या है ? अथवा इसमें मानव जीवन की महत्ता ही क्या है ? सभ्यता और विकास के प्रति अपनी दृष्टि उन्मीलित और चतुर्दिक प्रसारित करने से पूर्व मानव को स्वप्न में भी भान न रहा होगा कि प्रकृति की रहस्यमयता इसका रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श भावुक मानव जीवन के लिए संवेदना और परिगणना का विषय भी हो सकता है। मानव की अनुभूति और अभिव्यक्ति का मणिकाञ्चन योग जब वाणी के माध्यम से अपना चमत्कार प्रदर्शित करता है, तो उसे वाङ्मय कहते हैं।

वैदिक और लौकिक दोनों ही संस्कृत काव्य साहित्य का नारी विषयक दृष्टिकोण सदैव ही उन्नत व उदारवादी रहा है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य है सुख! और सुख का मूल आधार है नारी –

"सर्वः प्रायेण लोकोऽयं सुखमिच्छति सर्वदा।
सुखस्य च स्त्रियो मूलं नानाशीलधराश्च ताः।।"[1]

– नाट्य शास्त्र

संस्कृत वाङ्मय में एक ओर जहाँ नारी ने एक गृहिणी के रूप में स्थान प्राप्त किया, जिसके कर्त्तव्य गुरूजनों की सेवा, सपत्नीजनों के साथ सुखी सम व्यवहार, पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी क्रोध न करना, सौभाग्य पर गर्व न करना और परिजनों के प्रति अनुगृह। वहीं दूसरी ओर नारी ने अपनी छवि ज्ञानवान विदुषी की भी बनायी है। मनु के शब्दों में वह पूज्या रही है, तो कालिदास के विचारों में 'रति सर्वस्व'।

वैदिक काल में स्त्रियां भी पुरुषों के समान स्वतंत्र रहकर युद्ध, रथों की दौड़ आदि पुरुषोचित कार्यों में भी भाग लेती थीं। जहाँ ऋग्वेद में इन्द्रसेना मुंदगलानी का उल्लेख मिलता है, जिसने अपने पति के साथ रथों की दौड़ में भाग लेकर उसे विजयी बनाया, वहीं रामायण में कैकेयी का दशरथ के साथ युद्ध में जाने का वृतान्त भी परिलक्षित होता है। 'घोषा' को ऋग्वेद के दशम् मण्डल के उन्नीसवें और चालीसवें सूत्र बनाने का श्रेय दिया जाता है। 'गार्गी' के महाराजा जनक की सभा में ऋषि याज्ञवल्क्य से ब्रह्म विद्या में लोहा लेने का उल्लेख 'बृहदारण्यक' में दृष्टिगत होता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है (5/2/1/10) कि "पत्नी पुरुष की आत्मा का अर्धांश है, इसलिए जब तक मनुष्य पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक प्रजोत्पादन न होने से वह अपूर्ण रहता है।

स्मृतिकाल में स्त्रियों की आधीनता बढ़ी है, गृहस्थ सम्बन्ध और दृढ़ हुए। सन्तान, धर्म–कार्य, सेवा आदि और उत्तम रति तथा पति और उसके पूर्व पुरुषों का स्वर्ग स्त्री के आधीन है। इसलिए स्त्री और लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं माना जाता है। मनु ने स्त्री और लक्ष्मी में अन्तर न मानते हुए लिखा –

"स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन्।"[2]

नारी गुणों के आधार पर 'मत्स्य पुराण' में शीलसम्पन्न कन्या को दश पुत्रों के बराबर माना गया है –

"दशपुत्र समा कन्या या न स्याच्छीलवर्जिता।"[3]

✍ रीडर, संस्कृत, गन्ना उत्पादक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बहेड़ी, बरेली

'महाभारत' में शान्ति पर्व में गृहिणी को ही घर बताया गया है –

"गृहिणी गृहमुच्यते।"[4]

इस प्रकार रामायण–महाभारत काल को हम स्त्रियों की सर्वांगीण उन्नति की मधुर प्रभात बेला के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। इस काल में स्त्रियों को जो सम्मान मिला, वह सम्भवतः अन्य समाज में दृष्टिगत नहीं होता। मध्य युग से नारी की स्थिति में गिरावट आने लगी थी।

'स्वप्नवासवदत्तम्' में उदयन ने 'स्त्री' को कातर–स्वभावी सिद्ध किया –

"स्त्रीस्वभावस्तु कातरः।" (418)[5]

वहीं शूद्रक ने 'मृच्छकटिंक' में स्त्री पर विश्वास करना मूर्खता का परिचय देना बताया –

"अपण्डितास्ते पुरुषा मता ये स्त्रीषु श्रीषु च विश्वसन्ति।"

(मृच्छ कटिक, 4 / 12)[6]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वस्तुस्थिति यह है कि इस देश में अति पुरातन काल से ही ब्राह्मण एवं क्षत्रिय–दो संस्कृतियों का बोलवाला रहा है। ब्राह्मण संस्कृति प्रवृत्तिमूला होते हुए भी निवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख रही है, इसलिए सांसारिक जीवन के प्रति अनास्था व्यक्त करते हुए स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण कठोर होता चला गया। प्रवृत्ति मार्ग की प्रमुखता होने के कारण गृहस्थ धर्म को सभी धर्मों में श्रेष्ठ घोषित कर ऋषि–मुनियों ने उसकी वास्तविक स्थिति को पहचाना और स्वीकार भी किया, वहीं क्षत्रिय संस्कृति भोग प्रधान रही है, अतः उसमें नारी को 'प्रेयसी' के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

अन्ततः मैं कहना चाहूँगी कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति वैदिक व लौकिक संस्कृत में कहीं उत्तम तो कहीं मध्यम रही, किन्तु उन्हें माना सदैव शक्ति स्वरूपा ही जाता है। पुरूष कदम–कदम पर उससे सहयोग की अपेक्षा करता है। उसे घर–परिवार की चहार–दीवारी तक सीमित रहने का जो अभिशाप मिला हुआ है, वह आज की नहीं मध्य युग की देन है, जबकि उसका नारीत्व ही खतरे में पड़ चुका था, लेकिन पिछले सौ वर्षों से भारतीय नारी को ऊँचा उठाने के लिए भारत में जो प्रयास हुए, दुनिया का कोई भी देश उससे समानता नहीं रखता। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द से लेकर महर्षि कर्वे तक नारी – उत्थान के प्रयासों का एक महत्वपूर्ण इतिहास है। इस स्थिति को जो मध्य युग में पतन की दिशा में अग्रसर हुई, इतनी जल्दी बदला नहीं जा सकता। उसका कारण प्रयासों की शिथिलता नहीं, शताब्दियों की शृंखलाएँ हैं। इसके लिए जनजागृति का द्वीप प्रज्जवलित करना होगा।

निष्कर्षतः मैं यही कहूँगी कि नारी को समाज की पृथक इकाई मानकर देखा जाये तो यह मानना पड़ेगा कि नारी का हिन्दू समाज में पुरूषों की अपेक्षा निम्न स्थान था और यदि पूरे परिवार को इकाई मानकर देखा जाये तो वह कल भी घर की स्वामिनी थी और आज भी है। नारी सृष्टि का आधार है, सूत्रधार है –

"माँ को अगर सुहागन बनाया न होता,
खुदा ने इंसा बनाया न होता।"

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्य शास्त्र
2. मनुस्मृति
3. मत्स्यपुराण
4. महाभारत–शान्तिपर्व
5. स्वप्नवासवदत्ता
6. मृच्छकटिक

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 47-49

अछूते सन्दर्भ

नन्हें जीवन की दुर्दशा

✍ **डॉ. अलका द्विवेदी**
✍ **डॉ. मीनाक्षी बाजपेयी**

खेलने कूदने के दिनों में कोई बालक श्रम करने को मजबूर हो जाये तो इससे बड़ी विडम्बना समाज के लिए हो नहीं सकती। बाल श्रम ऐसा सामाजिक अभिशाप है जो शहरों में, गाँव में चारों तरफ मकड़जाल की तरह बचपन को अपने आगोश में लिए हुए है। बाल श्रम से परिवारों को आय स्रोतों का केवल एक रेशा प्राप्त होता है जिसके लिए गरीब अपने बच्चों के भविष्य को इस गर्त में झोंक देते हैं। क्राई (Cry) नामक गैर सरकारी संस्था बाल श्रम के निराकरण हेतु बच्चों में स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा एवं पोषण प्रदान करने के लिए प्रयासरत है। वास्तव में बाल श्रम मानवाधिकारों का हनन है। मानवाधिकारों के तहत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास का हक पाने का अधिकार प्रत्येक बालक को है। खनन उद्योग, निर्माण उद्योगों के साथ कृषि क्षेत्र भी ऐसा क्षेत्र है, जहाँ अधिकाधिक बच्चे मजदूरी करते देखे जाते हैं। इन बच्चों को पगार के रूप में मेहनताना भी आधा दिया जाता है।

बाल श्रम औद्योगिक क्रांति के आरम्भ से ही प्रारम्भ हो गया। उदाहरण के लिए, कार्ल मार्क्स ने अपने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र (Communist Manifesto) में कहा है "कारखानों में मौजूदा स्वरूप में बाल श्रम का त्याग" यह बात भी गौर करने योग्य है कि सार्वजनिक नैतिक सहापराध के जरिये ऐसे उत्पाद जो विकासशील देशों में (Developing Countries) एकत्रित या बाल श्रम से बने हैं उनके खरीद को हतोत्साहित किया जाये। दूसरों की चिंता है कि बाल श्रम से बने वस्तुओं का बहिष्कार (Boycott) करने पर यह बच्चे वेश्यावृत्ति या कृषि जैसे काम से अधिक खतरनाक या अति उत्साही व्यवसायों में जा सकते हैं। उदाहरण के लिये यूनिसेफ (UNICEF) के एक अध्ययन में पाया गया कि 5000 से 7000 नेपाली बच्चे वैश्यावृत्ति की तरफ मुड़ गए इसके अलावा अमेरिका में बाल श्रम निवारण अधिनियम (Child Labor Deterrence Act) के लागू होने के बाद, एक अनुमान के अनुसार 50000 बच्चों का बंगलादेश में उनके परिधान उद्योग में नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था, और बहुत से लोग "पत्थर तोड़ने, गलिओं में धक्के खाना और वेश्यावृत्ति" से जुड़ गए ...... यह सब के सब तथ्य यूनिसेफ के अध्ययन पर आधारित हैं। ये सारे कार्य "वस्त्र उत्पादन की तुलना में अधिक खतरनाक और विस्फोटक हैं" इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि "भुथरे उपकरणों के दीर्घकालिक प्रयोग की भांति ऐसे परिणाम से बच्चों को फायदा की जगह हानि ज्यादा हो सकती है।"

यूनिसेफ के अनुसार, दुनिया में लगभग 250 मिलियन बच्चे, जिनकी आयु 2–17 साल के बीच है वे बाल–श्रम में लिप्त हैं, जबकि इनमें घरेलू श्रम शामिल नहीं है। सबसे व्यापक अस्वीकार कर देने वाले बाल–श्रम के रूप हैं जिनमें बच्चों के सैन्य उपयोग (military use of children) साथ ही बाल वेश्यावृत्ति (child prostitution) शामिल है। कम विवादास्पद और कुछ प्रतिबंधों के साथ कानूनी रूप से मान्य कुछ काम हैं जैसे – बाल अभिनेता (child actor) और बाल गायक (child singer) साथ ही साथ स्कूल वर्ष (सीजनल कार्य) के बाद का कार्य, और अपने कोई व्यापार जो स्कूल के घंटों के बाद होने, काम आदि शामिल हैं।

संयुक्त राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labor Organization) बाल श्रम को शोषित मानते हैं संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद 32 के सशर्त निर्देशानुसार बाल अधिकार पर सम्मेलन

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी, जुहारी देवी गर्ल्स पी. जी. कालेज, कानपुर
✍ प्रवक्ता, मनोविज्ञान, जुहारी देवी गर्ल्स पी. जी. कालेज, कानपुर

(Convention on the Rights of the Child) कि राज्य बाल अधिकार को मान्यता देकर उनकी आर्थिक शोषण से रक्षा करें तथा साथ ही ऐसे काम करने से रोके जो कि खतरनाक है या जो बच्चों की शिक्षा, या बच्चे के स्वास्थ्य, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक या सामाजिक विकास के लिए हानिकारक हैं। कई विकसित देशों में यह अनुचित या शोषित माना जाता है यदि निश्चित उम्र से कम में कोई बच्चा घर के काम या स्कूल के काम को छोड़कर कोई अन्य काम करता है। न्यूनतम आयु देश पर निर्भर करता है; जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल श्रम कानून (Child Labor laws in the United States) ने किसी प्रतिष्ठान में बिना माता पिता की सहमति के न्यूनतम उम्र 16 वर्ष निर्धारित किया है।

1990 के दशक में दुनिया के प्रत्येक देश ने सोमालिया और संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर बाल अधिकार के सम्मेलन (Convention on the Rights of the Child), या CRC के दौरान हस्ताक्षर किए। CRC सबसे ताकतवर अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी भाषा है जो अवैध बाल श्रम पर रोक लगाता है, हालाँकि यह बाल श्रम को अवैध नहीं मानता है। एक प्रभावशाली समाचार पत्र में "बाल श्रम के अर्थशास्त्र" पर अमेरिकी आर्थिक समीक्षा (1998), में कौशिक बसु और Pham हुआंन वान का तर्क है कि बाल श्रम का मूल कारण माता पिता की गरीबी है। यदि ऐसा है, तो उन्होंने बाल श्रम के वैधानिक प्रतिबंध पर आगाह किया और तर्क दिया कि इसका उपयोग वयस्क मजदूरी प्रभावित हीन पर ही करना चाहिए और प्रभावित गरीब बच्चे के परिवार को पर्याप्त रूप से मुआवजा देना चाहिए। भारत और बंगलादेश सहित कई देशों में अभी भी बालश्रम व्यापक रूप से विद्यमान है। यद्यपि इस देश के कानून के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे काम नहीं कर सकते, फिर भी कानून को नजरअंदाज कर दिया है। 11 साल जैसे छोटी उम्र के बच्चे 20 घंटे तक एक दिन में काम करते हैं।

इस समय उत्तर प्रदेश में 2001 की जनगणना के आधार पर 1927997 बाल श्रमिक चिन्हित किये गये हैं और इसके एवज में सरकार ने 10वीं पंचवर्षीय योजना में 602 करोड़ रुपया आवंटित किया है। जबकि नवीं योजना में 178 करोड़ रुपये खर्च किये गये थे। सरकार ने बाल श्रम कानून--1986 के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों को चुना है जहाँ अधिक संख्या में बाल मजदूर रह रहे हों एवं जो हानिकारक उद्योगों में काम कर रहे हों। सरकार ने लगभग देश के 250 जिलों में राष्ट्रीय बाल श्रम प्रोजेक्ट के द्वारा तथा 21 जिलों में इण्डस प्रोजेक्ट के द्वारा जिलाधिकारियों को आदेश दे रखे हैं कि वे बालश्रम को दूर करने के लिए हरसम्भव प्रयास करें। इसके लिए विशेष स्कूल संचालित किये जायें, बालश्रमिकों के परिवारों हेतु आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाये एवं 18 वर्ष के पूर्व किसी भी दशा में उनसे मजदूरी न करायी जाये। इस सम्बन्ध में 1996 में सुप्रीम कोर्ट ने भी श्रम विभाग को यह आदेश दिया है कि बच्चों को सामान्य कार्यों में 06 घण्टे से अधिक न लगाया जाये। उन्हें निर्धारित अवकाश के साथ कम से कम दो घंटे जरूर पढ़ाया जाये। यदि नियोजक ऐसे आदेशों की लापरवाही करें तो उस पर कम से कम 20000 रुपये का जुर्माना लगाया जाये, जो बच्चे के भविष्य के लिए उपयोग किया जाये। सरकार, सुप्रीम कोर्ट, जागरूकता, जनता के प्रयासों के बावजूद पूरे देश में 58962 नियोजकों के विरूद्ध बालश्रम कराने के लिए मुकदमें दायर किये गये हैं। उत्तर प्रदेश में ऐसे अभियोग 6885 हैं।

21 नवम्बर 2005, एक भारतीय गैर सरकारी संगठन कार्यकर्ता जुनेद खान ने, पुलिस, श्रम विभाग और स्वयंसेवी संगठन प्रथम की मदद से बाल श्रम बचाव के लिए देश की सबसे बड़ी छापेमारी भारत की राजधानी, पूर्वी दिल्ली में किया। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 100 अवैध बेलबूटा कारखानों से 480 बच्चों को बचाया गया कि सीलमपुर के भीड़ भरी गंदी बस्ती क्षेत्र में चल रहे थे। अगले कुछ हफ्तों के लिए, सरकार, मीडिया और गैर सरकारी संगठन, छोटी उम्र के बच्चों की संख्या पर काफी क्रोधित थे, इनकी उम्र 5–6 वर्ष ही थी जिनको बंधन से रिहा कराया गया इस बचाव अभियान ने दुनिया की आँखें खोल दीं, बाल श्रम जैसी बुराई सबसे बड़े लोकतंत्र की नाक के नीचे हो रहा था। आज हर किसी को दिल्ली के कारोबार में अवैध रूप से हजारों कि संख्या में बच्चे काम करते हैं जो कि जरी (हाथ

की कढ़ाई), चमड़े के बैग बनाने, लाख (धातु जड़ना), कृत्रिम और असली जवाहरात बनाने जैसे काम करते हैं।

"सबसे बुरा चोर वह है जो बच्चों के विश्राम और खेलने के समय को चुराता है"

हम यह भूल जाते हैं कि सब कुछ कानूनों एवं सजा से सुधार हो जायेगा लेकिन यह असम्भव है। हमारे घरों, ढाबों में, होटलों में अनेक बाल मजदूर मिल जायेंगे, जो कड़ाके की ठण्ड या तपती धूप की परवाह किये बगैर काम करते हैं। लेबर आफिस या रेलवे स्टेशन के बाहर इन कार्यालयों में चाय पहुँचाने का काम यह छोटे–छोटे हाथ ही करते हैं और मालिक की गालियाँ भी खाते हैं। सभ्य होते समाज में यह अभिशाप क्यों बरकरार है, क्यों तथाकथित अच्छे परिवारों में नौकरों के रूप में छोटे बच्चों को पसन्द किया जाता है। आप यह अक्सर पायेंगे कि आर्थिक रूप से सशक्त होती हुई महिला को अपने बच्चे खिलाने एवं घर के कामकाज हेतु गरीब एवं गाँव के बाल श्रमिक ही पसन्द आते हैं। इन छोटे श्रमिकों की मजबूरी समझिए कि इनके छोटे–छोटे कंधों पर बिखरे हुए परिवारों के बड़े बोझ हैं।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संविधान की धारा 24, अनुच्छेद 32
2. यूनीसेफ की रिपोर्ट
3. इंटरनेशनल लेबर ओर्गनाइजेशन (1925) वर्ल्ड लेबर रिपोर्ट जिनेवा
4. क्रॉनिकल ईयर बुक
5. बाल श्रम उन्मूलन एवं चुनौती 2002, दीक्षित ध्रुव कुमार

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 50-52

अछूते सन्दर्भ

श्रम संघ की प्रकार्यात्मकता : समाजशास्त्रीय विश्लेषण

✍ शिप्रा यादव

प्रस्तुत शोध प्रलेख के अन्तर्गत श्रम संघ की ऐतिहासिकता के साथ साथ उसके प्रकार्यों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन एवं द्वितीयक साक्ष्यों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि अभी तक श्रम संघ नियोक्ता वर्ग के शोषणयुक्त व्यवहारों से श्रमिकों की रक्षा करता रहा, किन्तु भविष्य में इसका विकास औद्योगिक समाज की उप प्रणाली के रुप में हो गया तो एक वर्ग विशेष के हित एवं कल्याण के साथ– साथ समग्र समाज के लिये प्रकार्यात्मक होगा।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से श्रमिक प्रतिवाद की शुरुआत उस समय से होती है, जिस समय औद्योगिक समाज अपने संक्रमणकालीन स्थिति में था। मार्क्स की उपकल्पना थी कि प्रतिवाद और संघर्ष के समापन के बाद जब वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी, तब किसी प्रकार का संघर्ष नहीं रहेगा। अध्ययनों के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि होती है कि औद्योगीकरण की प्रारम्भिक स्थिति में श्रमिकों के प्रतिवाद अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं, किन्तु धीरे–धीरे उनकी गति में गिरावट आने लगती है (मार्क्स[1], पर्लमैन[2])। आज भारत औद्योगीकरण के क्षेत्र में ऐसे नव प्रविष्ट देशों में है जहाँ श्रमिक असंतोष एवं विवाद की समस्या अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। औद्योगीकरण के विकास क्रम में जैसे–जैसे स्थिरता आती है, श्रमिकों के औपचारिक संगठनों का विकास होता जाता है।

परिणामतः श्रमिकों के प्रतिवाद भी अपेक्षाकृत अत्यधिक अनुशासित होने लगते हैं। श्रमिकों के स्वरुप में भी केन्द्रीयकरण, वैधता और औपचारिकता का समावेश होता है तथा हड़ताल व हिंसात्मक प्रवृत्तियों में अनुशासन और वैधानिकता का प्रवेशीकरण होता है (रॉस : 1940[3])। इतना ही नहीं, औद्योगीकरण के फलस्वरुप श्रमिक संगठनों का निर्माण होता है, जिसे श्रम संगठन कहा जाता है। औद्योगिक समाजशास्त्रियों ने श्रमिक संगठन और औद्योगिक अभिजात्य के सम्बन्धों का निरुपण भी किया है (डनलप : 1944[4])। श्रम संगठन औद्योगिक प्रतिष्ठान प्रणाली का एक अंग है और औद्योगिक प्रतिष्ठान प्रणाली सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली का एक अंग है। इस प्रकार समाज की गतिविधियों के साथ औद्योगिक समाज और श्रम संगठनों की गतिविधियों का भी भविष्य में निर्धारण होगा।

भारतवर्ष में श्रमिक प्रतिवाद के सम्बन्ध में एक अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है (ईश्वरदयाल : 1972[5])।

- ✧ किसी भी संगठन में घटित होने वाली घटनाओं को उस प्रतिष्ठान में कार्यरत् सहकर्मियों की क्रिया और प्रतिक्रिया के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।
- ✧ विरसन के अभाव की भावना का संबंध संगठन में कार्यरत् श्रमिकों की पदोन्नति की सम्भावनाओं से होता है।
- ✧ संघर्ष और तनाव औद्योगिक समाज की स्वाभाविक देन नहीं है बल्कि उसकी उत्पत्ति कुछ विशेष प्रतिक्रियाओं के द्वारा होती है।

श्रमिक संघवाद श्रमिक वर्ग की आवश्यकताओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं और अभिवृत्तियों की संगठित अभिव्यक्ति है। परम्परागत् रुप से श्रम संघ द्वारा श्रमिक समुदाय के एक विशेष दर्शन, किसी विशेष सामाजिक और आर्थिक स्थिति में श्रमिकों के हित संरक्षण और विकास हेतु संगठित प्रयास की

✍ शोध छात्रा, समाजशास्त्र, हंडिया पी.जी. कालेज, हंडिया, इलाहाबाद, उ0प्र0

प्राप्ति है (सिडनी वेव[8] : 1950)। यूरोपीय देशों में श्रम संघ राजनैतिक और धार्मिक विचारधाराओं से काफी प्रभावित रहे हैं, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के श्रम संघ आर्थिक और वाणिज्य संबंधी लक्ष्यों से परिचालित होते हैं (रास और हार्टमैन : 1960[7])। विकासशील देशों में श्रमिक संघों का विकास एक प्रकार से सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति के फलस्वरुप हुआ है। इन देशों में श्रम संघ का राष्ट्रीय आन्दोलन से गहरा सम्बन्ध है। (मिलेन ब्रुस : 1963[8])। आर्थिक माँगों की पूर्ति के लिए इन देशों में श्रमिक संघ सामूहिक सौदेबाजी की अपेक्षा राजनीतिक क्रियाकलापों का अधिक सहारा लेते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रमिक संघों के क्रियाकलापों का राजनीतिकरण होता रहा, जिसके परिणामस्वरुप श्रमिक संघों में अर्न्तद्वन्द्व भी होता रहता है।

जहाँ तक भारतवर्ष में श्रम संघ आन्दोलन का प्रश्न है, इसकी शुरुआत प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् हुई। जिसका विकासक्रम निम्नलिखित है (कार्निक : 1966[9])

- असंगठित श्रम संघवाद (1875—1918)
- संगठित श्रम संघवाद (1918—1926)
- उग्र श्रम संघवाद (1926—1939)
- उदारवादी श्रम संघवाद (1939—1946)
- राजनैतिक श्रम संघवाद (1946—1975)
- कर्तव्यपरायण श्रम संघवाद (1975—1977)

70 से 80 के दशक में श्रम संघों की वैधानिक स्थिति में परिवर्तन की सम्भावना उत्पन्न हो गयी। 30 अप्रैल 1982 में कांग्रेस सरकार ने संसद में व्यवसाय संघ के संबंध में एक विधेयक पारित किया, जिसके अन्तर्गत श्रम संघों की मान्यता की समस्या को नजरअंदाज किया गया, तथापि राष्ट्रीय श्रम आयोग की संस्तुति के आधार पर श्रम संघों के पंजीकरण हेतु सदस्यों की न्यूनतम संख्या 100 या प्रतिष्ठान में कार्यरत् कुल श्रमिकों का 10 प्रतिशत् रखी गयी। साथ ही विवादों को सुलझाने के हेतु स्वैच्छिक विवाचन का प्राविधान किया गया (इण्डियन वर्कर : 1882[10])। 18 सितम्बर 1982 को देश की वर्तमान सरकार ने राष्ट्रीय त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें यह निश्चय किया गया कि चेक ऑफ पद्धति से श्रमिकों की सदस्यता का परीक्षण कर बहुमत प्राप्त श्रमिक संघ को अधिनियमित मान्यता प्रदान करने की व्यवस्था हेतु अधिनियम में संशोधन किया जाय। आज की वस्तुस्थिति यह है कि औद्योगिक विकास, राजनीतिक गणतंत्र और मिश्रित अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में श्रम नीति द्वैत स्थिति में आ सकती है। राजनीति के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक आवश्यकताओं में जहाँ एक तरफ एकमत्य स्थापना का प्रयास हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ त्वरित औद्योगिक विकास और सामाजिक न्याय की बात को प्रश्रय दिया जा रहा है। अतः यह स्वीकार किया जा रहा है कि श्रमिक संघ और नियोक्ता के बीच लचीला संबंध स्थापित रहेगा। साथ ही यह भी कटु सत्य है कि आर्थिक विकास के निम्न स्तर तथा श्रमिक संघों के पारस्परिक द्वन्द्व के कारण श्रमिक आन्दोलन भविष्य में भी उपयोग मूलक की स्थिति में रहेगा। एक संगठित समूह के रुप में श्रम संघ, नियोक्ता और राज्य मानवीय व्यवहारों को एक निश्चित दिशा प्रदान करने का प्रयास करते हैं और कुछ निश्चित शक्ति का प्रयोग करते हैं। इस परिवेश में अधिकार एवं संस्थागत् सम्बन्धों के विश्लेषण की स्थिति में मुख्यतया दो स्वरुपों का निरुपण किया जा सकता है।

- राज्य की प्रभुसत्ता
- नियोक्ता और श्रमिक संघ द्वारा प्रयुक्त आर्थिक सत्ता

भारतीय समाज की जनतांत्रिक संरचना में अधिकार की रेखायें एक दूसरे का अतिक्रमण कर जाती हैं। एक तरफ जहाँ नियोक्ता एवं श्रमिक संघ आर्थिक दबाव डालते हैं, वहीं राज्य अपने अधिकारों

के दबाव से सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया को बाध्यतापूर्ण ढंग से पूरा कराता है। श्रमिक संघ औद्योगिक व्यवस्था के दोषों से श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिये अनेक प्रकार के कार्यों को निष्पादित करता है। श्रमिकों के रोजगार की स्थिति को सुधारना, पर्याप्त मजदूरी दिलाना, नियोक्ता के साथ वार्तालाप, हड़ताल एवं बहिष्कार सम्बन्धी कार्यों में अहम् भूमिका अदा करता है (चटर्जी 1980[11], भट्टाचार्या:1988, सेनगुप्ता:1992) बहिर्मुखी कार्य के अन्तर्गत श्रमिक संघ श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि हेतु प्रयासरत् रहता है, जिसके लिए समय समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन करते हैं (वेंकटरत्नम : 2003/2006)। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघ राजनीति में हिस्सा लेते हैं, कुछ देशों में श्रमिक संघ सरकार बनाने में भी समर्थ दिखाई पड़ते हैं। भारतवर्ष में बी. बी. गिरी (भूतपूर्व राष्ट्रपति) ने भी एक श्रमिक नेता के रुप में अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया (श्यामसुन्दर : 2009)। उपर्युक्त साक्ष्यों और तथ्यों के आधार पर यह कहना प्रासंगिक है कि श्रम संघ नियोक्ता वर्ग के शोषणयुक्त व्यवहारों से श्रमिकों की रक्षा करता रहा है, साथ ही इस बात की सम्भावना की जा सकती है कि यदि भविष्य में इसका विकास औद्योगिक समाज की उपप्रणाली के रुप में हो गया तो एक वर्ग विशेष के हित एवं कल्याण के साथ-साथ समग्र समाज के लिए प्रकार्यात्मक होगा।

सन्दर्भ

1. Sydney Web (1950) : History of Trade Union, London, P.1
2. Ross, A.M. and Hartman (1960) : Changing Pattern of Industrial Conflict, Newyork.
3. Millen Bruss (1963) : The Political Role of Labour in Developing Countries, Washington.
4. Karnik B.B. (1966) : Indian Trade Union : A Survey, Manaklata Publication, Bombay. P.1
5. Journal of Indian Worker, Vol. xxx (26), March 29.
6. Chatterjee, R. (1980) : Unions, Politics and the State : A study of Indian Labour Politics, South Asian Publisher, New Delhi
7. Bhattacharya, D. (1988) : Unions, State and Capital in Western India : Structural Determinants of the
8. 1982 Bombay Textile Strike in R. Sonthall (ed), Labour and Union in Africa and Asia, Maerillan, London, P. 211-37
9. Sen Gupta, A.K. (1992) : Trends in Industrial Conflict in India and Govt. Policy, Working Paper Series. No 174-92, IIM Calcutta
10. Venkatratnam (2003) : Negotiated Change : Collective Bargaining, Liberalisation and Restructuring in India, Response Book, New Delhi (2006) : Industrial Relation, Oxford University Press, New Delhi
11. Shyam Sunder (2009) : Labour Institutions and Labour Reform in Contemporary India, Trade Union and Industrial Conflict, Vol 1, Icfai University Press, Hyderabad.

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 53-60

चिन्तन-चिन्ता

भारतीय मुसलमानों में जातिव्यवस्था-राजनीतिक विश्लेषण

✍ डॉ. शमीम राईन

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही जाति व्यवस्था एवं कटु सच्चाई है। हिन्दु धर्म में प्रतिपादित वर्णव्यवस्था का परिवर्तित रूप ही आज जाति व्यवस्था है। लेकिन इस्लाम एक समतावादी धर्म है इसमें किसी प्रकार का ऊँच--नीच और भेदभाव की मनाही है। लेकिन कुछ विद्वानों का मानना है कि हिन्दू धर्म के प्रभाव के कारण भारतीय मुसलमानों मे भी जातिवाद व्याप्त हो गया लेकिन विद्वान, मुसलमानों में जातिवाद को लेकर एक मत नहीं है क्या भारतीय मुसलमानों में जातिवाद है। इसका उत्तर हाँ और ना दोनों में है। जातिवाद क्या है इस विषय ने नेस्फील्ड कहते हैं कि व्यक्तियों का ऐसा समूह जाति है जो व्यवसाय और विवाह बंधें से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।[1]

प्रो. इम्तियाज अहमद ने जाति व्यवस्था की चार विशेषताए बतलायी हैं।

1. एक जाति सजातीय विवाह करती है।
2. उसकी एक व्यावसयिक विशेषज्ञता होती है।
3. जातियाँ एक सोपान में श्रेणीबद्ध हैं।
4. सामाजिक मेलमिलाप और खानपान पर प्रतिबंध के रूप में जाति प्रथा का एक वैचारिक, धार्मिक आधार होता है।[2]

इस प्रकार जाति व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो कार्य, विवाह प्रथा और रीति रिवाज की एकता के बंधन में बंधे होते हैं।

मोटे तौर पर अरबी के तीन शब्द :

(i) अशराफ (उच्च)
(ii) अजलाफ (व्यवसायिक जातियाँ या पेशेवर जातियाँ)
(iii) अरजाल (घृणित या अछूत जातियाँ)

भारत में स्पष्ट रूप से ये तीन विभाजन दिखायी देता है। मंडल आयोग की सिफारिश के बाद भारत सरकार ने भी सामान्य और अन्य पिछड़े वर्ग में मुस्लिम समाज की पहचान भी है लेकिन अभी अरजाल की पहचान कानूनी दृष्टि से नही हुई है।

अशराफ (उच्च जातियाँ)

बंगाल से लेकर पंजाब तक के सारे उत्तर भारत में बहुत घनी आबादी है और इस क्षेत्रों में बड़ी संख्या में मुसलमान रहते हैं। भारतीय अशराफ मुसलमानों को स्पष्टत दो भागों में बाटा जा सकता है।

1. पहले वे लोग जिनका संबंध विदेशी नस्ल से है जैसे सैयद, शेख, मुगल और पठान
2 दूसरे स्थानीय लोगों की संताने हैं यानि जिनके पूर्वज मुसलमान हो गये थे। इसमें विशेष कर हिन्दुओं की बड़ी जातियाँ जैसे ब्राह्मण, राजपूत; क्षत्रिय युद्ध और भूमिहार इत्यादि।

✍ वरिष्ठ प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री भगवान महावीर पी. जी. कालेज फाजिलनगर, कुशीनगर एवं वर्तमान में जनरल फेलो (आई. सी. एस. एस. आर., नई दिल्ली)

1931 की जनगणना के अनुसार मुसलमानों की निम्नलिखित बड़ी जातियाँ थी।

1. अशराफ–सैयद, मुगल, पठान और शेख
2. मुस्लिम राजपूत

नेस्फील्ड ने अशराफ मुसलमानों के चार ऊँचे वर्गों के लिए जाति शब्द के प्रयोग का सीधे–सीधे खण्डन किया है। और वह उन चार वर्गों को कबीले का पर्याय बताया है। लेकिन जे. सी. विलियम्स ने इन चार वर्गों को जाति स्वीकार किया है। नेस्फील्ड ने जाति की परिभाषा बहुत ही सरसरी अंदाज में की है और उनकी परिभाषा व्यवसाय और विवाह तक सीमित है। इसलिए उन्होंने जाति के स्थान पर अशराफ मुसलमानों के लिए कबीला शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन आज भारत में उपर्युक्त कसौटी के आधार पर हिन्दुओं में जातिवाद पर प्रश्नचिन्ह लग जायेगा क्योंकि आज कोई भी जाति कोई भी व्यवसाय अपना रही है। विवाह के संबंध में अभी कठोर नियम है। इन जातियों में कोई भी व्यक्ति नमाज के समय इमाम की भूमिका में काम कर सकता है बशर्ते की वह धार्मिक ज्ञान की दृष्टि से इसका अधिकरी हो लेकिन अधिकांश पठानों और मुगलों में सैयद और शेख इमामत के फर्ज को अन्जाम देते हैं इसकी वजह यह है सैयद और शेख दोनों को आंरभ में हिज्रत करके आने वाले मुस्लिम शुरफ (श्रेष्ठ जनों) की संतानों में से समझा जाता है। हिन्दुओं में ब्राह्मणों को भी यही सम्मान प्राप्त है इसके अलावा मुरीद और पीर की सारी विरासत सैयद और शेखों की ही इजारेदारी है। उत्तर भारत में एक पीर–ए–तवीकत या तो शेख होता है या सैयद। चाहे उसकी सिजरा कोई दूसरी भी हो लेकिन वह अपना वंशगत संबंध किसी सैयद सूफी से जोड़ लेता है और इसी सूफी का नाम अपनी जातिगत उपाधि के रूप में प्रयुक्त करता है। मिसाल के तौर पर चिश्ती, जलाली, कादरी और कुताबिया आदि।

अशराफ जाति

(क) **सैयद टाइटिल** : ये प्रायः नाम से पहले या अन्त में सैयद या मिर लिखना पसन्द करते है इसमें इनके उपविभाजन भी है आब्दी, अस्करी, वाकरी हसानी, हुसैनी, काजमी, नक्वी, रिजवी, तक्वी और जैदी, कुछ ऐसे टाइटिल है जो शिया में सैयद है और सुन्नी में शेख, अव्वासी, अल्वी, हाशमी और जाफरी।

(ख) **शेख** : अन्सारी, फारूकी, खुरासानी, मिल्की , किदवी, कुरैशी, सिद्दीकी और उस्मानी।

(ग) **मुगल** : सामान्यतः मुगल अपने नाम के शुरू और अन्त में मिर्जा शब्द का प्रयोग करते हैं।

इसके अलावा चगतै, काजी, ताजिक, तैमुरी तुर्कमान और उजबेग इत्यादि लिखते हैं।

(घ) **पठान जाति** : सामान्यतः ये नाम के अन्त में खान लिखते हैं। इसके अलावा ये अफरीदी, वंगश, बराकजयी, बर्क, दोदेजयी, दुर्रानी, घोर गुस्ती, गौरी ककर खलील, लोधी मोहम्मद, मोहम्मदजयी, ओराकजयी और रोहिला, पुशपफाथी इत्यादि लिखते हैं।

नीचे दिये हुए राजपूत संपूर्ण उत्तर प्रदेश में पाये जाते हैं।

मुस्लिम राजपूत : यह जाति संपूर्ण उत्तर प्रदेश में पायी जाती है। भले सुल्तान (मुख्यतः बुलंदशहर और सुल्तानपुर), खान जादा मुख्यतः अवरूद्ध, रन्धर (संपूर्ण उत्तर प्रदेश), लालखानी (बुरगुर्जर संपूर्ण उत्तर प्रदेश)

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुसलमानों में अशरफ (उच्चजाति) है और इनका सामाजिक व्यवहार हिन्दू श्रेष्ठ जातियों के समकक्ष ही है।

अजलाफ (पेशेवर जातियाँ)

अशराफ (श्रेष्ठ जन) और मुस्लिम राजपूतों के वर्गों के अलावा बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनके व्यवसायों को साफ सुथरे समझा जाता है। उत्तर भारत की अधिकांश आबादी ऐसे ही व्यवसायियों से भरी पड़ी है। इसमें कुछ जातियों विदेशी मूल वंशज को अपने आप को मानती हैं और कुछ जातियाँ हिन्दूधर्म परिवर्तन करके ईस्लाम धर्म स्वीकार की है। बहुत सी ऐसी पेशेवर जातियाँ हैं जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल है। उदाहरणार्थ बढ़ई, दरजी, धेनी, कुम्हार, लुहार, नाई, सुनार और तेली इनमें से हर एक पेशावर जातियाँ (हिन्दू और मुसलमान दोनों) कभी कभी एक व्यवसाय के आधार पर संगठित हो जाती हैं। लेकिन सामाजिक रीति रिवाजों के मामले में हमेशा अलग रहती हैं। शादी ब्याह, त्योहार और धार्मिक रीतियों को लेकर प्रत्येक जाति एक पृथक इकाई की हैसियत रखती है। इन पवित्र व्यवसायों से जुड़े लोगों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है।

1 ऐसी जातियाँ जो पूरी तरह से मुसलमान हैं और उनके समतुल्य हिन्दू जाति या तो आस्तित्व में नहीं है और अगर है भी तो हिन्दू जाति व्यवस्था में इनका सामाजिक दर्जा बिल्कुल अलग है।

2. ऐसी जातियाँ जिनमें हिन्दू शाखाओं की तुलना में मुसलमान शाखाएँ अधिक हैं।

3. ऐसी जातियाँ जिनमें मुसलमान शाखाओं की तुलना में हिन्दू शाखाएं अधिक हैं।

(क) ऐसी जातियाँ जो पूरी तरह से मुसलमान हैं :

जैसे आतिशबाज, भांड, मोमिन, जुलाहे, मीरासी कस्साब और फकीर। हालांकि अबाये जातियां हर तरह से मुसलमान हो चुकी हैं लेकिन इनसे मिलती–जुलती कुछ जातियाँ हिंदुओं में भी मौजूद हैं। उदाहरण स्वरूप सिक्के के समतुल्य हिन्दू कहार है। अजलाफ पेशेवर जातियां भारतीय मुसलमानों में 85% है। मंडल आयोग ने तो पेशेवर और अछूत दोनों को अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल कर लिया। एक संक्षिप्त व्याख्या जो प्रमुख पेशेवर जातियाँ हैं दिया जा रहा है।

मोमिन जुलाहा :

उत्तरप्रदेश, बंगाल और बिहार के जुलाहे बड़ी तादाद में हिन्दुओं से मुसलमान हुए हैं। इस कारण भारत में मुस्लिम जुलाहा मोमिन जुलाहे के नाम से आज भी एक स्वतंत्र जाति माने जाते हैं। 1931 की जनगणना की रिपोर्ट में दूसरे मुसलमानों में धंधेगीरी की संख्या से उनकी संख्या ज्यादा बताई गई है। अपने कुलीन होने के दावे के कारण वे लोग मुसलमान के अशराफ तबके में प्रायः ऊँचे दरजे के शेखों में शादी–ब्याह करना पसन्द करते हैं 1931 ई में इन्होंने आल इंडिया जमीयतुल मोमिनीन के नाम से अपना एक स्वतंत्र संगठन बनाने की कोशिश की। बाद में इस संगठन का नेतृत्व बिहार के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता और मोमिन कांफ्रेस के अध्यक्ष अब्दुल कयूम अंसारी के हाथों में आ गया। यह सभा उनके आर्थिक, व्यावसायिक और राजनीतिक हितों की रक्षा की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस जाति के तमाम लोग शेख होने का दावा करते हैं। और अपने आप को मोमिन अंसारी कहते हैं।

गद्दी :

मुसलमान मवेशी फरोशः आमतौर यह माना जाता है कि गद्दी घोसियों मुस्लिम चरवाहे की एक विशुद्ध मुस्लिम शाखा है। मुस्लिम जात–पात के हिसाब से तेली, धेनी और फकीर के साथ–साथ गद्दियों को पाक पेशावर जातियों में से सबसे निचला दर्जा प्राप्त है।[3] लेकिन इलाहाबाद जिले में इनकी स्थिति अच्छी हुई। एक दबंग जाति के रूप में उभरी है। विधेयक और फूलपुर से सांसद अतिक अहमद के साथ उनके छोटे भाई अशरपफ इत्यादि इस जाति के एक राजनीतिक अगुआ के रूप में उभरे है। लेकिन

वर्तमान में अपने आपराधिक चरित्र के कारण इनके वर्चस्व में कमी आयी है। लेकिन इसके बावजूद इलाहाबाद में इनकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ हुई है।

फकीर :

हालांकि 1931 की जनगणना से पहले एक अलग जाति के रूप में इनकी पहचान नही थी लेकिन 1931 की जनगणना में एक अलग जाति की हैसियत से देखा गया। भिक्षावृत्ति के अलावा ये लोग कभी–कभी घरों में भी कार्य करते और मजदूरी भी करते हैं। गाजीपुर जिले के कामसार क्षेत्र में वृहस्पतिवार और रमजान के महीने में मुसलमान इन्हें खाना खिलाना शुभ मानते हैं। उत्तर प्रदेश के कुशी नगर और देवरिया जिले में इस जाति को दिवान भी कहा जाता है।

मीरासी (मुस्लिम गायकार) :

कुछ विद्वान मानते है कि मरासी जाति डोम जाति की वंशज है।[4] ब्लन्ट ने अपनी पुस्तक के चेप्टर कास्ट और इस्लाम में लिखा है कि मीरासी किंगारियाँ और धरहिया से निकट का संबंध है। आगे लिखते हैं कि घर की और मीरासी आपस में शादी विवाह करते हैं।[5] यह भी माना जाता है कि यह जाति नट से जुड़ी हुई है जो एक अछूत और पिछड़ी जाति है।[6] मस्लिमों में मिरासियों के दो प्रमुख कार्य है।

1. विभिन्न शुभ अवसरों पर गाना बजाना, जैसे इदुल फितर, इदुलजुहा, शादी विवाह, बच्चों में जन्म इत्यादि।
2. यह मुख्य रूप से सूफी सन्तों की मजारों पर होने वाले वार्षिक उर्स पर भी गीत गाते हैं जिसे हम कौवाली की संज्ञा देते हैं। अब अपने आपको उच्च जाति के मुस्लिमों की नकल करने लगे है। परदा प्रथा को अपना लिये है। ये आपने को कुरैशी शेख कहलाना पसन्द करते हैं।

भाटियारा (इनकिपर) :

यह जाति मुख्यतः सराये की देखभाल करती थी लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश में वाराणासी और चन्दौली जिलों में यह सवारी ढोने का भी कार्य करती है इनका मुख्य पेशा घोड़ा गाड़ी है।

भिस्ती :

यह हिन्दू कमकर (पानी ढोने वाले) के समकक्ष है इनका मुख्य पेशा लोगों के शादी ब्याह के अवसर पर पानी ढोना होता है। बाद में यह अपने आपको अशरफ मुस्लिम कहने लगे। जैसे ये अपना लक्व अब्बास, वंगश, फारूकी, गौरी, कुरैशी, मुगल् पठान, शेख, और सैयद लिखने लगे। इस जाति के बारे में क्रूक लिखते हैं कि यह सूफी संतों की मजारों पर चमड़े के थैले में पानी पिलाने का भी कार्य करती है।[7]

कसाब (मुस्लिम कसाई)

यह जाति उत्तर प्रदेश में गोस्त (मीट) का काटने (जबह) करने का कार्य करते है। अशराफ मस्लिम हिन्दू से मीट खरीदना पसन्द नहीं करते क्योंकि उसे झटका की मीट मानते हैं। झटका का मीट मुस्लिम को खानाहरा करार दिया गया है। इसीलिए मुसलमानों में कसाई जाति की उत्पत्ति हुई लेकिन मुसलमानों में एक चिकवां जाति भी है इनका भी कार्य मीट का पेशा करना। लेकिन ये कसाब से अपने आप के श्रेष्ठ होने का दावा करते हैं क्योंकि कसाई गाय–भैंस और बैल के मीट की खरीद फरोख्त करते हैं जबकि चिकवा बकरा और मुर्गे का कारोबार करते हैं। वर्तमान में ये दोनों जातियाँ शेख होने का दावा करती हैं अपना टाइटिल हाशमी और कुरैशी लिखती हैं। गाजीपुर में चिकवा कुछ स्थानों पर डाफाली भी कहा जाता है। यह चिकवा के अलावा विवाह–शादी के अवसर पर ढोलक और शहनाई भी बजातें हैं।

कुजड़ा (राईन) :

इन्हें सब्जी फरोश भी कहा जाता है। इनका मुख्य व्यवसाय सब्जी, मछली और फलों का क्रय विक्रय करना। इनका टाइटिल राई, राईन और बागवान है। इनके बारे में कहा जाता है कि ये अपनी जाति में ही शादी विवाह करते हैं। ये एक साथ दो बहनों से शादी करते हैं।[8] लेकिन उ. प्र. जमायुतीर राइन के उपाध्यक्ष श्री युनूज राइन का दृष्टिकोण है कि उपयुक्त तथ्य सही नहीं है। एक साथ दो बहनों से शादी का रिवाज इस जाति में विशेष परिस्थिति में ही है आगे कहते है कि यह जाति बिन कासिम के साथ आये सिपहा सलार मो. सलीम से उत्पन्न हुई है। मो. सलीम अरब में राई पर्वत पर बसे कबीले से ताल्लुक रखते थे। इसलिए जाति का टाइटिल राइन या राई रखा गया है।

दर्जी :

1881 में इनकी संख्या अकेले उत्तर प्रदेश में 22, 441 थी। जबकि हिन्दू दर्जियों की आबादी 15522 थी। 1931 में मुसलमान दर्जियों की संख्या बढ़कर 1,68900 हो गयी थी। लेकिन समकालीन भारत में दर्जी का कार्य विभिन्न जातियों ने अपना लिया है। इनकी पहचान बहुत मुश्किल हो गयी है लेकिन इसके बावजूद पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिले में मुस्लिम दर्जी के रूप में आज भी उपस्थित है वैसे दर्जी शब्द की व्युत्पत्ति फारसी के दर्जन से हुई है। जिसका अर्थ सीना (सिलाई) होता है। पिछली शताब्दी के आरंभ में सूजी (यह संस्कृत शब्द है) शब्द भी दर्जियों के लिए प्रयुक्त होता था।

धुनिया :

रूई धुनने का काम बिल्कुल मौसमी है। ये लोग सर्दी का मौसम शुरू होते ही रजाई गद्दे तथा तकियों के काम में लग जाती हैं। 1931 बमदेने रिपोर्ट में इनकी संख्या 387565 बताया गया।

मानिहार :

चूड़ी बनाने वाले मनिहार कहलाते हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक अपनी बिरादरी में शादी करते हैं। पंचायत की स्वीकृति के बिना इनमें शादी–शुदा औरत को तलाक नहीं दी जाती है।

रंगरेज :

उन्नीसवीं शताब्दी में ये लोग पहले एक अलग जाति में थे, जैसे कि विलियम्स और नेस्फील्ड ने लिखा है। लेकिन वर्तमान समय में रंगरेजों के बहुत छोटे समूह में पाये जाते हैं। वे इस रूप में संगठित नहीं है कि उन्हें स्वतंत्र जाति कहा जा सके। क्योंकि इस वक्त छपाइ के काम का महत्व घट गया है। इसलिए उन्होंने दूसरे धंधे शुरू कर दिये हैं। परिणाम स्वरूप सिर्फ थोड़े से लोग अपने खानदानी पेशों को करते हैं। ये लोग अपनी बिरादरी में ही शादी करते हैं।

सैक लगर :

सैकलगर घर बनाने वाले या बर्तनों पर कलई करने वालों को बोला जाता है। विलियम्स नेस्फील्ड और ब्लंट ने संकलगरों को एक अलग जाति स्वीकार किया है। मौजूदा जमाने में इनकी तादाद ज्यादा नहीं है। कुछ सैकलगर ऐसे हैं जो अपना पैतृक पेशा करते हैं लेकिन दूसरी पेशावर जातियाँ जैसे धुनियाँ, बढ़ई, कुम्हार उनमें विलीन हो गई हैं जो कि आर्थिक दृष्टि से उनके समतुल्य हैं।

ऐसी जातियाँ जिनकी मुसलमानों से ज्यादा हिन्दुओं में शाखाएं हैं।

ऐसी जातियाँ जो ईस्लाम धर्म बहुत कम ने स्वीकार की। इसलिए नीचे दिये हुए कुछ जातियाँ जो हिन्दुओं में ज्यादा पायी जाती हैं मुसलमानों में कम।

धोबी :

हिन्दुओं में यह जाति बड़े पैमाने पर पायी जाती हैं मुसलमानों में इनकी संख्या बहुत नगण्य है। हिन्दुओं में इन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त है। लेकिन मुस्लिम धोबी की ऐसी स्थिति नहीं है। मुस्लिम धोबी के कार्य को स्वच्छ पेशा माना जाता है। इन्हें मस्लिम नाई, चिकवा तथा गद्दी के समकक्ष ही माना जाता है नेस्फील्ड ने इस जाति का सामजिक हैसियत भंगी से ऊपर माना है।[9]

कुम्हार :

1869 में मुस्लिम कुम्हार की संख्या अवध जिला में 249 आंकलित किया गया था।[10] लेकिन आज इनकी संख्या पूरे उत्तर प्रदेश में लाखों में है। इनमें कई उपजाति में विभाजित हो गये है। मुस्लिम कुम्हार को उत्तरप्रदेश में काश्गर भी कहा जाता है।

नाई या हज्जाम :

मुस्लिम तथा हिन्दू दोनों धर्मों में पाये जाते हैं। लेकिन पेशागत दृष्टि से दोनों समकक्ष हैं। इनका मुख्य पेशा बाल, दाड़ी काटना और विवाह–शादी के अवसर पर मेशेन्जर का कार्य करना कहीं–कहीं तो ये शादी कराने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

तेली :

हिन्दू धर्म में इस जाति को स्वच्छ माना जाता है क्योंकि तेल का व्यवसाय इनका मुख्य पेशा होता है तेल घरेलू और उत्सव के अवसर पर प्रयोग होता है।11 उत्तर प्रदेश में 1891 के सेन्सन्स रिपोर्ट में 742 हिन्दू और 239 मुस्लिम तेली की संख्या अंकित किया था। जो आज बढ़कर लाखों में हो गया है।

वर्तमान समय में अजलाफ मुस्लिम में कई उपजाति बन गई हैं सच्चर समिति (2005) ने उत्तर प्रदेश में 64 पेशागत मुस्लिम जातियों की पहचान की है लेकिन उत्तर प्रदेश और केन्द्रीय सूची में अन्य पिछड़े वर्ग में मात्रा 32 जाति ही सूचीबद्ध हैं।[12]

अरजाल (अछूत जातियाँ)

डॉ. अम्बेडकर ने एक बार बंगाल असेम्बली में बोलते हुए कहा कि 1901 के जनगणना रिपोर्ट यह सिद्ध करती है कि मुसलमानों में भी अछूत (अरजाल) है जो हिन्दुओं में समकक्ष है। महात्मा गाँधी ने अपने पत्रा इन हरिजन में लिखा है कि नाम मात्रा को एक इसाई, मुस्लिम या हिन्दू और अब एक सिख हो गया हो वह अब भी हरिजन ही है। जो लक्षण उसने हिन्दू रहते हुए विरासत में पाये है, उसे वह बदल नहीं सकता। वह अपनी पोशाक बदलकर स्वयं को एक कैथेलिक हरजिन या एक मुस्लिम हरिजन या तब मस्लिम या नवीन सिख वह हो सकता है किन्तु उसे अछूत होने का आभास उसका जन्म भर पीछा करता रहेगा।[13] इस प्रकार स्वतंत्रता से पहले विभिन्न जनगणना रिपोर्ट और अम्बेडकर तथा गाँधी के विचारों से यह पुष्टि होती है कि मुसलमानों में अछूत है इसे 1935 के भारत सरकार अधिनियम में स्वीकार भी किया गया था।[14] अकादमिक दृष्टि से गौस अंसारी अपनी पुस्तक मुस्लिम 'कास्ट इन उत्तर प्रदेश' में लिखा है कि भंगी, हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों में पाये है जो अछूत होते है। मुस्लिमों में शेख मेहतर तथा लाल बेगी मुस्लिम समाज के एक बड़े हिस्सा हैं इन्होंने ने इसके उपजाति का भी उल्लेख किये हैं जिसे है अनुसूचित जाति मान सकते है। वाल्मिकी वंशोफर, धनुक, घी, गाजीपुरी, रेवात, इनरी हेला, लालबेगी, पत्थरफोर तथा शेख मेहतर।

प्रो. इम्तियाज अहमद ने कहा कि दलित मुस्लिम की अधिक स्पष्ट परिभाषा की जरूरत है। अंसारी का सुझाव है अशराफ और अजलाफ में संबंध और दूसरी तरफ अरजाल से संबंध सामाजिक फासले का लेकर हुआ था, जो कि अस्पृश्यता आधरित था। अंसारी लिखते है कि अरजल वर्ग को सामाजिक तौर पर अलग कर दिया गया और वे अशरफ और अजलफ वर्गों से संपर्क नहीं बना सकते थे। जहाँ तक सामाजिक मेल मिलाप का प्रश्न है तो अरजल समूहों के लोगों को सामाजिक फासला बनाए रखना होता था दूसरे समूहों के लोगों को भी सामाजिक फासला बनाए रखना होता होता था। दूसरे समूहों के लोगों से इसलिए दलित मुस्लिम उन्हीं को बोला जाना चाहिए जिनका सम्बन्ध अरजल जातियों से हों।[15] अली अनवर (अध्यक्ष पसमादा मस्लिम महाज) ने दलित मुसलमानों के निम्न जातिगत विवरण दिये है ये जातियां हैं, टिकिया फरोश, इत्तरफ फरोश, तलाल खोर, खक्रोब मोगलक जादा तथा चिरिमार को शामिल किया है।[16] प्रो. अहमद ने 47 मुस्लिम जातियों की पहचान की है जो अभी मंडल आयोग की सिफारिशों के आधार पर अन्य पिछड़ा वर्ग में हैं अनुसूचित जाति हैं। अहमद ने कहा कि अरजाल जातियों को एस. सी. का दर्जा न देकर आज धर्म निरपेक्षता पर प्रश्न चिह्न लग रहा है क्योंकि आज तक संविधान धर्म के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव को निषेध करता हैं। इसलिए मुस्लिमों व इसाईयों को भी एस. सी. का दर्जा दिया जाना चाहिए।[17] वैसे तो मुसलमानों से सख्ती से अस्पृश्ता को प्रतिबंधित किया गया। भंगी का लड़का भी कुरान पढ सकता, मस्जीद में जा सकता है लेकिन लोग आशा करते हैं कि नमाज नहीं पढा सकता न ही कुरान पढ़ा सकता है। अधिकांश मुस्लिम लोग भी अपने खाने पीने के बर्तन नहीं छूने देते हैं।[18] डॉ. एजाज अली (यूनाइटेड मुस्लिम मोर्चा अध्यक्ष) ने कुछ मुस्लिम जाति भी हिन्दू जातियों से परिवर्तित माना है जिसे जुलाह से मोमिन, खटिक से कुजड़ा, पासी से धुनिया तथा चमार से कसाई बन गये। इन्हें एस. सी. दर्जा मिलना चाहिए। गौस अंसारी की बातों की पुष्टि करते हुए डॉ. उमर ने लिखा है कि हिन्दुओं के समान ही मुसलमानों में भी अछूत जातियाँ पाई जाती है जिसमें भंगी प्रमुख हैं। लालबेगी भंगी का ही एक रूप है जिसकी निम्न शाखाएँ हैं : बाल्मीकी, हेला, दही, बांस तथा शेख मेहतर इत्यादि।[19]

विभिन्न एकेडमिशयनों के तर्कों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुसलमानों में भी छुआछूत का भेदभाव जमीनी स्तर पर है। यह स्थिति हिन्दू धर्म के प्रभाव के कारण ही है। इसलिए मुसलमानों को भी अनुसूचित जाति का दर्ज दिये जाने की वकालत प्रो इम्तियाज और अशफाक हुसैन अंसारी जैसे विद्वान करते हैं इसके अलावा सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न आयोगों की रिपोर्ट ने भी मुसलमानों में जातिवाद की चर्चा की गयी है, जिसमें महत्वपूर्ण आयोग क्रमशः काका केलकर आयोग, मंडल आयोग, संविधान, समीक्षा आयोग, सच्चर समिति तथा रंगनाथ मिश्रा रिपोर्ट है।

भारतीय संविधन के अनुच्छेद 340 में एक आयोग की नियुक्ति के लिए प्रावधान किया गया है। जो पिछड़े वर्गों की स्थिति की जाँच उक्त उपलब्धि के अनुसार करेगा। भारत सरकार ने 1953 में काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में पहला पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया था। आयोग ने अपना रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत किया आयोग ने 2311 जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग की सूची में शामिल किया जो भारत सरकार ने स्वीकार नहीं की लेकिन विभिन्न राज्य सरकारों ने इसी के आधार पर आयोग बनाकर पिछडे वर्गों को लाभ देने का उपाय किया। इन्हीं आयोगों में एक आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्गों को लाभ देने का उपाय किया। इन्हीं आयोगों में एक आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की राज्यवार तैयार सूची में धर्म और जाति निरपेक्ष अल्पसंख्यक के समुदाय शामिल किए गए थे, कई राज्यों में नव बौद्धों, ईसाई और इस्लाम में परिवर्तित अनुसूचित जातियों को इन सूचियों में शामिल किया गया।[20]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय मुसलमानों में जातिवाद है लेकिन दूसरी यह भी बात सत्य है कि सैद्धातिक स्तर पर इस्लाम धर्म में ऊँच नीच और छुआछूत की कोई जगह नहीं है। भारत में व्यवहारिक

स्तर पर इस्लाम धर्म के अनुयायियों में जातिगत विभेद है। समाज में शादी विवाह के संबंध इसी आधार पर निर्धरित होते हैं। अभी तक सरकारी स्तर पर अशराफ; उच्च वर्ग और अजलाफ (पिछड़े वर्ग) की मान्यता भारतीय सरकार द्वारा दिया गया है लेकिन अभी अरजाल वर्ग की पहचान नहीं की गयी और न ही उन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है। सच्चर समिति रिपोर्ट और रंगनाथ मिश्रा रिपोर्ट सरकार से सिफारिश कर चुकी है कि इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुयायियों में भी हिन्दू के समकक्ष अनुसूचित जातियाँ विद्यमान हैं। इसलिए उन्हें भी अनुसूचित जाति की सूची में सम्मिलित किया जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नेस्फील्ड– ब्रीफ व्यू ऑफ दा कास्ट सिस्टम, 1985, पेज 112
2. प्रो. इम्तियाज अहमद– भारत के मुसलमानों में जाति प्रथा और सामाजिक स्तरीकरण, ग्रंथ शिल्पी, 2003 दिल्ली, पेज, 30
3. जेसी वीलियम– दॉ रिपोर्ट ऑन दा सेनस ऑफ अवध, वेल्यूम 1, जनरल रिपोर्ट, 1869, पेज 83
4. तदेव, पेज 80
5. ई. ए. एच. ब्लन्ट – द कास्ट सिस्टम इन नादर्न इंडिया, पेज 202
6. सेन्सस रिपोर्ट यू. पी. 1931, पेज 639
7. क्रुक– वेल्यूम 2, पेज 99
8. गौस अंसारी– मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश–फॉकल्चर, लखनऊ 1960, पेज 305
9. सेन्सस रिपोर्ट यू. पी. 1931, पेज 535
10. नेस्फील्ड पेज 41
11. जेसी वीलियम– दॉ रिपोर्ट ऑन दा सेनस ऑपफ अवध वेल्यूम 1 जनरल रिपोर्ट, 1869, पेज 80
12. एच. एच. राईजलि–राइव एन्ड क़ास्ट ऑफ बंगाल, वेल्यूम 2, पेज 305
13. सच्चर समिति रिपोर्ट, 2005 पेज 201
14. Pakistan or thePartition of India,D.R. Ambadkar, Thucker& CO Ltd Bombay PP 218-219
15. द हरिजन, महात्मागांधी– 26 दिसम्बर 1936
16. भारत सरकार अधिनियम– 1935
17 गौस अंसारी, मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश (ए स्टडी ऑफ कल्चर कैन्टैक्ट) फोक कल्चर सोसाइटी यू. पी. लखनऊ, 1960
18. उपर्युक्त
19. Paperpresented at workshop on conformet of shedule caste status to untouchable/Dalitscoverted to christianity Islam: issues and challages at tata Instiute of Social Mumbai on August18, 19-2006
20 Muslim and India&Abroad, Abdul- APH Publication Delhi 1996 Page 57

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 61-62

चिन्तन-चिन्ता

डॉ. लोहिया के इतिहास चिन्तन की प्रासंगिकता

✍ **क्षमा यादव**

डॉ. राममनोहर लोहिया गंगा की पावन धार थे, जहाँ कोई भी बेहिचक डुबकी लगाकर मन को और प्राण को ताजा कर सकता है। यह बड़ी वास्तविक कल्पना है कि लोहिया जी गंगा की धारा ही थे जो सदैव वेग से रहे, एक क्षण भी बिना रूके, बिना ठहरे जब तक गंगा की धारा पहाड़ों में भटकती, टकराती रही, किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया लेकिन जब मैदानी ढाल पर आकर वह धारा तीव्र गति से बहने लगी तो उसकी तरंगों, उसकी वेगवती धारा उसके हाहाकार की ओर लोगों ने चकित होकर देखा पर लोगों को मालूम न था कि उसका वेग इतना तीव्र था कि समुद्र से मिलने में उसे अधिक समय न लगा। शायद उस वेगवती नदी को खुद भी समुद्र के इतने पास होने का अन्दाजा न था। यह तो भावी इतिहास ही सिद्ध करेगा कि देश आज के परिवर्तन में डॉ. राममनोहर लोहिया की क्या भूमिका रही, लगता है कि लोहिया ऐसे इतिहास पुरुष हो गये हैं, जैसे-जैसे दिन बीतेंगे उनका महत्व बढ़ता जायेगा। इतिहास पुरुषों के साथ लोहिया जी का बहुत गहरा रिश्ता था। ऐसे ही लोहिया के कुछ भावुक क्षण होते थे राजनीति से दूर, पर इतिहास के गर्भ में जब वे डूबते थे, तो दूसरे ही लोहिया होते थे। यह इस देश का, इस समाज का और आधुनिक राजनीति का दुर्भाग्य है कि वह महान चिन्तक, इस संसार से इतनी जल्दी चला गया। यदि लोहिया जी कुछ वर्षों और जीवित रह जाते तो निश्चय ही सामाजिक चरित्र और समाज संगठन में कुछ नये मोड़ आ जाते।

भारत सदैव से दार्शनिकों, विचारकों, समाज सुधारकों और शिक्षा शास्त्रियों की कार्यस्थली रहा है। जिन्होंने अपने समय में अपने ज्ञान, बुद्धि और मेधा से समाज का विकास किया। अधिसंख्य के सिद्धान्त अपनी प्रतिबद्धता, सामाजिक स्तर और वातावरण से प्रभावित होने के कारण एकांगी ही रहे हैं यद्यपि उन्होंने उनके पूर्ण और अन्तिम सम्य होने का दावा भी किया है। आधुनिक युग के भारतीय मनीषि डॉ. राममनोहर सम्य होने का दावा भी किया है। आधुनिक युग के भारतीय मनीषि डॉ. राममनोहर लोहिया का जीवन कार्य और व्यवहारिक विचार दूसरों से भिन्न धरातल पर प्रतीत होते हैं और वे हमारे सामने अप्रतिम मानवता वादी के रूप में उभर कर आते हैं।

जाति व्यवस्था की समाप्ति और सामाजिक न्याय सम्मत व्यवस्था की स्थापना ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा था। पिछड़ों को प्रेरित करके समाज की विकृत व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष में उतारने के पीछे डॉ. राममनोहर लोहिया जी का तर्क था कि उनके पास खोने के लिये उस अमानवीय जीवन के अलावा और कुछ नहीं है जो इस समाज व्यवस्था के हाथों जीने के लिये विवश है। लोहिया जी की कल्पना उस समाज की स्थापना की थी जिसमें ऊँच-नीच का भेद नहीं होगा और जो जाति तथा वर्गविहीन होगा।

जिस विश्वबन्धुत्व, मानवतावाद और उन्मुक्त राष्ट्रीयता की बात डॉ. लोहिया ने अपने विचारों में व्यक्त किया है। उसका मूल उद्देश्य एक नयी संस्कृति और सभ्यता को जन्म देना है, जो आदमी और आदमी के बीच की दीवारों को तोड़ दें। विश्व की सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में बाँधकर एक ऐसे विश्व की ओर उन्मुख करें, जिससे अन्याय का परिष्कार हो सके। शोषण का विनाश हो और पूरी मानवता एकाग्र होकर "वसुधैव कुटुम्बकम" के आधार पर विश्व नागरिक के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर सके। इसलिये जिन नयी सभ्यता और संस्कृति का विकास आज के आधुनिक जीवन में डॉ. लोहिया आवश्यक मानते थे, उसमें सत्य, अहिंसा, कर्म और आचरण को प्राथमिकता दी गयी है।

✍ शोध छात्रा-इतिहास विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

डॉ. लोहिया के समाजवाद का स्वरूप, समता, सम्पन्नता और आध्यात्मिकता तीनों की नयी परिभाषा प्रस्तुत करता है। समाजवाद को वह समता में देखते हैं। आर्थिक उत्कर्ष को सम्पन्नता में पाते हैं। मनुष्य के अन्तःजगत् और बाह्य जगत के सामन्जस्य को वह आध्यात्मिकता से जुड़ा हुआ देखते हैं। डॉ. लोहिया भेद से अभेद तक की यात्रा में एक क्रमिक मनःस्थिति को पहचानते थे। इसी दृष्टि से वह इतिहास, नाटक और कला आदि सबको परखने की कोशिश करते हैं। किन्तु उनकी पुस्तक इतिहास चक्र पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि वह इस काल चक्र के केन्द्र में मनुष्य की इच्छा शक्ति को प्रतिष्ठित मानते हैं।

डॉ. लोहिया भले ही कभी ईश्वर के सामने सिर न झुकाया हो, लेकिन राम, कृष्ण और शिव पर जब वह लिखने बैठते थे तो उनके अन्तस्थल की आस्तिकता और उनकी दृष्टि की व्यापकता दोनों ही स्पष्ट रूप से हमारे सामने प्रस्तुत होती है, और भारत माता से प्रार्थना करते हैं – "हे भारत माता, मुझे शिव जैसी विशालता, राम जैसी मर्यादा और कृष्ण जैसा मुक्त मन दो।" उनकी इस उच्चतम आस्तिकता का सहज ही प्रमाण मिल जाता, जिसे वह लाख छिपाना चाहे, लेकिन छिप नहीं सकती। गहराई से देखने पर ऐसा लगता है कि मनुष्य मात्र ही डॉ. लोहिया के लिये ईश्वर स्वरूप था और मानवतावाद ही उनका धर्म था।

वह समाज और व्यक्ति के रिश्ते को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। सही समाज जीवन्त एवं कर्मनिष्ठ व्यक्तियों का सृजनशील स्वरूप होता है। यदि किसी समाज में सृजनशील व्यक्तियों का बाहुल्य होगा तो निश्चय ही ऐसे बहुआयामी व्यक्तियों के समाज का स्वरूप भी सृजनशील होगा। डॉ. लोहिया ने पूरे विश्व का आहवान प्रेम, अहिंसा, सौहार्द्र और भाईचारे के आधार पर एकजुट होने के लिये किया। उनका कथन है कि भय, अविश्वास और आतंक के आधार पर आजकल दुनिया में बहुत अन्याय हुए हैं। अब इतिहास बोध का यह तकाजा है कि इन मानवीय आधारों पर मनुष्य की नियति का निर्माण किया जाये।

गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम में एक नयी कड़ी लोहिया जी ने जोड़ी। चरखा के स्थान पर फावड़ा, आत्मा के स्थान पर वोट और सत्याग्रह के स्थान पर जेल को रेखांकित करके समाजवाद को नयी दृष्टि दी है। फावड़ा के माध्यम से श्रम, वोट के माध्यम से अधिकार और जेल के माध्यम से अस्वीकार की व्याख्या भी उन्होंने नये ढंग से की है। उन्होंने एक और नारा दिया है – चार घण्टे पेट को, एक घण्टा देश को।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 63-66

पर्यावरण एवं ग्लोबल वार्मिंग

ग्लोबल वार्मिंग से बचाव, प्रकृति का उचित रखरखाव

✍ डॉ. मंजू अवस्थी

प्रकृति ही प्राणियों के जीवन का सूत्र है। प्रकृति की अनुकूलता से जीवन स्थिर, सुखी और सम्पन्न रहता है और उसकी प्रतिकूलता जीवन का विनाशक होती है।

इसे प्रकृति के शोषण के अतिरेक ही कहाँ जायेगा कि इसी वर्ष शीतकाल विश्वभर में अभूतपूर्व हिमपात के लिए चर्चित रहा है तो अब गरमी की अतिशयता से हम पीड़ित है। गर्मियां और गर्म होती जा रही हैं, सर्दियों का अंतराल छोटा होता जा रहा है। बेमौसम बारिश और बढ़ती प्राकृतिक आपदाएँ किसका संकेत हैं? अभी वर्ष 2009–10 में उत्तर भारत समेत पूरा यूरोप भयानक ठंड से त्रस्त हो गया था जबकि दूसरे क्षेत्र भयानक गर्मी से त्रस्त थे। जीव–जंतु विलुप्त हो रहे हैं। श्राद्ध में कौवे की खोज करनी पड़ रही है। हमारे फसलों की पैदावार कम हो गई है। नई–नई बीमारियां घर कर रही हैं। बाहर निकलते ही सांस फूलने लगती है। पेय जल संकट गहराता जा रहा है। समुद्र तल बढ़ रहा है। इन सबके लिए जिम्मेदार है जलवायु परिवर्तन। आधुनिकता की दौड़ कहें या फिर उपभोग की बढ़ती भूख की होड़, हम सामान्य जीवन व्यवहार से दूर होकर प्रकृति का शोषण कर रहे हैं।

यूरोप में तीन शताब्दी पूर्व हुई औद्योगिक क्रांति के बिगड़ते स्वरूप में हमें स्वार्थी बना दिया है, फलतः हम अपने आचरण के दूरगामी परिणामों के प्रति उदासीन होते जा रहे है। अनेक वैज्ञानिकों ने समय–समय पर प्रकृति के इस शोषण की होड़ के दुष्परिणामों की चेतावनी भी दी है, लेकिन शोषकों के आचरण में उसके कोई फर्क नहीं पड़ा। जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग है। वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा तेजी से घरती का तापमान बढ़ा रही है। पिछले 300 सालों में वैश्विक तापमान 0.6 डिग्री सेल्सियस बढ़ गया है।

बढ़ती ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियरों के पिघलने, आबादी के दबाव में जंगल कटने, अतिवृष्टि या फिर सूखे के फलस्वरूप होने वाली आपदाओं की निरंतर त्रासदी झेलते रहने के बावजूद इनसे मुक्ति मिलने के उपायों की उपेक्षा हो रही है। स्टेट आफ एन्वायरनमेंट, इंडिया 2009 के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ रहे धरती के बुखार को समय रहते न थामा गया तो इस कृषि प्रधान देश के खेतों की प्यास बुझाना मुश्किल हो जाएगा। समुद्र का बढ़ता तापमान मेघों को मुख्य जमीन पर नहीं जाने देता और बढ़ी नमी बादलों को किनारे पर ही बरसने को मजबूर कर देती है।

विश्वभर के शासकों द्वारा समय–समय पर आयोजित सम्मेलनों में अपने को छोड़कर अन्य देशों पर 'आचरण में संयम' का दबाव इन सम्मेलनों को असफलता का कारण रहा है जैसाकि अभी हाल में कोपेनहेगन और बॉन में पर्यावरण संरक्षण सम्मेलन में हो चुका है। विकसित देश अपनी संपदा और आधिपत्य को बढ़ाने के लिए कार्बन उत्सर्जन में कटौती को राजी नहीं है। कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लिए वे विकासशील देशों पर दबाव डालते हैं। पृथ्वी सम्मेलनों का किसी निष्कर्ष पर पहुंचे बिना ही समाप्त हो जाने का यही कारण है।

धरती पर बढ़ती तपिश के कारण हिमालय पर चढ़ी बर्फ की सफेद चादर लगातार सिकुड़ रही है। काठमांडू स्थित इंटरनेशनल सेंटर फार इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलपमेंट का अध्ययन कहता है कि जलवायु परिवर्तन का बुखार ऐसे ही बढ़ता रहा तो 50 साल में हिमालय के ग्लेशियर गायब हो सकते हैं। माना जाता है कि बीते तीन दशकों में वातावरण में पहुंची ग्रीन हाउस गैसों ने हिमालय के तापमान को

✍ रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, डी0बी0एस0 (पी0जी0) कालेज, कानपुर

भी 0.6 डिग्री सेंटीग्रेट बढ़ा दिया है। ग्लेशियरों की लगातार बिगड़ती सेहत भारत की अधिकतर नदियों के लिए भी तबाही की तैयारी है। देश में पर्यावरण की स्थिति का ताजा एक्स–रे पेश करती स्टेट आफ एन्वायरनमेंट रिपोर्ट, इंडिया 2009 करती है कि हिमालय के कई ग्लेशियर हर साल 10 से 15 मीटर के औसत से पिघल रहे हैं। रिपोर्ट के अनुसार हिमालय पिघला तो पहले नदियां लहरायेंगी, लकिन बाद में पानी का स्तर खतरनाक हद तक घट जायगा।

रियो में पृथ्वी सम्मेलन में विचारवान लोगों ने यह कहा था कि यदि पृथ्वी को विनाश से बचाना है तो हमें भारतीय जीवन पद्धति का अनुशरण करना होगा। भारतीय जीवन पद्धति क्या है ? आसानी से समझने के लिए कहा जा सकता है– प्रकृति से तादात्य यानी उपभोग में संयम। ईशोपनिषद के पहले श्लोक में ईश्वर द्वारा प्रदत्त साधनों के 'त्यागपूर्वक भोग' की जो बात कही गई है, वही भारतीय जीवन पद्धति है। प्रकृति का दोहन तो किया जा सकता है शोषण नहीं। जिस प्रकार एक गाय के चार स्तनों में से दो या तीन से दूध दुहा जा सकता है और शेष उसके बछड़े के लिए छोड़ दिए जाते है, वही अंतर दोहन और शोषण में है।

हम भारतीय आजकल शोषण के प्रति अधिक आग्रही होते जा रहे है। इसके दुष्पारिणाम भी सामने आ रहे हैं। पूर्व वर्षों में उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र प्रारंभ होते ही हमें शीत से बचने के उपाय अपनाने पड़ते थे। प्रत्येक 10–15 किलोमीटर पर प्राकृतिक स्रोत के शीतल जल से अपनी प्यास बुझाते और मोटरगाड़ी की गरमी को उसके शीतल जल में शमन करते हुए हम आगे बढ़ते थे। लेकिन इस बार की यात्रा में गरम कपड़े बैग में बंद पड़े रहे। जहाँ हम एक से ज्यादा रजाई ओढ़कर सोते थे, वहीं चारद ओढ़ने भर से काम चलता रहा। यही नहीं, प्राकृतिक जलस्रोत के दर्शन नहीं हुए और कल–कल करती नदियों का स्वरूप किसी नाली के समान हो गया है। इस बार पर्वतीय अंचल में जो धधकती आग देखने को मिली वह अत्यंत भयावह है। हरे–भरे वृक्ष पूरी तरह से सूखने लगे हैं, पशु–पक्षी जलकर मर रहे हैं या फिर जंगल कटने के कारण गांवों में घुस जाने के कारण मारे जा रहे है।

हम मैदानी इलाकों की गरमी की जो चर्चा कर रहे हैं उससे सुदूर पर्वतीय अंचल भी अछूता नहीं है। इसके बहुत से कारण बताए गए। मैं उनके विस्तार में नहीं जाना चाहती क्योंकि उसके लिए तर्क भी दिए जाते हैं। हमें भी दिए गए लेकिन उन तर्कों में एक समानता देखने को मिली। अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए दूसरों पर दोषारोपण। जनता का आरोप सरकार और उसकी नीतियों पर और सरकारी अमलों का आरोप जनअसहयोग के रूप में मुखरित होता है। ऐसा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में विकसित और विकासशील देशों के बीच हो रहा है। देखा जाए तो इसके लिए दोनों ही अर्थात हम सभी जिम्मेदार हैं। इस जिम्मेदारी की समझने के लिए मैदानी इलाकों के गांवों के स्वरूप का अवलोकन करना भर काफी होगा।

बढ़ते तापमान के प्रभाव से पिघलते ग्लेशियरों के कारण भारत की जीवनदायिनी नदियों के लिए भी अस्तित्व का खतरा पैदा हो गया है। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के भेजे दस्तावेज में भी सरकार ने माना है कि अब बारिश बढ़ने के बावजूद नदियों में पानी नहीं होता। साथ ही पहाड़ों से उतर कर समंदर में समाते ग्लेशियरों ने समुद्री सतह बढ़ने का भी खतरा बढ़ा दिया है। पर्यावरण मंत्रालय का मानना है कि समुद्र की सतह में महज एक मीटर की बढ़ोत्तरी साढ़े पांच हजार वर्ग किमी से ज्यादा जमीन खा जाएगी।

जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक संसाधनों पर विभिन्न देशों में प्रतिस्पर्धा को तीव्र कर सकता है। इससे इन संसाधनों पर टकराव बढ़ सकते हैं। उदाहरण के लिए एशिया में पानी को लेकर एक नया खेल शुरू हो सकता है। तिब्बत से निकलने वाली अनेक नदियों के स्रोत पर नियंत्रण रखने वाला चीन स्थिति का फायदा उठा सकता है। ग्लेशियर और पहाड़ों पर बर्फ पिघलने में तेजी आने पर नदियों में

जल का प्रवाह बढ़ जाएगा। उच्च औसत तापमान के कारण अधिक वर्षा होने की भी उम्मीद है। पानी के विशाल भंडार के संबंध में तिब्बत का दर्जा दुनिया भर में अनोखा है। विश्व में किसी अन्य क्षेत्र में पानी का इतना विपुल स्त्रोत नहीं है, जो विश्व की करीब आधी आबादी की जरूरतें पूरी कर सकता है। इसमें चीन और दक्षिणपूर्वी एशिया का इलाका शामिल है। तिब्बत के विशाल ग्लेशियर, भूमिगत जल के बड़े स्त्रोत और ऊँचाई के कारण यह विश्व का महानतम नदी तंत्र है, किंतु अब चीन नदियों को आपस में जोड़कर तिब्बत से पानी का प्रवाह चीन के अन्य भागों की ओर मोड़ रहा है। इससे भारत और अन्य देशों में नदियों का अन्तरराष्ट्रीय प्रवाह बाधित हो जाएगा।

तूफान, बाढ़ और सूखा जैसी मौसमी आपदाओं में वृद्धि होगी। समुद्र के जलस्तर में वृद्धि होने से एक देश के नागरिक दूसरे देशों में शरण लेने को बाध्य होंगे और एक इलाके के लोग दूसरे इलाके में पलायन करेंगे। इसका सबसे अधिक नुकसान गरीब देशों को उठाना पड़ेगा। बाहरी लोगों का रेला देश में सामाजिक और आर्थिक ढांचे को छिन्न–भिन्न कर सकता है, जिससे नाजुक जातीय संतुलन गड़बड़ा जाएगा और आंतरिक तथा क्षेत्रीय सुरक्षा पर खतरा पैदा हो जाएगा। यह नहीं भूलना चाहिए कि अनेक समाज जातीयता, संस्कृति और धर्म के प्रभावी मिश्रण होते हैं।

पहले गाँवों में कई तालाब हुआ करते थे, अब बमुश्किल ढूंढने पर एक आध दिखते हैं। यह स्थिति तब है जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य सरकारों को कई वर्ष पूर्व यह निर्देश जारी किया था कि सभी तालाबों को पुनः अस्तित्व में लाया जाए। और यदि उन पर भवन बन गए हैं तो उन्हें ध्वस्त कर दिया जाए। हमारे संज्ञान में एक भी ऐसी घटना नहीं आई है यहाँ तालाब को पुनः अस्तित्व में लाने के लिए भवनों को ध्वस्त किया गया हो। हाँ, ऐसे सैकड़ों उदाहरण पेश किए जा सकते हैं जो तालाबों को पाटकर भवन बनाने के लिए बिल्डरों को दिए गए है। यह सिलसिला अभी भी जारी है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र नोएडा में तो हजारों वृक्ष काटकर, नदियों को पाटकर कंकरीट के जंगल खड़े किए जा रहे है। इस दुरूह स्थिति से निपटने के लिए हमारे समाज के धर्मगुरूओं ने अभियान शुरू किया है। इसमें सभी धर्मों के लोग शामिल है। इस्लामी संस्थाओं विशेषकर दारूल–ऊलूम, देवबंद ने तो धरती, गाय और गंगा की संरक्षा के लिए फतवे भी जारी किए है। श्री श्री रविशंकर अपने सहयोगियों के साथ स्वयं दिल्ली में यमुना की सफाई के लिए उतर चुके हैं। लेकिन नदियों में सफाई के लिए जगह–जगह किए जा रहे प्रदर्शन कार्य अथवा 'एक पूत दमदार, दस पेड़ फलदार' जैसे नारे उछालने के बावजूद हमारी चेतना जागृत नहीं हो रही है। क्यो ?इसका भूल कारण है सम्यक सोच का अभाव और अपने कर्तव्यपालन के बजाय दूसरों पर दोषारोपण। आज स्थित भयावह है। वैज्ञानिकों की चेतावनी का हम पर असर नहीं हो रहा है।

यदि जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग का यही क्रम रहा तो एक दिन दुनिया पानी में होगी। सन् 2100 तक सम्रुदी सतह 20 सेंटीमीटर से 60 सेंटीमीटर तक बढ़ जायेगी। छोटे द्विप समूहों जैसे कि मालदीव, मारीशस और सेशेल्स आदि को भारी खतरा है। समुद्र की सतह लगातार बढ़ रही है, समुद्र में पानी भर रहा है और समुद्री किनारे तेजी से विलुप्त होते जा रहे हैं। यह खतरे का संकेत है, क्योंकि यदि यह क्रम जारी रहा और पूरी संभावना है कि जारी रहेगा, तो एक दिन दुनिया के अधिकांश हिस्से डूब जायेगें। द टेलीग्राफ में छपी एक खबर के अनुसार दुनिया भर के शीर्ष वैज्ञानिकों का मानना है कि समुद्र की सतह का बढ़ना लगातार जारी रहेगा और यह क्रम कुछ सालों तक नहीं बल्कि सदियों तक जारी रहेगा और इसे रोक पाना अब लगभग असम्भव है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ चुकी है कि यदि प्रदूषण के स्तर को तुरन्त प्रभाव से शून्य भी कर दिया जाये तो भी ग्लेशियरों का पिघलना और बर्फ का समुद्री पानी में मिलना कम नहीं होगा।

पहले अनुमान लगाया गया है था कि सन् 2100 तक समुद्री सतह 20 सेंटीमीटर से 60 सेंटीमीटर तक बढ़ जायेगी। लेकिन अब इस तथ्य को अपूर्ण माना जा रहा है। वैज्ञानिकों का अनुमान है

कि इस समय के दौरान समुद्री सतह 1 या 2 मीटर और कहीं–कहीं तो उससे भी अधिक बढ़ जायेगी और क्रम मात्र 2100 तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि जारी ही रहेगा। इसका व्यापक प्रभाव उन क्षेत्रों में होगा, जो ढलान पर स्थित हैं। एशिया के बांग्लादेश तथा कुछ छोटे द्वीप समूहों, जैसे मालदीव, मारीशस और सेशेल्स आदि को भी खतरा है। ये द्वीप पूरी तरह से डूब जायेंगे। इससे अलावा भारत के मुम्बई, पाकिस्तान के कराची तथा अन्य उन बड़े शहरों पर भी खतरा मंडरा रहा है, जो समुद्री तट पर स्थित है। वैज्ञानिकों का मानना है कि न्यूयार्क, फ्लोरिडा, लंदन, टोक्यो तथा अन्य एशियाई शहरों को बचाने के लिए अभी–से कमर कसने की जरूरत है। इसके लिए इंजीनियरिंग क्षमता का परिचय देते हुए ऐसे निर्माण कार्य करने होंगे जो समुद्री पानी से इन शहरों को बचा सकें।

भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धति पर्यावरण और प्रकृति के अनुकूल थी। उससे विमुख करने के बहुविध उपायों को विकास का लक्ष्य मान लिया गया है। हम आज स्वयं आचरण नहीं करना चाहते। हम जिसे प्राकृतिक आपदा या प्रकोप कहते हैं वह स्वयं हमारे आचरण की देन है। इसके लिए आवश्यक है कि उपभोग के अधिकार के बजाए कर्तव्य पालन के बोध का संज्ञान बढ़ाया जाए। भोगवाद की पाश्चात्य सोच के बढ़ते अतिरेक के दुष्परिणामों को देखते हुए प्रकृति के साथ तादात्म के अपने कर्तव्य का पालन किया जाए। आज आवश्यकता है गाँव बचाओ अभियान की जबकि हम शहर बढ़ाओं होड़ में लगे हैं एवं प्राकृतिक संपदा का अनावश्यक शोषण कर रहे हैं।

संदर्भ

1. सदी का संकट, – दैनिक जागरण, दिसम्बर, 2009
2. ब्रम्हा चेलानी, – जलवायु परिवर्तन के खतरे, दिसम्बर, 2009
3. रामकुमार शुक्ल, – वेद और पर्यावरण, मार्च, 2010
4. डा0 राजेन्द्र दीक्षित, – धरती के भूषण हैं, वृक्ष, अप्रैल, 2010
5. राजनाथ सिंह 'सूर्य', – प्रकृति का शोषण, जून, 2010

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 67-69

इतिहास दृष्टि

उत्तर मुगलकालीन भारत में हिन्दुओं के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय : तथ्यात्मक विश्लेषण

✍ डॉ. अनील कुमार सिन्हा

भारतीय विद्वानों ने धर्म को जीवन में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। भारतीय सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में धर्म ही सर्वोपरि है। धर्म की पृष्ठभूमि में किये गये समस्त कार्य कल्याणकारी माने जाते हैं तथा उनसे ही जीवन में उन्नति एवं सिद्धि प्राप्त होती है। डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन स्वरूपों और प्रक्रियाओं को लाते हैं, जो मानव जाति को गति एवं जीवन प्रदान करती है।[1]

उत्तर मुगलकालीन शासकों के भौतिक वैभव, हिंसात्मक प्रवृत्ति तथा विलासमय वातावरण में भी, धर्म की भावना सर्वोपरि बनी रही। इसी भावना के कारण ही तत्कालीन शासकों के हिन्दुओं के प्रति किए गए घोर अत्याचार भी उन्हें विचलित न कर सके। वह निरन्तर ही धार्मिक कृत्यों में व्यस्त रहे।

उत्तर मुगलकालीन भारत में हिन्दुओं के विभिन्न संप्रदाय नरायनी सम्प्रदाय— इस सम्प्रदाय का प्रसार कूच बिहार में विशेष रूप से था, जिसके अनुयायी :'नरायनी' कहलाते थे। वे एक ईश्वर पर विश्वास रखते थे तथा 'नरायण' शब्द की ईश्वर के महान नाम का सूचक मानते थे। कूच बिहार क्षेत्र में नरायन की ही मूर्तियाँ बनाई तथा स्थापित की जाती थी और मन्दिरों में उन्हीं की पूजा होती थी। इस प्रदेश के राजा भी नरायनी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वह अपने नाम के साथ नरायन शब्द लगाते तथा स्वयं को दैवी अधिकार प्रदत्त समझते थे। इतना ही नहीं, वह अपने सिक्कों पर नरायन की मूर्ति भी अंकित करवाते थे।[2]

नरायनी सम्प्रदाय के लोग अपने अस्त्रों को जहर में बुझा रखते थे। यदि कोई व्यक्ति इन अस्त्रों से घायल हो जाता तो घाव में तुरन्त सूजन आ जाती तथा उसका बचना मुश्किल हो जाता था। इस विष से प्रभावित व्यक्ति को तुरन्त कसेरू खिलाने तथा उसे घाव पर रगड़ने से विष का प्रभाव क्षीण हो जाता था। कसेरू इस प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में पैदा होता था। देहली तथा उसके निकटस्थ क्षेत्रों में कसेरू बारहों महीने बिकता दिखाई देता था।[3]

औरंगजेब के चतुर्थ शासकीय वर्ष में बादशाह के आदेश से मीर जुमला ने कूच बिहार पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ स्थित नरायन सम्प्रदाय ने समस्त मन्दिरों तथा मूर्तियों को नष्ट कर डाला और राजा के पुत्र विशन नरायन ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।[4]

सतनामी सम्प्रदाय— सतनामी सम्प्रदाय का संस्थापक वीरभान था; जो दादू का समकालीन था। सतनामी सम्प्रदाय के लोग अपने बाल मुंडाए रखते थे, इसी कारण मुण्डिया के नाम से विख्यात थे।[5] इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का मुख्य केन्द्र देहली से 75 मील दूर, दक्षिण—पश्चिम में स्थित नारनौल नामक स्थान था।

बल्लभ सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्ग— बल्लाभाचार्य (सं0 1535—1587 वि0) ने उत्तर भारत में कृष्ण के पूर्णानन्द स्वरूप को अपनाकर कृष्ण भक्ति का तीव्र प्रचार किया। बल्लभाचार्य पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक थे। पुष्टि का अर्थ है— अनुग्रह। यह मार्ग भगवान के अनुग्रह का मार्ग है; अतः बल्लभाचार्य ने कृष्ण के माधुर्य पक्ष का प्रचार करते हुए बाल कृष्णोपासना को प्रमुखता दी थी। सत्तरहवीं शती के उत्तरार्द्ध में इस सम्प्रदाय ने राजस्थान के जनमानस को ओत—प्रोत कर दिया था। उत्तर मुगल काल के अष्टछापीय

✍ सहायक शिक्षक, सह इग्नू काऊंसलर मुजफ्फरपुर, बिहार

भक्त कवियों ने कृष्ण के बाल रूप के साथ–साथ रासबिहारी एवं प्रवासी कृष्ण के स्वरूप की भी मधुर एवं भावमय उपासना की।[6] इससे प्रभावित होकर कुछ मुसलमानों ने भी भक्ति का यह सहज मार्ग ग्रहण किया और कृष्ण भक्ति के प्रचार में लग गये।[7]

बल्लभ सम्प्रदाय के गुरूओं ने अनेक राजाओं को भी इस सम्प्रदाय में दीक्षित किया। मेवाड़ के राजसिंह इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। किशन गढ़ के भी सभी राजा बल्लभ सम्प्रदाय में ही दीक्षित होते रहे। राजा रूप सिंह (1643–1658 ई0), उनके पुत्र तथा राजा सावन्त सिंह (कवि नागरी दास) ने भी, रणछोड़ जी द्वारा इसी सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी।[8] नागरी दास की माता कामवन, बहन सुन्दर कुँवरि तथा प्रेयसी वणी ठणी भी इसी सम्प्रदाय की अनुयायी थी और अपनी भक्तिपरक रचनाओं, पूजा–पाठ एवं मन्दिर निर्माण द्वारा इस सम्प्रदाय के प्रसार में विशेष सहयोग देती रही थी।[9]

सखी–सम्प्रदाय– महान सन्त संगीताचार्य स्वामी हरिदास ने राधाकृष्ण की युगल छवि की उपासना सेवा सखी भाव[10] से कर, सखी सम्प्रदाय की स्थापना की थी। आज भी इनकी गद्दी वृन्दावन में बाँके बिहारी जी का मन्दिर हरिदास स्वामी के समय का ही बना हुआ है। सखी सम्प्रदाय राधा बल्लभ सम्प्रदाय की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ। प्रारम्भ में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या अति अल्प थी और सम्प्रदाय की इष्ट राधा की सखी भाव से पूजा–अर्चना व भक्ति ही सर्वोपरि थी, परन्तु कालान्तर में इसमें विकार आ गये, समाज में इस सम्प्रदाय की मान्यता भी कम हो गई। इसके अनुयायी सखी होने का दिखावा करते और स्त्रियों की ही भाँति वस्त्र धारण करते,। उनके समस्त कार्य–कलापों का उद्देश्य यही होता कि अगले जन्म में वह राधा की सखी के रूप में जन्म प्राप्त कर कृष्ण का स्नेह प्राप्त कर सके। विल्सन के अनुसार 17वीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई और उनके सम्प्रदाय के अनुयायी मुख्य रूप से जयपुर बनारस और बंगाल में पाये जाते थे।[11]

राधाबल्लभ सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हरवंश जी थे। इन्होंनें वृन्दावन में साधना के लिए चार सिद्ध केलि स्थलों की स्थापना की थी। यह स्थल मानसरोवर, सेवाकुंज, रासमण्डल और वंशीवट नाम से आज भी वृन्दावन में विख्यात है। सेवाकुंज नामक स्थल का विशेष महत्त्व है। वहाँ श्री हरिवंश जी ने राधाबल्लभ जी के विग्रह की सर्वप्रथम स्थापना की थी। सं0 1591 वि0 में प्रथम पाटोत्सव इसी सेवाकुंज में सम्पन्न हुआ। इस कुंज के विषय में आज भी यह किवदन्ती है कि यहाँ प्रतिदिन रात्रि में, श्रीकृष्ण राधा तथा अन्य सखियों के सहित रासलीला करते हैं। लगभग 50 वर्षो तक सेवाकुंज में ही, श्री राधा बल्लभ जी का विग्रह, प्रतिष्ठित रहा।[12]

राधा बल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम का स्वरूप विलक्षण, व्यापक और मोहक है। अनन्त भावों और अनन्त रूपों में नित्य कीड़ा करने वाला यह प्रेम ही परात्पर तत्व है। यह प्रेम सहज और असीम होने के कारण नित्य माना जाता है। इस सम्प्रदाय में रसोपासना है, अर्थात् राधाकृष्ण के नित्य विहार की स्थिति में जो अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न होता है, उसी को रस की संज्ञा दी जाती है।[13]

इस सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्ति तुलसी के मनकों की कण्ठी पहनते हैं। मनकों की संख्या का कोई विधान नहीं है परन्तु कण्ठी में दो लड़ी होना आवश्यक है। इस सम्प्रदाय में तिलक और उसके मध्य श्याम बिन्दी का विधान है। तिलक के लिए अनुयायी ब्रजरज, राधा कुण्ड की रज या रोली का प्रयोग करते हैं।[14]

उपरोक्त शोध निबंध से स्पष्ट है कि उत्तर मुगलकाल में हिन्दुओं के विभिन्न धार्मिक संप्रदाय कायम थे। विभिन्न उपासना विधि थी परन्तु सबका लक्ष्य एक ईश्वर की प्राप्ति थी।

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

संदर्भ संकेत सूची

1. खाफी खां, मूल जिल्द 2, पृ0 134
2. वही, पृ0 134
3. वही, पृ0 136
4. वही, पृ0 252
5. जयसिंह नीरज, राजस्थानी चित्रकला एवं हिन्दी कृष्ण काव्य, पृ0 60
6. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 458
7. जयसिंह नीरज, राजस्थानी चित्रकला एवं कृष्ण काव्य, पृ0 60
8. जयसिंह नीरज, राजस्थानी चित्रकला एवं कृष्ण काव्य, पृ0 70
9. वही।
10. एनसाइक्लोपीडिया एशियाटिका, भाग 8, पृ0 494; हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग 5, पृ0 204
11. डॉ0 हरवंश लाल शर्मा, सूर स्केच ऑफ दी रेलिजस सेक्ट्स आफ दी हिन्दूज, लन्दन, 1861, पृ0 177; बार्थ ए0, दी रेलिजन्स ऑफ इण्डिया, अंग्रेजी अनु0 1882, पृ0 236
12. स्नातक विजयेन्द्र, राधाबल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1968, पृ0 104–5
13. मीतल प्रभुदायल, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 179
14. वही, पृ0 248–49

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 70-73

इतिहास दृष्टि

आद्यइतिहास एवं ब्राह्मी लिपि

✍ **डॉ. शम्भू नाथ यादव**

संसार की सभ्यता एवं संस्कृति में मनुष्य के मानसिक विकास के साथ विश्व में लिपि का जन्म स्वतन्त्र रूप से ही हुआ। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति ने इसे जन्म दिया ताकि विचारों का आदान–प्रदान कर सकें। श्युगों – युगों तक लिखने की कला अज्ञात थी और मनुष्य संकेत से ही अपना कार्य करता रहा। शताब्दियों बाद मुख से निकली ध्वनि को लिपिबद्ध करने की क्रिया ज्ञात हुई। भाषा और लिपि के विकास क्रम, वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण में भाषा वैज्ञानिकों का भी स्तुत्य योगदान है।

ऐसा उल्लिखित है कि दक्षिण तजाकिस्तान के पुरातत्त्व विभाग द्वारा कपिरकला नामक स्थान के उत्खनन में एक मन्दिर मिला है जिसका आठवीं शताब्दी ई.पू. में निर्माण किया गया होगा, ऐसा अनुमान है। इस मन्दिर के अन्तः भाग में स्थापित तहखाने में एक पांडुलिपि मिली है, जिसके पृष्ठों पर अनेक अक्षर विद्यमान है। इस पुस्तक में कागज के स्थान पर एक चिकने तथा मुलायम पेड़ के छिलके का प्रयोग किया गया है और विशेष स्याही द्वारा उन पर अक्षरों को उत्कीर्ण किया गया है। इस मुलायम छिलके के बारे में यह बताया गया है कि यह छिलका नेपाल की तराई में पाये जाने वाले वृक्ष की शाखा और टहनी का ऊपरी भाग है जो उन्हें ढ़का रहता है, इस छिलके पर अंकित सामग्री स्थायी होती है और काफी लम्बे समय तक उस पर क्षरण का प्रभाव नहीं होता है।

विशेषज्ञों का ऐसा मानना है कि उक्त भूर्जपत्र पर उत्कीर्ण लिपि प्राचीन भारत की प्रचलित लिपि ब्राह्मी है और लिखी गयी सामग्री ई. पू. 7 वीं शताब्दी का साहित्य है। इस उत्खनन के पूर्व इसी प्रकार की सामग्री जो संस्कृत भाषा में है, उजबेकिस्तान और तुर्कमानिया नामक स्थानों पर भी उपलब्ध हुई थी जो बौद्ध कालीन है। अशोक ने प्रस्तर पर लेख चिरस्थायी होने हेतु उत्कीर्ण करवाया था। (इय धंमलिपि लेखिता चिलठितीका होता) (प्र.शि.ले.2)। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अन्य वस्तुओं पर भी लेख उत्कीर्ण किये जाते रहे होंगे। अशोक से पूर्व युग के पिपरहवा (उ.प्र.) सोहगौरा ताम्रपत्र (गोरखपुर उ.प्र.) महास्थान लेखों के (बंगाल) प्रमाण पर यह कहना तर्क संगत होगा कि ई.पू. 500 के लगभग लेखन कला का प्रचार अवश्य था।

इसकी प्राचीनता से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रमाण अनुराधपुर से प्राप्त हुआ है जो कदम्ब नदी के तट पर श्रीलंका में स्थित है। इस स्थल का उत्खनन 1984–89 तक ए.डी.मेल (आर्कियोलॉजीकल सर्वे ऑफ श्रीलंका) सी. रेमण्ड (सोरबार्न विश्वविद्यालय) इकोल फ्रेन्काइस (डी. एक्सट्रीम ओरियण्ट इन पेरिस) के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। यहाँ के उत्खनन से कुछ मृदभाण्ड खण्ड प्राप्त हुए है जिन पर ब्राह्मी लिपि के अक्षर उत्कीर्ण है। जिस स्तर से इनकी प्राप्ति हुई है, उस स्तर के कार्बनिक पदार्थो की कार्बन 14 तिथि 767, 674 एवं 662 B.C. प्राप्त हुई हैं। जिसे औसतन 600–500 B.C. के बीच रखा जा सकता है। यहाँ से जो ब्राह्मी अक्षर प्राप्त हुए है वे तृतीय शताब्दी ई.पू. के ब्राह्मी के समान है। अगर इनके विकास के लिए 200–300 वर्ष का समय मान लिया जाये तो इनकी तिथि 800–900 ई.पू. के पास पहुँच जाती है। इसी प्रसंग में पाणिनी के अष्टाध्यायी का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें यवनानी लिपि का उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनी के अष्टाध्यायी का रचना काल लगभग छठी शताब्दी ई.पू. माना जाता है।

✍ सहायक पुरातत्वविद् भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, रायपुर मण्डल, रायपुर (छत्तीसगढ़)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010

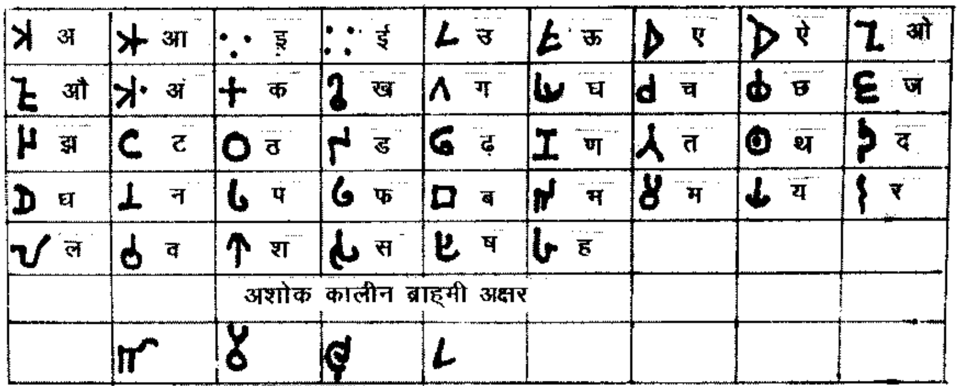

अशोक पूर्व कालीन ब्राह्मी अक्षर

उपलब्ध सामग्री के परिप्रेक्ष्य पर इतिहासकारों में प्रचलित यह धारणा कि सिन्धु घाटी तथा आर्ययुगीन सभ्यता और संस्कृति की कोई लिपि नहीं थी और वे लोग लिखना--पढ़ना नहीं जानते थे, निराधार साबित हो सकेगा। आर्यो के इतिहास एवं उनकी सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में पुष्ट अवशेषों के अभाव में जो कुछ विदेशी इतिहासकारों ने अपनी कल्पना के आधार पर लिखा उसका खण्डन सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्वेषण/उत्खनन के पश्चात् प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों से किया जा रहा है। सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति का अपना महत्व है, आर्यो की सभ्यता और संस्कृति के साथ उसका सूत्र जोड़ना उचित नहीं है। वर्तमान इतिहासकार विदेशी इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत अवशेष को सत्य मानकर सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के जो भी प्रमाणिक अवशेष प्रस्तुत करते है, वे या तो उस काल की सामग्री नहीं है अथवा मोहनजोदड़ो/हड़प्पा के उत्खनन के विषय में प्राप्त जानकारी से वे अपरिचित है, अतः निर्विवाद सिद्ध है कि आर्यो का इतिहास लिखने के पहले सिन्धु घाटी का इतिहास जानना अनिवार्य है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति का शनैः शनैः जो स्पष्टीकरण किया जा रहा है उससे ऐतिहासिक प्रमाणों को पूरा बल प्राप्त हो रहा है, भले ही लिपिबद्ध साहित्य का अभाव है, पर जहाँ तक आर्यो के विषय में जानकारी प्राप्त हो रही है उसमें अधिकांश क्षेपक है और जो कुछ पौराणिक किवदन्तियों के आधार पर संकलित किया जा रहा है उसे इतिहासकार मानने को तैयार नहीं है। प्रश्न यह है कि आर्यो के इतिहास के सम्बन्ध में; उनकी सभ्यता और संस्कृति के प्रादुर्भाव के विषय में लिपिबद्ध साहित्य का अभाव क्यों रहा है ?क्या आर्यो की अपनी कोई लिपि नहीं थी ?अथवा वे लिखित से मौखिक को अधिक महत्ता प्रदान करते थे? जब हम मेसोपोटामिया और यूनान की सभ्यता और संस्कृति की ओर दृष्टिपात करते है तो प्रमाणित एवं लिखित सामग्री से हमारा साक्षात्कार होता है। अतः उनके इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में किसी प्रकार का संशय उपस्थित नहीं होता है, पर जब हम सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के बारे में कल्पना करते है तो किसी निश्चित लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाते है। हमारे समक्ष कोई लिपिबद्ध प्रमाण नहीं हैं, उत्खनन में जो कुछ प्रमाण प्राप्त हुए है उनमें कुछ मोहरे है जिन पर सांकेतिक भाषा में लेख है पर उस सांकेतिक लिपि का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका है। इतना अवश्य माना जा सकता है कि वे मोहरे व्यापार सम्बन्धी है और शहर विशेष से उनका घनिष्ट सम्बन्ध है। पुरातत्वविदों ने जो कुछ तथ्य निकाला है वह यह है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में प्रमाणित तथ्यों का जो अभाव पाया जा रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि उस समय की लिपिबद्ध सामग्री अपना स्थायी प्रभाव न छोड़ सकी और शनैः शनैः नष्ट हो गयी।

यह कहना कि भारत मे रहने वाली जातियों का अपना इतिहास न हो, सभ्यता और संस्कृति न हो अथवा लिपि का जन्म न हुआ हो उपयुक्त नहीं है। यह ठीक है कि इतिहासकार इस तथ्य और विवाद पर आक्षेप करते है परन्तु उन्हें स्पष्ट रूप से विश्वास है कि ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व रहने वाले भारत के निवासियों की अपनी सभ्यता थी और लिपि का भी प्रचलन था। ये जातियां आर्यो से हर रूप में अलग थी, सभ्यता की चोटी पर उनकी संस्कृति थी, और उन्होंने विश्व की सभ्यता में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह भी निश्चित है कि समय के साथ–साथ खोज बीन की विद्या अवश्य प्रचलित रहेगी और एक न एक दिन हमें प्राचीन भारत की इतिहास सम्बन्धी सामग्री लिपि और सभ्यता तथा संस्कृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जायेगा, ऐसी संभावना है।

आर्यो के भारत आगमन, उनके बसने तथा उनकी सभ्यता और संस्कृत के सम्बन्ध में प्रमाणिक तथ्यों का अभाव है, इस पर मतमतान्तर नहीं हो सकता, ऋग्वेद केवल हमारे सामने एक ऐसा प्रमाण है जिसके आधार पर हम यह कह सकते है कि आर्य सिन्ध के प्रान्त में 2000 वर्ष ई. पू. में आकर बसे थे, और ऋग्वेद का अधिकांश भाग उसी समय का है। जब इतिहासकार ऋग्वेद में उल्लिखित साक्ष्यों की तुलना सिन्धु घाटी की सभ्यता के मानव से करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि उक्त जातियाँ बिलकुल भिन्न थी, वैदिक सभ्यता का अंश उनमें किंचित मात्र भी नहीं था। अतः सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के नष्ट–भ्रष्ट करने का दोषारोपण जो आर्यो पर लगाया जाता है वह इससे सिद्ध नहीं होता है। कारण आर्यो के आने के पहले ही सिन्धु घाटी की सभ्यता नष्ट हो चुकी थी, अन्यथा ऋग्वेद में उस सभ्यता का वर्णन अवश्य होता। मार्शल ने इससे सम्बन्धित एक विस्तृत व्याख्या पेश की है जिसमें उल्लेख है कि 2000 सदी पश्चात् सिन्ध के शहरों का विनाश हुआ और उस विनाश में अत्यधिक योगदान आर्यो का था। मार्शल के पश्चात् ह्वीलर ने लिखा है कि सिन्ध के शहरों का पतन यद्यपि शुरू हो चुका था पर अति शीघ्र समाप्ति में आर्यो का योगदान अधिक था। ह्वीलर का कथन है कि ऋग्वेद में जिन शहरों के पतन का उल्लेख किया गया है वे वहीं शहर है जो आर्यो ने स्वयं नष्ट किए थे। पर जहाँ तक समय का प्रश्न है ह्वीलर के कथन में सत्यता का अंश अत्यधिक पाया जाता है क्योंकि उसने शहरों के पतन के सम्बन्ध में लिखा है कि वह समय 15 वीं शती ईसवी पूर्व के मध्य का था। अन्य इतिहासकार ह्वीलर के इस कथन से सन्तुष्ट नहीं थे।

ईसापूर्व छठवीं शताब्दी का इतिहास एक विचित्र समस्या का प्रतीक है, इस समय का इतिहास और उसके आगे की ऐतिहासिक सामग्री पौराणिक सूत्रों से सम्बन्धित है। अतः संशय की गुंजाइश अधिक है, इस आधारभूत तत्व को लेकर इतिहास की रचना प्रमाणिकता की कसौटी पर खरी उतरे यह धारणा भ्रामक ही होगी। जब हम इसके दूसरे पहलू पर विचार करते है तो हमें ज्ञात होता है कि जैन और बौद्ध धर्म की धार्मिक परम्परा इतिहास की सामग्री के लिए दस्तावेज से कम नहीं है। वे विश्वसनीय है और इतिहास की सामग्री के लिए प्रमाणिक स्मृति है, क्योंकि इन पुस्तकों में प्रथम बार लिपिकरण दिखाई देता है और लेखन कला तथा अन्य वस्तुओं का जो प्रयोग हुआ है वह सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक ही है। एक ओर जहाँ हम इन्हें ऐतिहासिक सामग्री मानते है वहीं दूसरी ओर हमें शंका होती है कि लिपि का प्रयोग न करके प्रस्तर अथवा शिलालेखों पर उत्कीर्ण करके उनका प्रचार करना क्यों अनिवार्य माना गया। इतिहास के सम्बन्ध में जो प्रमाणिक दस्तावेज हमारे सामने आते हैं वह मौर्य वंश के शासक अशोक, जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य का पोता था के समय (269–232–B.C.) की हैं। राजाज्ञाएं उस समय प्रस्तर और चट्टानों पर अंकित की जाती थी, इसका प्रचलन राज्य के भीतर और आश्रित राज्यों तक होता था, चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक के समय में लिपि का प्रयोग इतिहास की सामग्री के लिए एक वरदान है। यह भी सत्य है कि जो लिपि प्रयोग की गयी थी उसमें भी बड़ी विभिन्नता थी। उस समय चार लिपि प्रचलित थी ब्राह्मी, खरोष्ठी, आरमेइक एवं यूनानी। इन चारों में ब्राह्मी लिपि ने ही सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इसका प्रयोग एक छोर से दूसरे छोर तक प्राप्त होता है और अधीनस्थ राज्य में भी

इस लिपि में काम होता था। खरोष्ठी लिपि केवल उत्तर–पश्चिम सीमा तक ही अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकी थी। आरमेइक और यूनानी लिपि विदेशी होने के कारण उत्तर–पश्चिम भू–भाग तक ही सीमित रही और वे वही व्यवहृत थी जहाँ विदेशी हुकूमतें थी।

एक बिन्दु पर ध्यान दिया जाना उचित होगा कि अशोक के शासन काल के 12वें वर्ष से अभिलेख मिलने लगता है और 8 वें वर्ष में उसने कलिंग विजय किया। उसके शासन काल में जो ब्राह्मी का मानक आकार प्राप्त होता है उसके पूर्णता के लिए शासकीय स्तर पर यह समय बहुत ही कम प्रतीत होता है। दूसरा अशोक ने अपने अभिलेख भारतीय प्रजा के लिए ब्राह्मी लिपि में और विदेशी प्रजा के लिए आरमेइक एवं खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण करवाया था इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसकी भारतीय प्रजा ब्राह्मी लिपि से पूर्व परिचित थी। कुछ सदियों पश्चात् भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रभुत्व समाप्त हो गया। संस्कृत और प्राकृत भाषा खरोष्ठी लिपि में अपना स्थान बनाने में असमर्थ थी। ब्राह्मी लिपि सदियों तक दक्षिण पूर्व एशिया में आधुनिक लिपियों की सिरमौर्य बनकर पनपती रही। यूनानी और आरमेइक लिपि भारत भूमि पर अपनी जड़े न जमा सकी और थोड़े समयान्तराल के बाद इनका प्रयोग कम होने लगा और लोग इन्हें भूलने लगे, पर ब्राह्मी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है जो इतिहास की एक प्रमुख अंग मानी जाती है। इस प्रकार जिस ब्राह्मी लिपि के प्रमाण अशोक के अभिलेखों में उपलब्ध होते है अथवा जिसके निदर्शन अशोक के पूर्ववर्ती कुछेक ऐकान्तिक अभिलेखों में प्राप्त होते हैं उसे सम्भावित वैदिक लिपि का ही अवशेष माना जा सकता है।

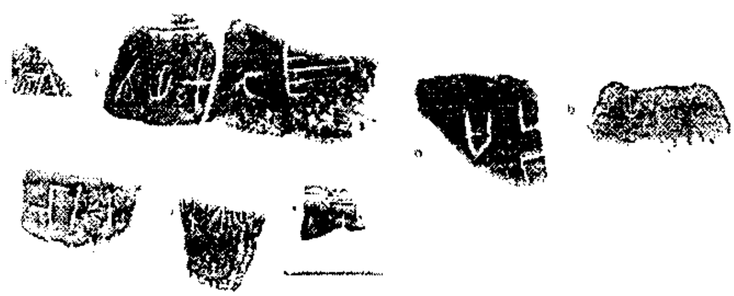

खण्डित उत्कीर्णित मृदभाण्ड अनुराधपुर

सन्दर्भ

1. देवनागरी विमर्श; सम्पादक, डा.शैलेन्द्र कुमार शर्मा, मालवनागरी लिपि अनुसंधान केन्द्र, बी 3/3 वि.वि.परिसर, उज्जैन, 2003, पृष्ठ 21–39, 51–53,
2. भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, एस.एन. राय, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद– द्वितीय संस्करण–1997 पृष्ठ–94–152
3. भारतीय प्राचीन लिपि माला, रायबहादुर पंडित, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मुन्शीराम मनोहर लाल, पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली–1993 पृष्ठ–1–59
4. दिनमान 19 जनवरी 1969, पृष्ठ–41–42
5. हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, भगवान सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लि., नई दिल्ली–1987.
6. Ancient cities of the, Indus valley civilization, Jonathan Mark Kenoyer, American Institute of Pakistan Studies- Islamabad- 1998 page. 69-80.

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 74-77

इतिहास दृष्टि

स्वामी सहजानन्द सरस्वती और बिहार किसान आन्दोलन : तथ्यात्मक विश्लेषण

✍ पूनम कुमारी

स्वामी सहजानन्द सरस्वती एक ऐसे युग पुरूष थे, जिनकी जिन्दगी का उद्देश्य दमन, शोषण एवं पराधीनता से मुक्त समाज का निर्माण करना था। स्वामीजी की जीवन के इतिहास क्रांतिकारी परिवर्तनों की एक लम्बी कहानी हैं। जाति विशेष के वर्चस्व के विरोध में आवाज बुलन्द करने वाले एक संन्यासी से साम्राज्यवाद विरोधी, घनघोर गाँधीवादी और फिर समाजवादी समाज की स्थापना के लिए सतत् संघर्षशील क्रांतिकारी के रूप में स्थापित होने वाले स्वामीजी विचारों और कर्मों में लगातार प्रगति के उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनका जीवन एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपने मोक्ष के लिए उपासना और धार्मिक चिन्तन में लगा हुआ था, लेकिन उन्होंने अनुभव किया कि जनता की सेवा ही भगवान की असली पूजा है। विचारों के ऐसे उद्वेलन से आलोकित हो उन्होंने एकान्त जीवन को त्याग कर राजनीतिक और सामाजिक जीवन–आन्दोलन को अपना लिया और इस काम में अथक एवं अटूट क्रांतिकारी शक्ति के साथ संत की दृढ़ भक्ति को जोड़ दिया। मानव के उत्थान के लिए चलाया गया उनका यह धर्मयुद्ध इन्हें नए–से–नए क्षेत्रों एवं नई–नई समस्याओं तक ले गया, लेकिन वे उनमें से किसी एक से भी नहीं हटे। उनकी विचारधारा तेजी से बदलती गयी। उन्होंने नई–नई विचारधाराओं को ग्रहण कर समस्याओं को नए परिप्रेक्ष्य में देखा तथा 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' हेतु नवीनतम युद्धों के लिए जनता को तैयार किया।

, स्वामी सहजानन्द आजीवन संघर्षशील रहे और संघर्ष के बीच जितनी बाधाएं आयी उन्होंने साहसपूर्वक जूझते हुए अपने विचारों का प्रतिपादन किया। विचारधाराओं के संघर्ष में भी उन्होंने व्यवहारिकता का सहारा लिया। मार्क्सवादी दृष्टिकोण की अनेक बुनियादी मान्यताओं का उनकी चिन्तन प्रणाली पर गहरा असर पड़ा, लेकिन इस असर का असली कारण यह था कि उनके अनुभवों से मार्क्सवाद की स्थापनाएं मेल खाती थी। तात्पर्य यह है कि वे सिद्धान्त और व्यवहार में एकरूपता स्थापित कर सदा ही विकासशील पथ पर अग्रसर रहे। अतः उनकी अनुभव सिद्ध विचारधारा ही उन्हें एक विचारक के रूप में स्थापित करती है। स्वामीजी के सतत् विकासशील जीवन के संदर्भ में यह उक्ति सही जान पड़ती है कि मेहनतकश जनता की भलाई चाहने वाले व्यक्ति के लिए सिद्धान्त और व्यवहार में उसकी विचारधारा को अपनाकर वर्ग–दृष्टिकोण अपनाना भी जरूरी हैं।

स्वामीजी के जीवन से इस बात की पुष्टि होती है कि राजनीतिक–सामाजिक क्षेत्रों में स्वामीजी हठधर्मिता के कभी शिकार नहीं हुए। समय के तकाजे, परिस्थिति की आवश्यकताओं की कसौटी पर ही वह अपने विचारों को आधारित करते रहे। निष्कर्ष के तौर पर स्वामीजी इस मायने में एक क्रांतिकारी विचारक थे कि वे आजीवन विकासशील रहे। इसी विकास में वाल्टर हाउजर को गाँधीवाद–समाजवाद–मार्क्सवाद नजर आया है। सच्चाई यह है कि वे कभी भी नई समझ के प्रति प्रतिगामी नहीं हुए और भोगे हुए यथार्थ से अनुभव प्राप्त कर स्वाध्याय से नई विचारधाराओं का प्रतिपादन, क्रियान्वयन और पथ–प्रदर्शन करते रहें। हमें उस टिप्पणीकार के मत को सहज ही स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि "सहजानन्द एक ही साथ किसान आन्दोलन के चाणक्य और चन्द्रगुप्त, मार्क्स और लेनिन, सनयातसेन और माओ थे।"[1]

✍ रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग, पटना वि0वि0, पटना (बिहार)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

किसान जागरण और राष्ट्रीय स्वतंत्रता–संग्राम के धनिष्ठ संबंध के अध्ययन प्रसंग में स्वामीजी के व्यक्तित्व के उभार को देखने के क्रम में बिहार में किसान आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन के मौलिक अन्तर्विरोध देखने को मिलते हैं। 1922 के चौरी–चौरा कांड के बाद असहयोग आन्दोलन के स्थगन के कारण जब गाँधीजी के अनुयायियों का एक वर्ग पस्त हिम्मत था, दूसरा वर्ग स्वराज पार्टी के परिषद् प्रदेश के नारे के तहत सुविधा–परस्त हो चुका था और नैराश्य के वातावरण में युवकों का एक वर्ग आतंकवाद में अपनी राह ढूंढ़ रहा था, उस समय स्वामी सहजानन्द ने जनसंगठन को संग्रामी तेवर से लैस कर देश की राजनीति को एक नई दिशा दी। स्वामी सहजानन्द की दूसरी महत्त्वपूर्ण देन अर्वाचीन धर्म की प्रवंचनाओं का जबर्दस्त विरोध और जाति–सभाओं के द्वारा किसान आन्दोलन को कमजोर करने की सामन्ती चाल का पर्दाफाश करना है।

द्वितीय महायुद्ध के समय गांव–गांव में जनदस्ते (विलेज मिलिशिया) बनाकर विजयी साम्राज्यवादी या फासीवादी–नाजीवादी ताकतों का जरूरत पड़ने पर प्रतिरोध और इसी मिलिशिया को आधार बनाकर देश के सामन्ती और पूंजीवादी तबकों के हाथों में सत्ता न दिये जाने का जो मसविदा स्वामी सहजानन्द ने तैयार किया था, वह वामपंथी चिंतन को उनकी एक अपूर्व देन है।

स्वामी सहजानन्द की चौथी महत्त्वपूर्ण देन है परिवर्तनकारी–क्रांतिकारी–वामपंथी ताकतों की एकता के लिए किया गया प्रयास।[2] दयानन्द की तरह जाति पर और विवेकानन्द की तरह शोषक वर्ग पर एक साथ आक्रमण, गरीबों के घर–घर जाकर अलख जगाने का उनका युगान्तकारी काम वेदान्त जगत में अनोखा था। उन्होंने अमूर्त वेदान्त को जीकर दिखलाया।

हमारे अध्ययन काल में बिहार में किसान–आन्दोलन का इतिहास इसके मूर्धन्य नेता स्वामी सहजान्द के जीवन की प्रगतिशीलता के समानांतर चलता है। जिस बिहार प्रदेश में किसान सभा की स्थापना 1929 ई. में कुछ कांग्रेसी नेताओं की पहल पर काश्तकारी कानूनों के विरोध के लिए हुई थी,[3] वही किसान सभा अन्त में जमींदारी उन्मूलन से संतुष्ट नहीं थी और वह जमींदारों का उतना ही विरोध करती थी जितना कि धनी रैयतों का।[4] इतना ही नहीं, उसके संगठन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो चुका था। अब उसके शीर्ष–नेतृत्व में शहरी मध्यम वर्ग या गांव के ऊंचे घराने के कुछ बहुत पढ़े–लिखे लोग नहीं थे, वरन् गांवों के छोटे–छोटे किसान के घरों से आये हुए और संघर्ष की आग में तपे हुए किसान नेता थे। उसका जनाधार बहुत ही व्यापक था–यह बटाईदारों और गरीब किसानों तक पहुंच चुका था। इतना ही नहीं, मजदूरों और किसानों के संघर्षों को मिलाकर समाजवादी समाज की स्थापना करना इसका घोषित लक्ष्य हो गया था।

अध्ययन से यह पता चलता है कि बिहार के किसान अब अपने हितों की रक्षा के प्रति इतने संचेत हो गये थे कि वे अपने महान नेता को भी पीछे छोड़ने में हिचकते नहीं थे। कम्युनिस्टों खासकर कार्यानन्द शर्मा के नेतृत्व में लड़ा गया किसानों का संघर्ष (1936–9) इस तथ्य की पुष्टि करता है। इस काल के किसान–आन्दोलन के अध्ययन से एक और प्रमुख बात स्पष्ट होती है कि युद्धोत्तर काल में बिहार का किसान आंदोलन छिन्न–भिन्न नहीं हुआ बल्कि इसने दूसरा रूप ले लिया। इस तरह, वाल्टर हाउजर की स्थापना हमारी स्थापना से मेल नहीं खाती। वाल्टर हाउजर के अनुसार, द्वितीय महायुद्ध के समय तक स्वामी सहजानन्द के 'राष्ट्र विरोधी' वामपंथ (कम्युनिष्ट) से सहयोग तथा मार्क्सवादी विचारधारा को स्वीकार कर लेने से किसान आन्दोलन राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग हो गया और समाजवादियों और फारवर्ड ब्लॉक वालों के अलग हो जाने के कारण सभा मृत हो गयी।[5] लेकिन हमारा अध्ययन इस नतीजे पर पहुंचा है कि स्वामी सहजानन्द कभी भी राष्ट्रविरोधी कार्यों में नहीं लगे। समाजवादी रूस और साम्राज्यवाद तथा फासीवाद विरोधी चीन को बचाने की हर अपील के बावजूद वे बराबर ही कांग्रेसी नेताओं की रिहाई की मांग करते रहे। वास्तव में इक्के–दुक्के वैयक्तिक उदाहरण को

छोड़ कर भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी ने भी द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में कभी राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में भाग नहीं लिया। इसके नेता हमेशा राष्ट्रीय नेताओं की रिहाई और राष्ट्रीय सरकार के संगठन की वकालत करते रहे।

विनय भूषण चौधरी के अनुसार, किसान सभा की अवनति के मुतल्लिक सहजानन्द की जवाबदेही के संबंध में हाउजर के विचार की वैधता संदेहपूर्ण प्रतीत होती है।[6] आन्दोलन की मुख्य शक्ति राष्ट्रवादी संवेदना के नाम अपील पर आधारित नहीं थी बल्कि किसान वर्ग के आधारभूत असंतोष के ऊपर किसान सभा के निश्चित रूख पर आधारित थी। हो सकता है, स्वामीजी के वामपंथी रूख के कारण नेतागिरी से जुड़े कुछ व्यक्ति बिछुड़ गये होंगे पर कार्यकत्ताओं का संगठन इस बिछुड़न से अप्रभावित रहा। चौधरी के अनुसार, युद्धोत्तर परिस्थितियों के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था विनाश के कगार पर पहुंच गयी और इस तरह एक विस्तृत किसान आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार हुई और युद्ध के बाद यह तुरंत शुरू हुआ और साल प्रति साल यह मजबूत ही होता गया।[7]

हमारे अध्ययन की कसौटी पर चौधरी की स्थापना भी बहुत खरी नहीं उतरती। वस्तुतः किसान सभा की मुख्य शक्ति किसान वर्ग की समस्याओं के प्रति उनके द्वारा अपनाये गये रूख पर आधारित थी, किन्तु युद्धजनित परिस्थितियों ने छोटे किसानों के बीच गंभीर आर्थिक संकट पैदा कर दिया और ये किसान स्वामी सहजानन्द की कुछ दिनों के लिए शान्त रहने की अपील को सुनने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं थे। इसका फायदा जरूर ही सामाजवादियों को मिला, और कुछ दिनों के लिए किसान–आन्दोलन का नेतृत्व उन्हीं के हाथों में चला गया। छोटे किसानों ने एक ओर जमीन्दारों और मालदारों पर हमले किये और दूसरी ओर अंग्रेजों की संचार–व्यवस्था को बर्बाद करने में अहम् भूमिका निभायी।

बिहार के किसान आन्दोलन के बदलते हुए स्वरूप का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि किसानों के विभिन्न वर्गों के स्वार्थों मे आपसी अन्तर्विरोध के कारण टकराहट भी होती रही है। यही कारण था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में बढ़ती हुई महंगाई से फायदा उठाकर धनी किसान मालामाल हो गये और उन्होंने किसान सभा का साथ देना छोड़ दिया; लेकिन राष्ट्रवादी विद्रोह(1942) का नेतृत्व इन्हीं किसानों के हाथ में था।

किसान सभा के ही नेतृत्व में किसानों द्वारा किये गये बकाश्त संघर्ष के अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आता है कि किसानों के बीच छोटे और गरीब किसान ही असल क्रांतिकारी शक्ति होते हैं।[8] यही वर्ग व्यवस्था–परिवर्तन की लड़ाई की अगुआई भी कर सकता है।

स्वामी सहजानन्द और बिहार के किसान आन्दोलन के एक दूसरे पर प्रभाव की समीक्षा करने पर हम एक और महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। यद्यपि इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बिहार के किसान आन्दोलन के शुरू का नेतृत्व गाँधीवादी राष्ट्रीयता की उपज थी; लेकिन अपने विकास के चरण में जब यह गाँधीवादी विचारधारा और तरीके को अपर्याप्त समझने लगा तथा जब इसने राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के रास्ते में गाँधीवादी अस्त्र को बेकार पाया तब इसका नेतृत्व वामपक्ष की ओर मुड़ गया और इस तरह वर्ग आधारित किसान आन्दोलन की शुरूआत हुई।[9] यह बात भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है कि इस आन्दोलन में क्रांतिकारी गति के आने में हुई देर के लिए कहीं–न कहीं गाँधीवादी प्रभाव और कांग्रेस के नेतृत्व में लड़ा गया राष्ट्रीय आन्दोलन बहुत हद तक जिम्मेदार था। हम वैरिंगटन मूर के इस तर्क से बिल्कुल ही सहमत नहीं हैं कि गाँधीवादी नेतृत्व ने भारत के किसान आन्दोलन पर अपनी शांतिवादी और समझौतावादी छाप छोड़ी और उन्हें क्रांतिकारी मार्गों पर नहीं जाने दिया।[10] किसानों के कई लम्बे संघर्षो के अध्ययन हमें इस निष्कर्ष तक पहुंचाते है कि भारतीय किसानों के बीच विद्रोहों की परम्परा बहुत पुरानी है कभी मरी नही; किन्तु इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010

कि बिहार का किसान आन्दोलन शुरू से ही कांग्रेसी नहीं होता और यदि कांग्रेस से उनका मोह पहले ही भंग हो गया होता तो बिहार के किसान आन्दोलन की दिशा और उपलब्धी कुछ और ही होती।

संदर्भ संकेत सूची

1. गार्गी, राघव, चन्द्रभूषण द्वारा संपादित, वही, पृ. 115
2. देखें अध्याय छठा।
3. देखें अध्याय द्वितीय।
4. देखें अध्याय छठा।
5. हाउजर, वाल्टर, पूर्वोक्त।
6. चौधरी, विनय भूषण, पूर्वोक्त
7. वही।
8. देंखे, अध्याय पंचम।
9. हाउजर, वाल्टर, पूर्वोक्त
10. मूर, बैरिंगटन, सोशल ऑरिजिन्स ऑफ डेमोक्रेसी एण्ड डिक्टेटरशिप, न्यूयार्क, 1966

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 78-81

इतिहास दृष्टि

मुगलकालीन (1658 ई.–1719 ई.) भारत में आर्थिक स्रोतों का विवेचनात्मक अध्ययन

✍ डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

किसी भी देश की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। इसके लिए शासक आय के साधन तलाश करता है। उत्तर मुगलकालीन शासकों के समय में भी विभिन्न प्रकार के कर लगाये गए थे, जिनसे शासन को पर्याप्त आय होती थी। औरंगजेब को एक सुसंगठित साम्राज्य प्राप्त हुआ था। कोश में अपार सम्पत्ति थी, किन्तु साम्राज्य–विस्तार तथा निरन्तर युद्धों में उसने पर्याप्त धन व्यय किया। उसने उस धन की पूर्ति के लिए आय के नवीनतम साधनों को खोजने के बजाय, अपनी धार्मिक हठवादिता के कारण अनेक पुराने प्रचलित करों को भी बन्द कर दिया, परिणामस्वरूप शाही कोश रिक्त होता गया तथा भविष्य में उसे तथा उसके उत्तराधिकारियों को आर्थिक कठिनाइयों का निरन्तर सामना करना पड़ा। उत्तर मुगलकाल में शाही आय के निम्न प्रमुख स्त्रोत थे।

राहदारी कर (मार्ग कर) – राहदारी कर, प्रत्येक मुख्य मार्गो पर, सीमा पर और नाव घाटों पर लिया जाता था, जिससे शासन को पर्याप्त आय होती थी।[1] यह कर प्रत्येक घर से, या जिस जमीन पर कोई दुकान लगाकर बैठता था, उससे भी वसूल किया जाता था।[2] इस कर का प्रचलन सम्पूर्ण साम्राज्य में था। इस प्रकार यह कर समस्त छोटे–बड़े व्यवसायियों, कसाई, कुम्हार, माली, छीपे, जौहरी एवं सेठ–साहूकार सभी को देना पड़ता था। बाजार की जमीन के छोटे–छोटे टुकड़े पर भी यह कर लिया जाता था। प्रतिवर्ष इस कर से भारी आय होती थी। औरंगजेब ने बाद में राहदारी कर को समाप्त कर दिया था।[3] इस कर को बन्द कार्यान्वित करने के लिए सारे बाजारों में गुर्जबरदारों और अहमदियों द्वारा आदेशों की घोषणा कराई गई थी।[4] इससे सम्बन्धित निर्देश उसके रक्कात व खतूत में सुरक्षित हैं।[5] परन्तु, लोगों की लोभी प्रवृत्ति के कारण राहदारी कर पूर्णतः बन्द न किया जा सका। दूरस्थ स्थानों के फौजदार और जागीरदार, कर एकत्र करते ही रहे। माल विभाग के कर्मचारियों ने भी लोभवश इन घोषणाओं पर कोई ध्यान न दिया। जब वह लोग जागीरदारों को वेतन देते थे तो इन करों की राशि घटा लेते थे, फलस्वरूप जागीरदार भी इन करों की वसूली बन्द नहीं करते थे। कहीं–कहीं तो करों की दर में वृद्धि भी कर दी गई थी।[6] बादशाह को जब आदेश उल्लंधन की सूचना मिलती तो, अपराधी के मनसब में कमी कर देता, या उनके इलाके में, कुछ समय के लिए गुर्जरबरदार बैठा दिए जाते थे। परन्तु वह अपने संपोषकों द्वारा पुनः मनसब पूरा कर लेते थे।[7] इस प्रकार कर बन्द करने का प्रभाव अस्थायी होता था।

औरंगजेब के बाद बहादुरशाह तथा जहाँदार शाह के समय में भी राहदारी कर, आय कर एक स्त्रोत रहा, परन्तु जितनी रकम उस कर से वसूल की जाती थी उसका एक अंश ही शाही कोश में जमा हो पाता था, क्योंकि जागीरदार अपने–अपने क्षेत्रों में, उसे अलग–अलग दर से वसूल करते थे; जबकि शाही कोश में एक निश्चित धनराशि ही राहदारी कर के रूप में, उनकी आय से काट ली जाती थी।

फर्रूखसियर के शासन में भी राहदारी कर वसूल किया जाता था। 20 अक्टूबर, 1713 ई0 को बादशाह ने देहली से बाहर, बारहपुला से लेकर दक्षिण में चम्बल नदी तक, पूर्व में आगरा से लेकर पश्चिम में आमेर नरेश जयपुर की सीमाओं तक, शाही मार्गो की राहदारी का अधिकार जाट नेता चूरामन को सौंप दिया था।[8]

✍ पटना वि0 वि0, पटना (बिहार)

धार्मिक स्नान एवं तीर्थ यात्रा पर कर – इलाहाबाद प्राचीन काल से ही, हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थल रहा है। उत्तर मुगलकालीन शासकों के समय में यहाँ पर आने वाले तीर्थयात्रियों से एक निश्चित धनराशि कर के रूप में ली जाती थी।[9] प्रत्येक बार त्रिवेणी स्नान करने पर भी कर वसूल किया जाता था। औरंगजेब के समय में यह कर 6.25 रूपये प्रति व्यक्ति की दर से लिया जाता था, इस कर से शाही कोश में पर्याप्त धन आ जाता था।[10] यह कर औरंगजेब के बाद के बादशाहों के शासनकाल में भी एकत्रित किया जाता रहा। फर्रूखसियर ने अपने शासन के अन्तिम वर्ष में राजा अजीत सिंह की सलाह से तीर्थ यात्रा कर माफ कर दिया था।[11]

समय–समय पर हिन्दुओं के धार्मिक मेले लगते रहते थे। उन मेलों में व्यापारी दूर–दूर से तरह–तरह के समान विक्रय के लिए, लेकर आते थे। उनकी बिक्री पर भी एक प्रकार का कर लिया जाता था। औरंगजेब ने उन मेलों तथा मुस्लिम सन्तों की मजारों पर लगने वाले मेलों पर भी रोक लगा दी थी, परन्तु बाद के बादशाहों के समय, उन मेलों पर लगाई गई पाबन्दियों के पालन का कोई उदाहरण नहीं मिलता है।

जजिया – एक प्रकार का धार्मिक कर था जो हिन्दुओं से वसूल किया जाता था। अकबर ने उसे बन्द कर दिया था। उसके बाद के शासकों ने भी उस कर को नहीं लगाया; परन्तु औरंगजेब ने अपने शासन के 22वें वर्ष में जजिया कर पुनः लागू कर दिया।[12] जिससे 52 लाख रूपये की वार्षिक आय होती थी।[13] बहादुरशाह के समय में जजिया की आय घटने लगी थी।[14] बहादुरशाह और जहाँदार शाह के समय में जजिया समापन के शाही आदेश भी जारी किये गये थे। परन्तु वह लागू न हो पाये और जजिया वसूल होती रही। किन्तु फर्रूखसियर ने गद्दी पर बैठते ही जजिया को समाप्त करने का फरमान जारी किया और वह कार्यान्वित भी हुआ।[15]

महसूल कर – यह भी शासन की आय का प्रमुख स्त्रोत था। प्रत्येक नाके पर एक दारोगा नियुक्त रहता था, जो किसी भी व्यक्ति को बिना शाही आदेश पत्र के मार्ग से गुजरने नहीं देता था। साथ ही वही, इस बात पर भी ध्यान रखता था कि यदि व्यक्ति व्यापारी है, तो वह किस चीज का व्यापार कर रहा है तथा कैसा सामान लेकर गुजर रहा हैं। प्रत्येक गाड़ी पर 4 रूपये महसूल कर तथा रथ से केवल एक रूपया महसूल वसूल किया जाता था। नावों को बिना गिने ही पास कर दिया जाता था तथा उनके महसूल की दर अलग होती थी।[16] औरंगजेब ने 9 मई 1667 ई0 को, एक फरमान द्वारा, सम्पूर्ण साम्राज्य में मुस्लिम व्यापारियों को चुंगी कर से मुक्त कर दिया था।[17] कुछ समय पश्चात् भूमि कर अधिकारियों की रिपोर्ट तथा भले एवं अनुभवी लोगों की शिकायते मिलीं कि मुसलमान व्यापारी अपने साथ हिन्दुओं का भी माल पार करा देते हैं।[18] अतः औरंगजेब ने दूसरा फरमान, 5 मार्च, 1682 ई0 को जारी किया, जिसके अनुसार आदेश दिया गया कि मुसलमानों से 2.50 प्रतिशत और हिन्दूओं से 5 प्रतिशत महसूल किया जाये।[19]

अंग्रेज व्यापारी 1649 ई0 के बाद से केवल दो प्रतिशत ही महसूल कर देते थे, और वह भी वस्तु की उत्पादन लागत पर ही अदा किया जाता था। औरंगजेब ने उसे बढ़ा कर 3.50 प्रतिशत कर दिया; परन्तु वह सफल न हो सका क्योंकि शिवाजी द्वारा सूरत पर आक्रमण के समय, शाही सेना अंग्रेजों को सुरक्षा न प्रदान कर सकी थी जिससे अंगेजों को वह कर स्वतः ही घट कर 2 प्रतिशत रह गया।

बहादुरशाह तथा जहाँदारशाह के शासन में भी अंग्रेज 2 प्रतिशत ही महसूल अदा करते रहे। फर्रूखसियर के समय में उन्हें विशेष व्यापरिक सुविधाएँ प्राप्त हो गयी थी। बादशाह के आदेशानुसार उन्हे बंगाल तथा गुजरात में एक निश्चित राशि वार्षिक शाही कोश में जमा करने मात्र से ही, बिना किसी

महसूल के, व्यापार की छूट मिल गई थी।[20] यह सुविधा केवल अंग्रेजों को ही प्राप्त थी, अन्य विदेशी व्यापारियों को पूर्व की भाँति ही महसूल देना पड़ता था, उन्हें किसी प्रकार की छूट न थी।

आय के अन्य स्रोत – उपरोक्त वर्णित करों के अतिरिक्त, अन्य कई प्रकार के भी कर, उत्तर मुगल काल में लगायें जाते थे।

सन् 1669–70 (1080 हि0) में एक फरमान जारी हुआ कि इस वर्ष से हिन्दू, अपने पशु–धन का 5 प्रतिशत, और मुसलमान 2.50 प्रतिशत की दर से कर शाही खजाने में जमा करेंगे।[21] 1682 ई0 में मुद्रण व्यय हिन्दूओं पर 5 प्रतिशत तथा मुसलमानों पर 2.50 प्रतिशत की दर से लागू हुआ।[22]

बागों की आय पर हिन्दूओं से 20 प्रतिशत तथा मुसलमानों से 16.6प्रतिशत के हिसाब से उत्पादन शुल्क भी लिया जाता था।[23]

उत्तर मुगलकाल में भाँग, पोस्त आदि मादक वस्तुओं की खेती से भी शासन को भारी आय होती थी। किन्तु बाद में औरंगजेब ने शासन के वित्त मन्त्री राजा रघुनाथ को आदेश दिया कि वह समस्त प्रान्तीय दीवानों को भाँग की खेती पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया गया था।[24] कुछ समय पश्चात् औरंगजेब ने अन्य मादक वस्तुओं की खेती, विक्रय तथा उनके खुलेआम प्रयोग पर भी रोक लगा दी।[25] पोस्त की खेती केवल लायसेन्स प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता था। भाँग के अतिरिक्त तम्बाकू, शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं के विक्रय तथा उपयोग पर भी औरंगजेब ने प्रतिबंध लगा दिया था।[26] परन्तु यह प्रतिबंध अन्य उत्तर मुगलकालीन शासकों के समय में इतने कठोर रूप में लागू न रह सके क्योंकि वे स्वयं शराब का प्रयोग करते थे।

उपरोक्त करो के अतिरिक्त सरसुमारी, बजसुमारी, बारगाही, चराई बंजारा और तुआना आदि अन्य कर भी आय के साधन थे।

शासन के वे मनसबदार या जागीरदार जिनके कोई सन्तान नहीं होती थी, उनकी सम्पति राज्य में मिला ली जाती थी; परन्तु बादशाह इसमें छूट भी दे सकता था जैसा कि बहादुरशाह ने गुरू गोविन्द सिंह की सम्पति के विषय में दी थी।[27]

संदर्भ संकेत सूची

1. खाफी खाँ, मूल जिल्द 2, पृ0 87
2. वही।
3. वही।
4. वही।
5. मौलवी सैयद हाशमी फरीदाबादी, तारीख–ए–हिन्द, जिल्द 3, द्वितीय संस्करण 1939, दारूल मतबा जामिया उस्मानिया सरकार–ए–आली हैदराबाद (दकिन), पृ0 153
6. खाफी खां, जिल्द 2, पृ0 88–89
7. वही, पृ0 89
8. अखबारात, 13 रबी–उस्–सानी व 11 शव्वाल 1125 हि0, इबरत नामा, पृ0 62
9. भंडारी, खुलासत–उत्–तवारीख, पृ0 26
10. मनुची, भाग 2, पृ0 82
11. सतीश चन्द्र जजिया इन दी पोस्ट औरंगजेब पीरियड, प्रोसीडिंग आफ दी इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, नाईथ सेशन, पटना 1946, पृ0 323
12. मआसिर–ए–आलमगीरी, पृ0 174

13. खाफी खां, मूल जिल्द 2, पृ0 404
14. वही।
15. खाफी खां, मूल जिल्द 2, पृ0 816; मिरात–ए–अहमदी, जिल्द 2, पृ0 239द्ध कामवार खां, पृ. 442
16. टेवर्नियर, जिल्द 1, पृ0 117
17. खाफी खां, मूल जिल्द 2, पृ0 229
18, वही, पृ0 230
19. वही।
20. फर्रूखसियर–फरमान, 1717
21. मिरात–ए–अहमदी, जिल्द 1 पृ0 304
22. वही।
23. वही, पृ0 275
24. वही, पृ0 247
25. वही, पृ0 282
26. मनुची, भाग 2, पृ0 88
27. बहादुरशाह नामा की 17 नवम्बर, 1708 ई0 की एक रिपोर्ट के अनुसार।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 82-85

विकास और जनसंचार माध्यम

जनसंचार माध्यम एवं भूंडलीकरण

✍ प्रो. डॉ. सुरेश एफ. कानडे

'संचार 'शब्द संस्कृत की ' चर' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'चलना 'अथवा 'संचरण करना। यह अंग्रेजी के Communcation शब्द के पर्याय रुप में भी प्रयोग होता है, जो Communicate क्रिया से बना है। Communication शब्द लैटिन भाषा के कम्यूनिटास से जुड़ा है। जिसका अभिप्राय मनुष्य का मनुष्य के प्रति व्यवहार, भाईचारा, मैत्रीभाव, सहभागिता एवं न्याय परायणता भी है। अतः 'संचार' एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक अर्थपूर्ण संदेशों का संप्रेषण कहलाता है।

संचार के पाँच रुप प्रचलित हैं –

1. अन्तर्वैयक्तिक संचार (Intra Personal Communication)
2. अन्वैयक्तिक संचार (Inter Personal Communication)
3. समूह संचार (Group Communication)
4. परम्परागत संचार (Traditional Communication)
5. जनसंचार (Mass Communication)

संचार एवं माध्यम (Media) के साथ 'जन' (Mass) शब्द जुड़ने से 'जनसंचार' शब्द बना है। 'जन' शब्द विविध अर्थो के लिए प्रयोग होता है। जैसे, समूह, भीड़, जनसमुदाय आदि। परंतु यहाँ जनसमुदाय से जुड़ने वाले माध्यमों के बारे में इसका प्रयोग करेंगे। भारत में जनसंचार माध्यमों की अवधारणा अति प्राचीन हैं। पौराणिक साहित्य में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं, जैसे महाभारत में कंस एवं देवकी का प्रसंग हो या संजय द्वारा महाभारत के युद्ध का वर्णन, रामचरित्रमानस के कई प्रसंग आदि, तथापि लोकनाट्य के रुप में प्राचीन काल में जनसंचार माध्यम उपस्थित था तथापि आधुनिक काल में पत्र–पत्रिकाओं के साथ नवीन प्रकार के जनसंचार का प्रचलन आरंभ हुआ जो फिल्म, रेडियो, टेलीविजन से होकर आज की द्रुतगामी इंटरनेट सेवा तक आ पहुँचा है। इन माध्यमों ने युगांतकारी परिवर्तन करते हुए संम्पूर्ण विश्व को एक गाँव में स्थापित कर दिया है।

जनसंचार माध्यम विज्ञान की प्रगति और तकनीकी विकास के साथ–साथ मानवीय जीवन में परिवर्तन के शक्तिशाली माध्यम बन गए हैं। जनसंचार माध्यम आज लोकमत बनाने व बदलने की क्षमता रखनेवाले शक्तिशाली माध्यम है। संचार और यातायात के अत्यंन्त विकसित साधनों वाले आज के आधुनिक युग में जनसंचार माध्यम भूमण्डलीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। समाज, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार तथा प्रगति के लिए जनसंचार माध्यम आज सक्षम बन गए हैं, जो हमें गरीबी का भूगोल, पूँजीपतियों का अर्थशास्त्र और नेताओं का समाजशास्त्र व राजनीतिशास्त्र पढ़ाते हैं। इसलिए आज 'जनसंचार' माध्यमों का मानवजीवन में अत्यधिक महत्व है। भूमंडलीकरण औद्योगिकरण का दूसरा अध्याय है। विश्वव्यापार संघटन द्वारा प्रस्तुत आर्थिक वैश्वीकरण को मीठा नाम दिया गया है – भूमंडलीकरण, आर्थिक सुधार, खुली अर्थनीति, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण कुछ ऐसे शब्द है जो मध्यमवर्ग के समाज को सोचने को मजबूर करते हैं। भूमंडलीकरण ने कई चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी है। आर्थिक उदारीकरण–वैश्वीकरण के इस नए रुप को बनाने या उजागर करने में जनसंचार माध्यमों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है, जिसमें वह अपनी मर्यादाओं को भी

✍ एस.एम.आर.के.बी.के. ए.के., महिला महाविद्यालय, नाशिक–5

लाँघ गया है। बाजारवाद व विज्ञापन के सहारे उपभोक्ता संस्कृति का खुला नर्तन, सांस्कृतिक आक्रमण से आतंकित समाज आज जनसंचार माध्यमों पर प्रश्न चिन्ह लगाने लगा है, जिसका ज्वलंत उदाहरण फैशन शोज हैं। सन् 1991 के बाद भारत में विश्व सुन्दरियों की बाढ सी आ गयी, सौन्दर्य का उन्मुक्त प्रदर्शन होने लगा, सुन्दरता की परिभाषा बदल दी गयी, उसका दायरा बदल गया, परंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या 1991 से पहले भारत में सुन्दरियाँ नहीं थीं? "या कम थी?" वास्तव में यह भूमंडलीकरण व जनसंचार माध्यमों का नजारा था। इससे साम्राज्यवादी देशों को लगभग 40% बाजार मिल गया। सौन्दर्य प्रसाधन विज्ञापनों के माध्यम से महलों से झोपड़ी तक पहुँच गये। परिणाम स्वरुप सौन्दर्य दर्शन की वस्तु बन गयी, जनसंचार माध्यमों की वजह से प्रदर्शन प्रियता को बढ़ावा मिल गया।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जनसंचार माध्यम मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रभाव गहराई से छोड रहे है। जिससे विश्वनगर या ग्लोबल विलेज का सपना साकार होते नजर आ रहा है। जनसंचार माध्यमों की नयी तकनीकी से विश्व व्यापार सरल से सरलतम हो रहा है, इसलिए भूमंडलीकरण के इस विचार ने दुनिया को भूमंडी बनाम बाजार का रुप दे दिया है। जिसका एक ही मूल मंत्र है लाभ कमाना, और लाभ कमाने के लिए आज माध्यमों का पूरा–पूरा उपयोग हो रहा है। बाजारवाद के इस दौर में मानव जीवन की सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है तथा चुनौती भी। आतंकवाद जैसे भयानक राक्षस का पालन–पोषण करने में भी जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसे नकारा नहीं जा सकता। इसी कारण भूमंडलीकरण का आज का चेहरा अमानवीय है। कम्प्यूटर क्रांति और अन्य इलैक्ट्रॉनिक माध्यम, प्रसार माध्यमों ने ताकतवर को और अधिक ताकतवर बना दिया है। संसार में मानव द्वारा घटित होने वाली कोई घटना के पीछे कई माध्यम कार्य कर रहें है। भाषा, संस्कृति, धर्म, इतिहास, समाज, राजनीति आदि क्षेत्रों में माध्यम नए–नए पहलुओं को उजागर कर रहें हैं। भाषाओं के रूपों और संरचनाओं में निरंतर परिवर्तन आ रहे हैं।

भूमंडलीकरण का आज का चेहरा अमानवीय बनता जा रहा है। इसमें जीवन संबंधी सभी आदान–प्रदान शक्ति एवं साधनों के बलबूते पर हो रहे हैं। इन साधनों में जनसंचार माध्यम प्रमख हैं। आज समाज शक्तिशाली व्यक्तियों के इशारे पर चल रहा है, इसलिए ये व्यक्ति उनके लिए उपयोगी चीजों कों ही महत्व देने लगे हैं, जो उनके लिए उपयोगी नहीं हैं उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं है, गरीब व अविकसित देशों को अपनी सामाजिक व्यवस्था विकसित देशों के लिए खुली करनी पड़ रही है एवम् उनकी न्याय व्यवस्था कैसी होनी चाहिए यह भी शक्तिशाली व विकसित देश तय करने लग गये हैं। अतः भूमंडलीकरण व जनसंचार माध्यम एक दुसरे के पर्याय बन गए है। इन माध्यमों में निरंतर विकास हो रहा है, जो समाज के लिए लाभदायक भी है और हानिकारक भी।

दशा एवं दिशा

जनसंचार माध्यम :

संचार क्रांति के इस दौर को 'मीडिया युग' कहा जाय तो शायद गलत न होगा, क्योकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज जन संचार माध्यमों का प्रभाव है इसलिए जनसंचार माध्यम आज जीवन के पर्याय कहे जा सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य आज अपनी जाग्रतावस्था का 70 प्रतिशत से अधिक हिस्सा 'संचार' करने में लगाता है। जैसे बोलने, सुनने, सोचने, पढने, लिखने, बातचीत या विचार विमर्श करने में लगाता है। 'संचार' की प्रक्रिया केवल मनुष्य में ही नही सभी प्राणियों में पायी जाती है। परन्तु मनुष्य ने अपनी बौद्धिक क्षमता से संचार प्रणाली में बहुत विकास किया है। आधुनिक समाज के उदय के साथ–साथ संचार साधनों का भी विकास हुआ है।

जन संचार (Human Communication) का प्रथम चरण 'मौखिक संचार' (Oral Communication) है। जिसके अंतर्गत मनुष्य ने भाषा का अविष्कार एवं विकास किया, द्वितीय चरण 'लिखित संचार' (Written Communication) का है। तृतीय चरण 'मुद्रण युग' (Printing Age) आता है, जब गुटेनवर्ग ने 1456 में पहली बार बाइबिल छापी थी। चतुर्थ चरण 'दुर संचार युग' (Distance Communication) का है। जो मोर्स की टेलीग्राफ प्रणाली से प्रारंभ होता है और मारकोनी का वायरलैस से अमर हो गया है। आज हम पाँचवें चरण में है जिसने अत्याधुनिक संचार माध्यमों द्वारा "पारस्परिक क्रियात्मक संचार प्रणाली" (Interactive Communication System) पर विशेष बल दिया गया है।

संचार तथा माध्यम के साथ 'जन' शब्द जुड़कर 'जनसंचार' (Mass Communication) और जन माध्यम (Mass Media) शब्द बने हैं। जब संचार की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर बढ़ जाती है तो वह 'जनसंचार' कहलाता है, जनसंचार के उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं।

1. भाव, विचार, संदेश, ज्ञान, सूचना आदि दूसरे लोगों तक पहुँचाना।
2. अपने अनुभवों का परस्पर आदान–प्रदान करना।
3. समाज के सदस्यों को समझाना, उनका विश्वास अर्जित करना, प्रभावित करना, आवश्यकता होने पर उन्हे नियंत्रित करना।
4. ज्ञान , सूचना और अनुभवों को परस्पर बाँटना। उन्हें दूर–दूर तक पहुँचाना या फैलाना आदि।

आधुनिक काल में 'जनमाध्यम' मूल रुप से तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

1. शब्द संचार माध्यम या मुद्रण माध्यम (Print Media)
2. श्रव्य संचार माध्यम (Audio Media)
3. दृश्य संचार माध्यम (Vedio Media)

जनसंचार माध्यम

शब्द संचार माध्यम (Print Media)		श्रव्य संचार माध्यम (Audio Media)	दृश्य संचार माध्यम (Vedio Media)
समाचार पत्र		इलैक्ट्रॉनिक मीडिया	
पत्रिकाएँ			
जर्नल			
पुस्तक	केवल श्रव्य माध्यम	श्रव्य एवं दृश्य माध्यम	नव इलैक्ट्रॉनिक माध्यम
पम्पलेट			
पोस्टर	रेडिओ, ओडियो, कॅसेट सीडी आदी	फिल्म टेलिविजन,विडीओ कॅसेट ,सीडी आदी	उपग्रह एवं कम्प्यूटर प्रणाली / इन्टरनेट आदी

इसके अलावा परम्परागत माध्यम भी हैं जो निम्नलिखित है –

परंपरागत जनसंचार माध्यम

उत्सव धर्मी		चित्रधर्मी	वास्तुधर्मी
मेले	त्योहार	भीत्ती चित्र	मंदिर, स्तूप
कुलूका दशहरा	होली	तैलचित्र	नगर, भवन
रथयात्रा	दिवाली	गुफा चित्र	
कुंभमेला	पोंगल	/ एजन्ता,ऐलोरा स्तूप / शिलालेख	

जन संचार की प्रक्रिया समझने के लिए यह जानना आवश्यक हैं कि, मानव समाज के भाव, सूचनाएँ या जानकारी संचार के क्षेत्र में सार्थक माने जाते हैं। इनके संप्रेषण के लिए साधनों का प्रयोग किया जाता है। ये साधन 'माध्यम' कहलाते हैं। इस प्रकार जनसंचार में सार्थक संदेशों का महत्व है। इनके अभाव में संचार प्रक्रिया असंभव हैं। संचार प्रक्रिया का पहला विकसित माध्यम 'भाषा' है। संचार के दायरे में अभिव्यक्ति के सभी रुप आ जाते हैं। सृष्टि के सभी प्राणियों में संकेत, संचार प्रणाली कार्यरत रहती है। चूंकि मनुष्य सबसे बुद्धिमान प्राणी है इसलिए वही संचार की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर उपयोग करता है।

जनसंचार माध्यमों में भाषा एवं अन्य माध्यम एक दूसरे के सहयोगी हैं। भाषा, बोली, प्रतीक, लिपि के उद्भव एवं विकास को किसी समय विशेष या स्थान विशेष से नहीं जोड़ा जा सकता है, क्योंकि प्रमाणों का अभाव है। समय की माँग के अनुसार अनेक आविष्कारों का जन्म हुआ। यद्यपि भारत में जनसंचार माध्यमों का विकास प्राचीन युग से ही प्रारंभ हो गया था। संगीत, नृत्य, गीत, बोली, भाषा, आदि का विकास प्रकृति की नकल करने से और उसमें सुधार करने से हुआ है।

आधुनिक काल में जनसंचार माध्यमों का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रभाव है। सुबह उठते ही अखबार रुपी माध्यम हमें विश्व दर्शन कराता है। विविध घटनाओं से रु–ब–रु कराता है। बाजार जाने से पहले हमें टेलीविजन के विज्ञापन या अन्य विज्ञापन हमें क्या खरीदना है, कहाँ से खरीदना है यह तय करने के लिए मजबूर कराते है। जनसंचार माध्यम आज एक ओर हमारे प्रहरी का कार्य कर रहे है तो दूसरी ओर जनमत का निर्धारण भी कर रहे हैं, जनता का मूड़ तैयार कर रहे हैं।

जनसंचार माध्यम और समाज आज एक दूसरे के पूरक बन गए हैं। स्वतंत्रता से पूर्व जब पूरा भारत अंग्रेजों का विरोध कर रहा था तब भी समाचार पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई , और स्वतंत्रता के बाद से आज तक जनसंचार के विविध माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण है। आज विज्ञापन, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि के रुप में इलेक्ट्रॉनिक माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जैसे – जैसे जनसंचार माध्यमों में आधुनिक तकनीकी का इस्तेमाल बढ़ रहा है, वैसे–वैसे इनका समाज पर लगातार प्रभाव बढ़ रहा है। लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि आज जनसंचार माध्यम अपने सकारात्मक विकास के साथ नकारात्मक रुप से भी समाज को प्रभावित कर रहे हैं। विज्ञापन इस नकारात्मकता को निरंतर बढ़ा रहे हैं, फिर भी आधुनिक समाज की जीवन शैली और समाज की मूल्य प्रणाली पर इनका गहरा प्रभाव है। शायद इसीलिए कुछ लोग संस्कृति के व्यावसायीकरण, स्थापित मूल्यों में गिरावट तथा नैतिक अवमूल्यन के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

जनसंचार के क्षेत्र में आ रही नित नई प्रौद्योगिकी ने आज सूचना क्रांति की स्थिति पैदा कर दी है। इस सूचना तकनीकी क्रांति ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और पहलु को किसी न किसी रुप में गहराई तक प्रभावित किया है। चाहे संसार की पारंपरिक भाषा को बदलने का काम हो या व्यवसाय की पारंपरिक परिभाषा में परिवर्तन की बात हो, उच्च शिक्षा और अनुसंधान को नया आयाम देने का मामला हो, या मनोरंजन को नए सिरे से परिभाशित करने की बात हो, लगभग प्रत्येक क्षेत्र में जनसंचार माध्यमों द्वारा परिवर्तन आया है। इंटरनेट नामक माध्यम ने तो सूचना तकनीकी के क्षेत्र में अमूलाग्र परिवर्तन किया है। इसके कारण समूचा संसार हमारे दरवाजे पर है। इन्टरनेट जितना लाभदायक सिद्ध हो रहा है उतना ही वह वीभत्स और भयानक भी होता जा रहा है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि आज का समाज, जनसंचार माध्यमों के विभिन्न रुपों से गहराई तक प्रभावित हो रहा है। जनसंचार माध्यम एक ओर लोकतंत्र को मजबूत कर रहा है तो दूसरी ओर इनसे समाज में दरारें भी पड़ रही हैं। इसके कारण भ्रष्टाचार उजागर होता है तो नग्नता भी दिखती है । जनसंचार माध्यम और समाज को इसी अन्तर्संबंध को गहराई से समझकर उसे नई और सही दिशा देने की आवश्यकता है ।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010, पेज : 86–91

भारत में उद्योग एवं अर्थव्यवस्था की स्थिति

महारत्न सार्वजनिक उपक्रमों की पूँजी उत्पादकता का एक अध्ययन

('आई. ओ. सी.' एवं एन. टी. पी. सी. के विशेष सन्दर्भ में)

✍ डॉ. मनीष कुमार गुप्ता

भारत में लोक उपक्रमों की स्थापना का उद्देश्य मूलभूत रूप से संतुलित विकास, सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियन्त्रण, आय तथा धन का समान वितरण तथा औद्योगिक नियोजन को एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ प्रदान करते हुये देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को कारगर बनाना था। इस सम्बन्ध में लोक उपक्रमों की भूमिका बहुत सराहनीय रही है। परन्तु 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक से आर्थिक उदारीकरण व भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया शुरू होने से सार्वजनिक उपक्रमों का उद्देश्य निजी क्षेत्र को तीव्र प्रतिस्पर्धा देते हुये उनके सामने एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करना भी हो गया है। वर्तमान में सार्वजनिक उपक्रम सरकारी लाल फीताशाही का केन्द्र न होकर एक आदर्श व्यवसायी का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। ये उपक्रम पूर्णतया व्यवसायिक सिद्धांतो पर कार्य करते हुये आर्थिक लाभ के साथ–साथ अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति भी कर रहे है। 30 जून 2010 को भारत में 247 केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रम कार्यरत थे जिनमें से 4 को 'महारत्न', 16 को 'नवरत्न' तथा 62 उपक्रमों को 'मिनीरत्न' का दर्जा प्राप्त था।[1] 31 मार्च 2009 को कार्यरत 213 केन्द्र सरकार के उपक्रमों में 158 लाभ की स्थिति में तथा 54 हानि की स्थिति में कार्य कर रहे थे।[2] एक उपक्रम 'फूड कारपोरेशन ऑफ इंडिया' सरकारी दिशानिर्देशों के अन्तर्गत 'शून्य लाभ व शून्य हानि' की स्थिति में कार्य कर रहा था।[3] 31 मार्च 2009 को केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों की कुल प्रदत्त पूंजी व दीर्घावधि दायित्वों का योग 528951 करोड़ रूपये था।

केन्द्रीय सरकार की महारत्न सार्वजनिक उपक्रम योजना

केन्द्रीय सरकार ने दिसम्बर 2009 में प्रस्तुत एक योजना के अन्तर्गत कुशल, लाभदायी व उत्तम निष्पादन वाले केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों को 'महारत्न' का दर्जा देने का निश्चय किया है और इस क्रम में चुने गये उपक्रमों को वित्त, तकनीक, विस्तार, कार्मिक, संयुक्त उपक्रम, विदेशी सहयोग इत्यादि के सम्बन्ध में विभिन्न सुविधाये एवं शक्तियाँ प्रदान करने का इस योजना का प्रावधान है। 19 मई 2010 को सरकार ने चार कम्पनियों को 'महारत्न कम्पनी' का दर्जा प्रदान किया है। ये चार कम्पनी क्रमशः इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड, नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड, ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड तथा स्टील आथोरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड है।[4] किसी भी कम्पनी को महारत्न का दर्जा दिये जाने के लिये सरकार ने निम्न कसौटियाँ[5] बनायी हैं–

1. कंपनी को 'नवरत्न' का दर्जा पहले से प्राप्त हो,
2. सेबी के नियमों के आधार पर कम्पनी के पास एक न्यूनतम सार्वजनिक अंशधारिता हो तथा यह राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में सूचियत हो।
3. पिछले तीन वर्षो के दौरान इसकी औसत वार्षिक बिक्री 25000 करोड़ रू0 से ज्यादा रही हो।
4. पिछले तीन वर्षो के दौरान इसका औसत वार्षिक शुद्ध धन 15000 करोड़ रूपये से ज्यादा रहा हो।

✍ असिस्टेंट प्रोफेसर–वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, ज़िला बिजनौर

5. पिछले तीन वर्षो के दौरान इसका औसत वार्षिक लाभ कर के बाद लाभ 5000 करोड़ रूपये से ज्यादा रहा हो।

6. इसके कार्यों की घरेलू स्तर या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्णता हो।

केन्द्र सरकार का सार्वजनिक उपक्रम विभाग 'महारत्न दर्जा' एक निश्चित प्रक्रिया के अन्तर्गत एक अन्तर--मंत्रालयी समिति के माध्यम से देना निश्चित करता है।

शोध तन्त्र

प्रस्तुत अध्ययन में चार महारत्न केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों में से आई.ओ.सी.लिमिटेड एवं एन. टी.पी.सी.लिमिटेड के विशेष संदर्भ में उनकी 'पूँजी उत्पादकता' का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

पूँजी उत्पादकता के अध्ययन हेतु उपरोक्त दोनों उपक्रमों के विगत पाँच वर्षों के समंकों का संग्रहण मुख्यतया द्वितीयक स्रोतों (उपक्रमों की वार्षिक रिपोर्ट, सरकारी संस्थाओं की रिपोर्ट इत्यादि) से किया गया है। अध्ययन व विश्लेषण की तकनीक के रूप में मुख्यतया 'अनुपात विश्लेषण तकनीक' का प्रयोग किया गया है।

पूँजी की उत्पादकता मुख्यतया दो बिन्दुओं में गर्णित की गयी है--

अ) शुद्ध विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय[6]-- इस प्रत्याय की गणना हेतु ब्याज व कर से पहले के लाभ का शुद्ध विनियोजित पूँजी के ऊपर प्रतिशत निकाला गया है।

ब) अंशधारियों के धन पर प्रत्याय[7]-- इस प्रत्याय की गणना हेतु अंशधारियों को वितरण के लिये उपलब्ध लाभ का अंशधारियों के धन के ऊपर प्रतिशत निकाला गया हैं।

इसके अतिरिक्त वार्षिक चक्रवृद्धि दर की गणना के लिये गुणोत्तर माध्य[8] की तकनीक का प्रयोग किया गया है।

आई.ओ.सी.-एक संक्षिप्त परिचय

आई.ओ.सी. की स्थापना सितम्बर 1964 में इंडियन रिफाइनरीज लिमिटेड व इंडियन ऑयल कम्पनी के विलय द्वारा हुयी। इस पर तेल व प्राकृतिक गैस मंत्रालय का प्रशासनिक नियन्त्रण है। इसका कारपोरेट कार्यालय दिल्ली में है। इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड विक्रय के संदर्भ में भारत की सबसे बड़ी कम्पनी है। इसका विक्रय वर्ष 2009--10 के अन्तर्गत 271074 करोड़ रूपये था। 'फारच्यून 500' की सूची में इसका भारतीय कम्पनियों में सर्वप्रथम स्थान है। इस सूची में आई.ओ.सी.एल को 125वाँ स्थान प्राप्त हुआ है। इसके उत्पादों में इंडेन गैस, आटो गैस, प्राकृतिक गैस, पेट्रोल, डीजल, जैट--ईधन, सर्वो लुब्रीकेन्टस, सामुद्रिक ईधन, मिट्टी का तेल, कच्चा तेल तथा अन्य पेट्रोकैमिकल उत्पाद शामिल है।[9] आई.ओ.सी.एल. का मुख्य उद्देश्य सरकारी नीतियों के अनुरूप और उनकी ध्यान में रखते हुये तेल तथा संबंधित क्षेत्रों में राष्ट्रीय हितों को पूरा करना है। इस हेतु इसका उद्देश्य कच्चे तेल के शोधन,परिवहन और विपणन कार्यों द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों की सुगम आपूर्ति सुनिश्चित करना व उसे बनाये रखना है।[10] 31 दिसम्बर 2010 को इसकी कुल अंश पूँजी 2427.95 करोड़ रूपये में केन्द्रीय सरकार का हिस्सा 78.92प्रतिशत है।[11]

एन.टी.पी.सी--एक संक्षिप्त परिचय

नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन लिमिटेड की स्थापना कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत 7 नवम्बर

1975 को एक प्राइवेट कम्पनी के रूप में हुयी थी। 30 सितम्बर 1985 में कंपनी को प्राइवेट लिमिटेड कंपनी से पब्लिक लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित कर दिया गया। थर्मल पावर उत्पादन के साथ–साथ इसकी क्रियाओं में जल–विद्युत,परमाणु व गैर परम्परागत स्रोतों से विद्युत उत्पादन व कोयला–खनन एवं तेल का अन्वेषण इत्यादि शामिल है।[12] फोर्ब्स सूची 2009 में इस कंपनी को 317वाँ स्थान प्राप्त है। वर्तमान में 33194 मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता के साथ–साथ इस कंपनी का लक्ष्य वर्ष 2017 तक 75000 मेगावाट क्षमता प्राप्त करना है। इस कंपनी का प्रमुख उद्देश्य विश्वसनीय विद्युत,संबंधित उत्पाद व सेवायें प्रतिस्पर्धी मूल्य पर विकसित करना व प्रदान करना, नवचार व पर्यावरण–अनुकूल प्रौद्योगिकी के साथ अनेक ऊर्जा स्रोतों का समेकन करते हुये भारत विकास को महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करना है।[13] वर्ष 2009–10 के लिये इसका कुल विक्रय 46323 करोड़ रूपये था। 31–03–10 को इसकी कुल अंश पूँजी 8245 करोड़ रूपये में केन्द्र सरकार का हिस्सा 89.50 प्रतिशत था। कंपनी का कारपारेट ऑफिस नई दिल्ली में है।[14]

पूँजी उत्पादकता का अध्ययन

1. आई0ओ0सी0 लिमिटेड

प्रस्तुत 'तालिका–1' व 'तालिका–2' आई0ओ0सी0 लिमिटेड की क्रमशः 'शुद्ध विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय' व 'अंशधारियों के धन पर प्रत्याय' को प्रदर्शित करती है।

तालिका–1

आई0ओ0सी0 लिमिटेड

वर्ष	शुद्ध विनियोजित पूंजी (करोड़ रू0)	ब्याज व कर से पूर्व लाभ (करोड़ रू0)	शुद्ध विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय (प्रतिशत)
2005–06	60047	7728	12.87 %
2006–07	67107	10111	15.07 %
2007–08	81828	11632	14.22 %
2008–09	94411	8281	8.77 %
2009–10	99857	15633	15.66 %

संदर्भ– आई0ओ0सी0 एल लिमिटेड के गत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदन[15]

तालिका–1 में आई0ओ0सी0 लिमिटेड की 'शुद्ध विनियोजित पूंजी' व 'ब्याज व कर से पूर्व लाभों' के आधार पर 'शुद्ध विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय' की गणना की गयी है जो वर्ष 2005–06 से लेकर वर्ष 2009–10 तक क्रमशः 12.87:, 15.07:, 14.22:, 8.77: तथा 15.66: है। प्रत्याय दर 2006–07 तक बढ़ने के बाद अगले दो वर्षों में कम हो गयी है लेकिन पुनः यह वर्ष 2009–10 में 15.66% के स्तर पर पहुंच गयी है। 2007–08 व 2008–09 में प्रत्याय दर का घटना वैश्विक मंदी का दुष्परिणाम है, परंतु सबसे महत्वपूर्ण तथ्य शुद्ध विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय का वर्ष 2009–10 में पिछले पांच वर्षों के अपने अधिकतम स्तर 15.66% पर पहुंचना है।

तालिका–2 में 'अंशधारियों का धन' व 'अंशधारियों को उपलब्ध शुद्ध लाभ' के आधार पर 'अंशधारियों के धन पर प्रत्याय' की गणना की गयी है जो वर्ष 2005–06 से लेकर 2009–10 तक क्रमशः

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

तालिका–2

आई0ओ0सी0 लिमिटेड

वर्ष	अंशधारियों के धन (करोड़ रू0)	अंशधारियों को उपलब्ध शुद्ध लाभ (करोड़ रू0)	अंशधारियों के धन पर प्रत्याय (प्रतिशत)
2005–06	29303	4915	16.77 %
2006–07	34833	7499	21.53 %
2007–08	41086	6963	16.95 %
2008–09	43979	2950	6.71 %
2009–10	50553	10221	20.22 %

संदर्भ– आई0ओ0सी0 एल लिमिटेड के गत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदन[16]

16.77%, 21.53%, 16.95%, 9.71%, व 20.22% है। इस प्रत्याय दर में भी 'शुद्ध विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय दर' की भांति वर्ष 2007–08 तथा वर्ष 2008–09 में गिरावट आयी है और उसी प्रकार यह दर भी वर्ष 2009–10 में पुनः बढ़कर 20.22% के महत्वपूर्ण स्तर पर पहुंच गयी है। 2009–10 में पुनः उच्च स्तर की ओर अग्रसर होना आर्थिक मंदी के दुष्प्रभावों से मुक्ति प्रदर्शित करता है।

विगत पांच वर्षों में 'शुद्ध विनियोजित पूंजी' तथा 'अंशधारियों का धन' में क्रमशः 13.56%, तथा 14.61% की वार्षिक चक्रवृद्धि दर से वृद्धि हुयी है। 'ब्याज व कर से पहले के लाभ' तथा 'अंशधारियों को उपलब्ध लाभ' में क्रमशः 19.26% तथा 20.09% की वार्षिक चक्रवृद्धि दर से वृद्धि हुयी है।

2. एन.टी.पी.सी.लिमिटेड

प्रस्तुत 'तालिका–3' व 'तालिका–4' एन.टी.पी.सी लिमिटेड की क्रमशः 'शुद्ध विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय' व 'अंशधारियों के धन पर प्रत्याय' को प्रदर्शित करती है।

तालिका–3

नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन लिमिटेड

वर्ष	शुद्ध विनियोजित पूँजी (करोड़ रू0)	ब्याज व कर से पूर्व लाभ (करोड़ रू0)	विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय (प्रतिशत)
2005–06	65597	6981	10.64 %
2006–07	73738	10767	14.60 %
2007–08	81458	12053	14.80 %
2008–09	93563	11382	12.17 %
2009–10	101521	12694	12.50 %

संदर्भ– एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड के गत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदन[17]

तालिका–4

नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन लिमिटेड

वर्ष	अंशधारियों का धन (करोड़ रू0)	अंशधारियों को उपलब्ध शुद्ध लाभ (करोड़ रू0)	अंशधारियों के धन पर प्रत्याय (प्रतिशत)
2005–06	44959	5820	12.95 %
2006–07	48597	6865	14.13 %
2007–08	52639	7415	14.09 %
2008–09	57370	8201	14.29 %
2009–10	62437	8728	13.98 %

संदर्भ– एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड के गत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदन[18]

तालिका–3 में एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड की 'शुद्ध विनियोजित पूँजी' व 'ब्याज व कर से पूर्व लाभ' के आधार पर 'शुद्ध विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय' की गणना की गयी है जो वर्ष 2005–06 से लेकर वर्ष 2009–10 तक क्रमशः 10.64%, 14.60%, 14.80%, 12.17% तथा 12.50% है। विगत पांच वर्षों के अन्तर्गत विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय सतत रूप से 10% से ज्यादा ही रही है। इसके अतिरिक्त शुद्ध विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय वर्ष 2007–08 तक बढ़ रही है परंतु इसके उपरान्त यह घटकर 12.17% हो जाती है व पुनः वर्ष 2009–10 में यह बढ़कर 12.50% हो जाती है। 2007–08 के बाद शुद्ध विनियोजित पूँजी पर कम प्रत्याय वैश्विक मंदी का परिणाम है, परन्तु महत्वपूर्ण बिन्दु प्रत्याय का सतत रूप से 10% से ज्यादा रहना तथा वर्ष 2009–10 में पुनः वृद्धि की ओर अग्रसर होना है।

तालिका–4 में एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड के 'अंशधारियों का धन' व 'अंशधारियों को उपलब्ध शुद्ध लाभ' के आधार पर 'अंशधारियों के धन पर प्रत्याय' की गणना की गयी है जो वर्ष 2005–06 से लेकर वर्ष 2009–10 तक क्रमशः 12.95%, 14.13%, 14.09%, 14.29%, व 13.98% है। विगत पांच वर्षों में यह प्रत्याय दर लगभग 14% के आस–पास ही केन्द्रित रही है। वर्ष 2007–08 में तथा वर्ष 2009–10 में इस दर में मामूली सी कमी भी प्रदर्शित हो रही है। सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु विगत पांच वर्षों में प्रत्याय का 12% से ज्यादा रहना है।

विगत पांच वर्षों में 'शुद्ध विनियोजित पूंजी' तथा 'अंशधारियों का धन' में क्रमशः 11.54% तथा 8.56% की वार्षिक चक्रवृद्धि दर से वृद्धि हुयी है। उसी प्रकार 'ब्याज व कर से पहले के लाभ' तथा 'अंशधारियों को उपलब्ध लाभ' में क्रमशः 16.12% तथा 10.66% की वार्षिक चक्रवृद्धि दर से वृद्धि हुयी है।

निष्कर्ष

एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड की 'शुद्ध विनियोजित पूंजी की प्रत्याय दर' का निरंतर 10% से ज्यादा रहना तथा 'अंशधारियों के धन पर प्रत्याय' का लगभग 14% के पास ही केन्द्रित रहना इस केन्द्रीय सार्वजनिक कम्पनी की उच्च पूंजी उत्पादकता को सूचित करता है। इसके अतिरिक्त 'ब्याज व कर से पहले के लाभ' व 'अंशधारियों के लिये उपलब्ध शुद्ध लाभ' की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर का क्रमशः 16.12% तथा 10.66% होना एक सतत विकास को प्रतिबिम्बित करता है। इस सब प्रत्याय दरों तथा वृद्धि दरों को ध्यान में रखते हुये एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड को निश्चयात्मक रूप से एक उच्च पूंजी उत्पादकता वाली कम्पनी कहा जा सकता है।

आई0ओ0सी0 लिमिटेड की 'शुद्ध विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय दर' का सतत रूप से दो अंकों में रहना (वर्ष 2008–09 को छोड़कर) तथा वर्ष 2009–10 में पांच वर्षों के अधिकतम स्तर 15.66% तक पहुंचना एक महत्वपूर्ण तथ्य है। उसी प्रकार 'अंशधारियों के धन पर प्रत्याय' भी सतत रूप से (वर्ष 2008–09 को छोड़कर) 16% से ज्यादा ही रही है। वर्ष 2008–09 में 6.71% के न्यूनतम स्तर तक गिरकर पुनः 2009–10 में 20.22% तक पहुंचना अंशधारियों के लिये अत्यन्त शुभ संकेत है। 'ब्याज व कर से पहले के लाभ' व 'अंशधारियों को उपलब्ध शुद्ध लाभ' की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर का क्रमशः 19.26% तथा 20.09% होना इस कम्पनी के सतत विकास को प्रदर्शित करता है। इस सब प्रत्याय दरों तथा वृद्धि दरों को ध्यान में रखते हुये आई0ओ0सी0 लिमिटेड को निश्चयात्मक रूप से एक उच्च पूंजी उत्पादकता वाली कम्पनी कहा जा सकता है।

संदर्भ

1. 'सार्वजनिक उपक्रमों का विभाग' की अधिकृत वेबसाइट– dpe.nic.in
2. 'सार्वजनिक उपक्रमों का प्रतिवेदन वर्ष 2009–10'– सार्वजनिक उपक्रमों का विभाग, भारत सरकार।
3. 'प्रबंध हेतु वित्तीय विश्लेषण' लेखक–अरूण कुमार गर्ग, प्रकाशक–स्वाति प्रकाशन, बुलंदशहर।
4. 'व्यवसायिक सांख्यिकी' लेखक–अरूण कुमार व अभय कुमार मीतल, प्रकाशक–आनन्द पब्लिकेशन्स, नोएडा।
5. आई0ओ0सी0 लिमिटेड की अधिकृत वेबसाइट– iocl.com
6. आई0ओ0सी0 लिमिटेड के गत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदन।
7. एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड की अधिकृत वेबसाइट– ntpc.co.in
8. एन0टी0पी0सी0 लिमिटेड के गत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदन।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 92-96

बीच बहस में

क्रीड़ा व्यवस्थापन

✍ डॉ. सुनील कुमार
✍ अतुल शर्मा

व्यवस्थापन संकल्पना ये सभी छोटे बड़े संघटनाओं के लिये आवश्यक है। व्यवस्थापन या संचालन ये शब्द क्रीड़ा संघटना, क्रीड़ा उद्योग तथा क्रीड़ा संबंधित क्रीड़ा मंडल में उपयोग में आता है। प्रभावी व्यवस्थापन ये सभी संघटनाओं के लिये आवश्यक रहता है। क्रीड़ा संचालन की जिम्मेदारी स्कूल या कॉलेज का प्राचार्य या क्रीड़ा शिक्षक की होती है।

आज के वर्तमान स्पर्धात्मक युग में खेल को फायदा करा देनेवाला क्षेत्र माना जाता है। खेल संचालन का आधार ये खेल के क्षेत्र से संबंधित होता है। हर एक प्रकार की सामूहिक क्रियाशीलता में ठीक प्रकार से संघटन का व्यवस्थापन या संचालन करना व सही प्रकार से मार्गदर्शन हमें अपनी मंजिल तक पहुँचाता है।

खेल संचालन या व्यवस्थापन के अंतर्गत सभी खेल सम्बन्धित कार्यक्रमों को संचालित करने के लिये तथा उनमें अनुशासन, नियंत्रण, रामन्वय, नियोजन करने की भूमिका स्पष्ट होती है।

संकल्पना

क्रीड़ा संचालन या व्यवस्थापन ये कला तथा एक सामाजिक शास्त्र है। क्रीड़ा व्यवस्थापन में खेल से संबंधित काम करने वाले संघटनाओं को व्यक्ति, उपकरण तथा खेल से संबंधित वातावरण निर्माण करके संस्था को अपने ध्येय उद्देश्य को आसानी से प्राप्त करने के लिये मदद करता है। परिभाषा :–

वेलफोस्ट के अनुसार –

"संचालन या व्यवस्थापन लोगों को सही शिक्षा पाने को अधिकार दिलाने में समर्थित होती है, जिससे की लोग अपने अध्यापकों से शिक्षा प्राप्त कर अपने क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त कर सके।"

मार्ट के अनुसार –

"संचालन मानवीय समूह का प्रभाव आगे की ओर बढ़े अपने लक्ष्य के ओर बढ़ना तथा दूसरे मानवीय समूह व अध्यापकों द्वारा निर्देशित निर्देशों को मानना है।"

डी सेनसल के अनुसार –

"ऐसा संघटन या विभाग जिसके अंतर्गत संचालन, नियंत्रण, संघटन, समन्वय, दिशादर्शन, मार्गदर्शन है तथा जिसमें मूलभूत सेवा का संबंध खेल या शारीरिक क्रिया से आता है उसे खेल व्यवस्थापन कहते हैं।"

कोलाड्रील 1914 – Chollodiral

खेल व्यवस्थापन या संचालन पाने जिसमें विभिन्न खेल साहित्य या साधनों का समन्वय होता है तथा औद्योगिक या तांत्रिक प्रक्रिया में वैयक्तिक या परिस्थिति के आधार पर क्रीड़ा उत्पादन को क्रीड़ा सेवाओं की आवश्यकता का परिस्थितिओं के आधार पर परिवर्तन करते हैं।

✍ डॉ0 बाबा सहब अम्बेडकर, महाविद्यालय, अमरावती (महाराष्ट्र)
✍ राजकीय महाविद्यालय, अकबरपुर, रमाबाई नगर

Purpose of sports management

क्रीड़ा व्यवस्थापन या संचालन का उद्देश्य –

संघटन का उद्देश्य साध्य करने के लिये सभी सहकारियों के मदद से योग्य दिशा की तरफ परिक्रमण करना ये क्रीड़ा संचालन का उद्देश्य है।

Scope of sports management

क्रीड़ा संचालन का क्षेत्र –

1. Personal – नौकर, कर्मचारी, संस्था
2. Programme – कार्यक्रम
3. Facility – सुविधा

Personal

संस्था समय – समय पर जिम्मेदारी तथा निर्णय लेने का काम करती हैं, जिसके अंतर्गत कर्मचारी की भर्ती, जिम्मेदारी का बंटवारा, विभाजन, शिक्षक या प्रशिक्षकों सेवा, इसके अलावा कर्मचारियों का कार्य का रेकार्ड तथा कर्मचारियों को व्यवसायिक कार्यक्रम में सहभाग लेने को प्रेरित करना कर्मचारियों की तनखा, पदोन्नति निश्चित करना, कर्मचारियों से चर्चा, संशोधन या अनुसंधान पुस्तक प्रकाशन में सहभाग लेना। विभिन्न विभाग के कर्मचारियों के अंतर्गत मध्यस्थ की भूमिका करके संघटन तथा कर्मचारी में सलोखा निर्माण करना तथा जिन कर्मचारियों की जिम्मेदारी प्रदर्शन अच्छा नहीं होगा उनको उनके बारे में सूचना देने तथा प्रशासकीय जिम्मेदारी से कर्मचारी को चेतावनी देना।

Programme : कार्यक्रम

सुचारू तथा नियोजित कार्यक्रम से किसी भी संघटना की सफलता की परिपूर्ण चाबी होती है। क्रीड़ा संचालन या व्यवस्थापन करते समय निम्न कार्यक्रम निश्चित होना चाहिये। जैसे प्रशिक्षण का समय आवश्यकता के आधार पर अभ्यास क्रम का प्रबोधन वर्ग, रिफ्रेशर कोर्स, छात्रों के विभिन्न खेलों में सहभागी करने की प्रवृत्ति, संघटना की ख्याती तथा महत्व स्थिर रखने के लिये खेल के अलावा अन्य क्रिया में समन्वय, आय – व्यय पत्र की रूपरेखा तैयार करना, आय प्राप्त करने की योजना तथा खर्च पर नियंत्रण आदि खातों के बारे में कार्यक्रम निश्चित करना।

Facility :- सुविधा

वर्तमान स्थिति में संस्था का इन्फ्रास्ट्राक्चर पूर्ण करना जिसके अंतर्गत विभिन्न खेलों के मैदान, उपलब्ध साहित्य, कोचिंग ट्रेनिंग के वर्ग, साहित्य उपकरण, साहित्य खरेदी करने की योजना इमारत की सुरक्षा, दृश्य–श्रृव्य साधनों की सुविधा। Basic Skills of Sport Management – क्रीडा संचालन के मूलभूत कौशल्य

1. Communication – संदेश वहन
2. Decision Making – निर्णय लेना

संदेश वहन –

खेल संचालन या व्यवस्थापन में क्रीड़ा शिक्षक, प्राचार्य या विभाग प्रमुख को या स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यापीठ विभाग के प्रमुखों को संदेश वहन तथा निर्णय क्षमता का कौशल्य होना अत्यंत आवश्यक है।

Communication – संदेश वहन

खेल संचालन या व्यवस्थापन के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा या खेल के कार्यक्रमों को या योजना को सही दृष्टि से चलाने के लिए संदेश वहन की आवश्यकता होती है। उत्कृष्ट संदेशवहन कर्मचारी तथा संस्था को नजदीक लाने को काम करता है। शारीरिक शिक्षा या खेल के क्षेत्र में कोई भी कार्यक्रम योग्य संदेश वहन के बिना सफल नहीं होता है। उत्कृष्ट संदेश वहन से संघटना उद्वीष्ट को प्राप्त करने के लिये तैयार रहती है।

संदेश वहन ये प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप में अमल में लाने मे शारीरिक शिक्षा शिक्षक, कोंच, या जो व्यक्ति संघटन में कार्यरत है उनके लिए अच्छे व्यवस्थापन या संचालन के लिये आवश्यक है। खेल व्यवस्थापन या संचालन के प्रशासन प्रक्रिया में संदेशवहन से ज्यादा महत्व की कोई दूसरी प्रक्रिया नहीं है। संदेश वहन से संघटनाओं के लिये आवश्यक उद्देश्य ध्येय, योजना धारण कार्यक्रम तैयार करने में सफलता मिलती है। खेल में संदेश वहन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि जो व्यक्ति खेल या शारीरिक प्रक्रिया में सहभागी होते हैं उन्हें शारीरिक प्रक्रिया या खेल क्यों आवश्यक है इसके बारे में शारीरिक शिक्षक सिर्फ मौखिक रूप से सहभाग लेने के लिये प्रवृत्त करता है। संदेश वहन योग्यन होने के कारण सफलता मुश्किल होती है। प्रभावी संदेश वहन से एक मुल (Bridge) के तरह रहता है, जो व्यवस्थापन मंडल तथा कर्मचारियों के बीच की दूरी कम करता है। निर्णय लेना – संदेश वहन –

खेल संचालन या व्यवस्थापन में क्रीड़ा शिक्षक, प्राचार्य या विभाग प्रमुख को या स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय विभाग के प्रमुखों को संदेश वहन तथा निर्णय क्षमता का कौशल्य होना अत्यंत आवश्यक है।

Communication – संदेश वहन –

खेल संचालन या व्यवस्थापन के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा या खेल के कार्यक्रमों को या योजना को सही दृष्टि से चलाने के लिये संदेश वहन की आवश्यकता होती है। उत्कृष्ट संदेशवहन कर्मचारी तथा संस्था को नजदीक लाने का काम करता है। शारीरिक शिक्षा या खेल के क्षेत्र में कोई भी कार्यक्रम योग्य संदेश वहन के बिना सफल नहीं होता है। उत्कृष्ट संदेश वहन से संघटना उद्वीष्ट को प्राप्त करने के लिये तैयार रहती है।

Decision Making – निर्णय लेना

ये एक महत्वपूर्ण कार्य खेल व्यवस्थापन में या खेल संचालन में आता है। व्यवस्थापन को अर्थपूर्ण बनाने के लिय निर्णय लेने की प्रक्रिया होनी चाहिये। संचालन या व्यवस्थापन के नियोजन नियंत्रण समन्वय मार्गदर्शन योग्य होने के लिये निर्णय प्रक्रिया आवश्यक है। विभिन्न पर्याय में जिसका चुनाव करना ये निर्णय से निश्चित किया जाता है।

खेल संचालन या व्यवस्थापन में निर्णय विशेषत :

1. विभिन्न पर्याय में सूचना करने के लिये
2. प्रक्रिया का चुनाव करने के लिये
3. बौद्धिक शक्ति विकसित करने के लिये
4. वर्तमान भविष्य में योजना बनाने के लिये
5. योग्य निर्णय की संकल्पना
6. व्यवस्थापन एक उपकरण

शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में निर्णय लेना यह एक महत्व का कार्य है। ये जिम्मेदारी शारीरिक शिक्षक, कोच, प्रशासक पूर्ण करता है। व्यवस्थापन में निर्णय याने निर्णय में व्यवस्थापन – "Management it is said it decision and a decision is management"

Function or process of sport Management

Planning - योजना –

योजना ये एक सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया या खेल संघटन या खेल व्यवस्थापन के लिये मूलभूत आवश्यकता है। कोई भी संघटन योजना के बिना अधूरा है, जैसे – "मंगलसूत्र के बिना शादीशुदा महिला" योजना के बाद ही सभी प्रक्रिया होती है। योजनाओं में ही सभी उद्द्दीष्ट, ध्येय, नई कल्पना समाविष्ट होती है। अच्छी योजना संघटना का वातावरण सुरक्षित और उत्साही रखता है।

Organization – संघटन –

इस प्रक्रिया में समाज के अंतर्गत जो व्यक्ति विशिष्ट उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये तैयार होते है। उनको सम्मिलित किया जाता है। खेल तथा शारीरिक शिक्षा में कार्य करने वाले व्यक्ति या संस्था जैसे – क्लब, प्रशिक्षण कॉलेज, खेल संघटन इनकी मदद खेल व्यवस्थापन में ली जाती है।

Staffing – (कर्मचारी समूह)

संघटना में जो व्यक्ति कर्मचारी के रूप में कार्यरत होते है उनको स्टाफ कहते है। खेल संचालन में कर्मचारियों की योजना विकसित करने हेतु उनमें पदोन्नति प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि में भेजा जाता है।

Direction – (नेतृत्व)

ये नेतृत्व गुण विकसित करने वाली प्रक्रिया है। प्रशासक ये प्रभावी नेतृत्व करता है। नेतृत्व के अंतर्गत संशोधन करना, प्रेरणा देना, इन बातों का महत्व दिया जाता है।

क्रीड़ा संचालन/व्यवस्थापन का महत्व

1. प्रभावी क्रीड़ा संचालन आर्थिक संतुलन करने में मदद करता है।
2. समय की बचत।
3. नेतृत्व विकसित होता है।
4. मानवीय तत्वों को मान्यता मिलती है।
5. आधुनिक खेल संचालन व्यवसाय को परिवर्तन करता है।
6. संचालन अपने प्रभाव से उन्नति की ओर बढ़ता है।
7. एक प्रमाणपूर्ण खेल संचालन उत्पादन योग्य काम उत्पन्न करता है।
8. खेल संचालन से परिस्थिति को समायोजित करने में सफलता मिलती है।
9. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर विकसित होता हैं।

संदर्भ सूची

1. Brar Rachhpal Singh & Rosy Joshi : "Physical Education Sports Management" (2007) Kalyani Publishers, New Delhi – 110 002

2. Chakraberty Samiran : "Sports Management (1998) sports Publication" WP-474, 1st Floor, Shiv Market, Shok Vihar, Delhi- 110052

3. Kamles M.L. : "Management concepts in Physical Education and Sports" (2000) Metropolitan Book company private Ltd. Netaji Subhasha Marg, New Delhi – 110 002

4. Roy Sudhanshu Shekhar : "Sports Management" (1985) Friends Publication Mukherjee Tower, Mukharjee Nagar, Community complex, Near Batra Cinema, New Delhi – 110 009

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 97-99

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

अपनी भाषा

✍ डॉ. नन्द किशोर प्रसाद

भाषा की चिन्ता हमेशा से खाते–पीते लोगों की चिन्ता रही है क्योंकि जनता भाषा व्यवहार व प्रयोग करती है जबकि किसी भी भाषा के चिन्तक उस भाषा के खेल से पेट पालने की परम्परा विकसित करते हैं। संस्कृत का सामूहिक उच्चारण से लोगों के अन्दर भय पैदा हुआ और इस तरह उन उच्चारण कर्त्ताओं को जनता भगवान तुल्य मान ली या कम से कम पंडित या विद्वान। मैं पाली ,प्राकृत, अपभ्रंश व हिन्दी की विकास परम्परा पर बात करना नहीं चाहता हूँ क्योंकि यह सब चिन्तक लोगों का काम है जो स्वयं में एक अवधारणात्मक पद भी है। मैं जनता की हैसियत से हिन्दी व कुछेक बोलियों पर बात करना चाहता हूँ। हिन्दी अस्मिता की चिन्ता एक बार फिर विद्वान चिन्तकों के पास खिसककर चली गई है जो भारतीय जनता के लिये बेहद खतरनाक है।

हिन्दी की विकास परम्परा पर बात करना उचित नहीं है लेकिन इतना सच है कि आज जिस खड़ी बोली हिन्दी की वकालत चिन्तक कर रहे हैं। वह एक सादा बोली व भाषा है। दिल्ली केन्द्रित यह बोली जब सत्ता की रखैल (राष्ट्रभाषा) और बाजार की रखैल (राष्ट्रभाषा) बनती है तो लोगों को संतोष होता है कि चलो अंग्रेजी एवं अंग्रेजों के मुकाबले कुछ तो जनता के पक्ष में हुआ। जनता की पक्षधरता खड़ी बोली के प्रति भावात्मक लगाव पैदा करती है और बिना किसी विवाद में पड़ते हुये इसे अन्य बोलियों से विकसित मानते हुये भारत की प्रमुख भाषा के रुप में मान लिया जाता है।

लेकिन आज जिस चिन्ता के साथ विद्वान जन हिन्दी के ऊपर आ रहे खतरों से सावधान रहने की बात कर रहे हैं। वह पुनः चिन्ता का विषय है। चिन्ता का पहला कारण हिन्दी के विद्वानों का हिन्दी के प्रति चिन्ता का है। चिन्ता का दूसरा कारण हिन्दी और हिन्दी के अन्तर्गत आने वाली अन्य बोलियों एवं हिन्दीतर भाषाओं का संवैधानिक स्वरुप प्राप्त होने से हिन्दी की संकुचन का है और तीसरी चिन्ता हिन्दी और चिन्तक एवं अन्य भाषायें एवं जनता की हैं। मित्रों एक हरियाणवीं बोली बोलने वाली माँ सफदाजंग में अपने तड़पते हुये बच्चे के दुख को अपनी भाषा में व्यक्त करती है तो शेष चीजे समझ में भले न आ पाया लेकिन 'करेजा दरक' जैसा शब्द अवश्य समझ में आ गया। यह दुख व महिला खड़ी बोली हिन्दी या अंग्रेजी में कहती तो वह प्रभाव नहीं पड़ती क्योंकि सबकी आंखे उसकी बातें सुनकर नम हो गई थी। इस घटना का जिक्र करने के पीछे क्षेत्रीय बोलियाँ एवं उसकी ताकत को रेखांकित करना था। विचार किया जाय कि जनता और उनकी भाषा हिन्दी होगी जबकि उन चिन्तकों का अपना पुत्र जनता को अलग होगा अर्थात एक अमेरिकन ब्रांड एक तरफ यही विद्वान चिन्तक एन.सी. ई. आर. ही जैसी संस्थाओं में बैठकर प्रादेशिक भाषाओं में भी पाठ्यक्रम तैयार करने की बात करते हैं ताकि कोई विद्यार्थी अगर वहाँ की अपनी भाषा में पढ़ना चाहे तो पढ़ सकता है। यह वास्तव में बहुत बेहतरीन पहल है। इसका स्वागत होना चाहिये लेकिन वही विद्वान चिन्तक क्षेत्रीय भाषाओं का अनुसूची में शामिल होने से हिन्दी गूंगी, बहरी व संकुचित होते नजर आने लगती है दलअसल, भाषा के प्रति यह एक तरह से छिछली अतिरिक्त भावुकता है जिसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। डॉ. अपूर्वानंद एन. सी.आर.टी. के उस बैठक 16 दिसम्बर 2009 में मौजूद थे। जिसमें क्षेत्रीय भाषाओं की चर्चायें चल रही थी। अपूर्वानंद ने खेद जताते हुये कहा था कि मेरे न चाहते हुये भी मेरा पुत्र डी.पी.एस में पढ़ता है। इस बात को सुनकर लगा कि अपूर्वानंद जी में सच बोलने की ताकत कितनी है लेकिन जब जनता की हैसियत से विचार किया तो लगा कि यह अतिरिक्त आधुनिक भावुकता है। जिसका कोई अर्थ नहीं है।

✍ सहायक प्रोफेसर दयाल सिंह, महाविद्यालय (सांध्य) लोधी रोड, नई दिल्ली–1100

यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार गरीबी, बेरोजगारी सम्बन्धों में विखराव व आज दलित विमर्श व स्त्री विमर्श जैसे मुद्दों को लेकर अपनी बात विद्वान चिंतक फेंकते हैं जबकि उन्हें इस बात का पता है कि 'छोट जात लतियाये बड़ जात बतियाये।'

दरअसल भाषा और बोली के प्रति विद्वानों की यह चिन्ता उनकी जातिग्रत समीकरण के बिगड़ने के फलस्वरुप पैदा हुआ है। आज उन्हें लगने लगा है कि क्षेत्रीय सूचनाओं से पगा हुआ व्यक्ति जब एक बोली के साथ हिन्दी में कदम रखता है तो वह अन्य भगवा लंगोटधारी विद्वानों से बेहतर सोचता समझता है। ऐसे में हिन्दी क्षेत्र में अन्य क्षेत्रीय बोलियों की घुसपैठ उनकी चिंता का विषय बन रही है इसका ऐतिहासिक कारण है। प्रत्येक निर्मित चीज (तैयार माल) पर उनका हक शुरु से रहा है। हिन्दी में आज अपना स्वरुप अख्तियार कर लिया है। ऐसे में क्षेत्रीय भाषाओं का व अन्य भाषाओं का आठवीं अनुसूची में शामिल होने से उस भाषा के जानने वाले का प्रभाव बढ़ेगा। वह भाषा हिन्दी भाषा की बराबरी कर सकती है क्योंकि भाषा की ताकत आते ही तमाम पारंपरिक समीकरण टूटने लगेंगे और ज्ञान का नया समीकरण तैयार होने लगेगा। भाषा से पेट पालने वाले या भाषा को बेचकर खाने वालो (जैसा आय मीडिया कर रही है) के लिये बहुत बड़ी समस्या बन सकती है। जनसत्ता के खबर के मुताबिक हिन्दी की बोलियों को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने को हिन्दी के खिलाफ साजिश करार देते हुये हिन्दी के लेखकों, शिक्षकों व अन्य चिन्तकों ने इसके खिलाफ मोर्चा खोलने का ऐलान किया संस्था अपनी भाषा की ओर से हुई राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्ताव पारित किया। इस प्रतांत को पारित करने व शामिल होने वाले चिन्तक के कृष्णदत्त पालीवाल, प्रभू जोशी, कैलाश चन्द्र पंत, हिमांशु जोशी, चित्रा मृद्गल, श्री भगवान सिंह, अनन्तराम त्रिपाठी, प्रभाकर श्रोतिक, जीवन सिंह ठाकुर, बलदेव बंसी, डॉ. वेद प्रताप वैदिक, प्रो. चमनलाल, अजय तिवारी, मृदुला सिन्हा, कमल किशोर गोयनका, प्रेमपाल शर्मा, देवेन्द्र चौबे, परमानन्द पांचाल व विरेन्द्र कुमार इस लम्बी सूची में से प्रो. अजय तिवारी की यह चिन्ता कि बोलियों को भाषा बनाने से रोजगार व शिक्षा के केन्द्र सिमट जायेंगे अर्थात भोजपुरिया भैया मैथली भैया से लड़ेगें और इस तरह उनकी पहचान बिहारी या मगही हो जायेगी। उनकी दूसरी चिन्ता कि आप बाकी सवालों–गरीबी, विदेशी विश्वविद्यालयों की बाढ़, महंगाई पर आवाज न उठा सके। ऊपर के विचार रोजगार व शिक्षा केन्द्र एवं नीचे के विचार गरीबी व विदेशी विश्वविद्यालय इस बात का संकेत है कि शुरु से ही रोजगार और शिक्षा की गारन्टी तथाकठित सर्वर्णों की बपौती रही है, ऐसे में कुछ छोट–भाइयों (श्रमिक समाज) का इस तरह अतिक्रमण से आरक्षित सीटों को छिनने का डर पैदा हो जायेगा। विश्वविद्यालय से पढ़ने वाला अवर्ण वपौती विश्वविद्यालयों से लतियाये जाने पर विदेशी विश्वविद्यालयों मे जगह पाकर अपनी स्थिति मजबूत कर सकता है। ध्यान रहे यह भाषा व जाति से ही दोगलापन है कि संचार क्रान्ति में पूरी की पूरी क्रांति इन्हीं के हाथों में है। मित्रों ध्यान रहे ये वही चिन्तक हैं जो कार्यालयों में हिन्दी पखवाड़ा मनाते है और छोटी से छोटी सूचनायें अंग्रेजी में निकालते हैं। यह एक तरह का दोगलापन है जो अपने ही लोगों के साथ लड़ा जा रहा है, निकालना है तो अंग्रेजी निकाल दीजिये। हिन्दी अपने आप मजबूद हो जायेगी। यह सच है कि हर भुद्व चीज पर शुरु से ही विद्वान चिन्तकों का अधिकार रहा है। चाहे वह भाषा ही क्यों न हो। आज हिन्दी भाषा अपनी अन्तर्राष्ट्रीय छवि बना चुकी है। अवर्ण हिन्दी में ही हौसिये के लोगों पर काम करना शुरु कर दिये है, जाति के आधार पर जनगणना कराने का प्रश्न सामने आ गया है। किन्नरों को तीसरा दर्जा मिल रहा है। ऐसे मे इनकी हताशा को आसानी से समझा जा सकता है। डॉ. वैदिक ने अपने भाषण में कहा कि हिन्दी को संकट में डालना भारत को गूंगा बहरा बनाना है। यह एक साजिश है जिसमें राजनेता दोषी हैं। यह हिन्दी की सवर्णवादी व्याख्या है जबकि बोलियां अभी भी अवर्ण है। वैदिक जी की यह चिंता उनके कौम के लिये ठीक है क्योंकि राजनीति में पिछली जातियों, आदिवासियों, दलितों, म्लेच्छों, का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। वे क्षेत्रीय बोलियों (जैसे भोजपुरी, राजस्थानी, हिमाचली आदि को अनुसूची में शामिल करने की मांग कर रहे हैं और सत्ता भी इसे शामिल करने का संकेत दे रही है।

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

विद्वान चिन्तकों का मन–बोध अवर्णों के हस्तक्षेप से जातिगत एवं ज्ञान के समीकरण टूटने से बन रहा है। वपौती चीजे खत्म हो रही हैं और दुनिया ने नये ज्ञान की संरचना को प्राथमिकता देना शुरु कर दिया है। आम सवाल यह नहीं है कि भाषा 'अपनी भाषा' है या किसी गैर की बल्कि अपनी भाषा (हिन्दी) के साथ और कितनी बोलियां आकर भारतीय इतिहास को मजबूत बना सकती हैं। छोटी–छोटी भाषाओं का मरना चिन्ता का विषय होना चाहिये न कि ताकतवर को और शक्ति देकर शेष को खत्म करने का मुहिम छेड़ना चाहिये।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 100-105

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी स्वरूप के कारण पारिवारिक विघटन

(कंकाल, सन्यासी उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में)

✍ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

पारिवारिक विघटन में यथार्थवादी उपन्यासों एवम् मार्क्सवादी उपन्यासों के कारण सम्बन्धों में ठकराव तो पैदा होता ही है इसके साथ ही उन उपन्यासों का भी नाम लिया जा सकता है जो व्यक्तिसत्ता को सर्वोपरि मानकर व्यक्ति के अन्तर बाह्य रूप का चित्रण होने के कारण यदि एक ओर मनोविश्लेषण प्रमुख था तो दूसरी ओर यौन भाव। नन्द दुलारे वाजपेई ने उन उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यास माना है जिनमें "व्यक्तिगत जीवन–घटना, व्यक्ति–चरित्र, व्यक्तिगत जीवन–दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान या व्यक्तिगत जीवन–समस्या का निरूपण या निर्देश सर्वोपरि रहता है।"[1]

पारिवारिक विघटन की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास साहित्य में व्यक्तिगत महत्ता का यह स्वर यों तो प्रसाद के 'कंकाल' और उससे भी पहले ब्रजनन्दन सहाय के 'सौंदर्योपासक' में सुनाई दिया था। किन्तु स्वातन्त्रयोत्तर काल में यह व्यक्तिवादिता एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में युगीन उपन्यास–साहित्य का प्रमुख रचनाधार बन गयी।

व्यक्तिवादी साहित्यकार व्यक्ति के बाह्य वातावरण की अपेक्षा उसके अन्तर्लोक को अधिक महत्व देता है और उस अन्तर्लोक को उद्घाटित करने हेतु वह मनोविश्लेषण की प्रक्रिया अपनाता है। विघटन की इस अन्तर प्रक्रिया में कथाकार प्रमुख पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचारों का सहारा लेता है। इस शास्त्र के प्रमुख आचार्यों – फ्रायड, एडलर और युंग के अनुसार मनुष्य यौनेच्छाओं, हीन भावनाओं और जीवनेच्छाओं का पुंज है। उसका समस्त बाह्य जीवन और संसार उसके मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अवचेतन और जिनमें अवचेतन सर्वाधिक महत्वपूर्ण और नियंत्रक है, के अनुसार बनता बिगड़ता तथा संचालित होता है। उस अवचेतन का अंकन करते हुए मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अलावा मनोविश्लेषण की पद्धति को भी अपनाना पड़ता है वहीं उसकी यौनेच्छाओं, हीनता की भावनाओं और जीवनेच्छाओं के अनुरूप ही सम्पूर्ण जीवन की गति स्थिति को समझना होता है।

व्यक्तिवादी कथाकारों में जैनेन्द्र प्रसाद, इलाचंद जोशी, अज्ञेय, डॉ0 देवराज तथा मणि मधुकर प्रमुख हैं। व्यक्तिवादी चेतना के अनुसार देखा जा सकता है कि इस धारा के "औपन्यासिकों ने व्यक्ति को न केवल समाज से बल्कि उससे ऊपर भी स्वीकार किया है अपितु उसे समाज से अधिक वास्तविक, स्वतन्त्र निर्णायक और उत्तरदायी तथा अंतिम लक्ष्य के रूप में माना है।"[2] जयशंकर प्रसाद ने कंकाल में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभारा है।

व्यक्तिवादी उपन्यासकार इलाचंद जोशी भी हैं लेकिन उनके व्यक्तिवाद में समाज का भी समावेश है। उनका व्यक्ति और उनकी समस्याएं समाज और उसके विविध चक्रों के बीज मूल प्रतीक और सिद्धान्त आधारित हैं। इसलिए जोशी जी व्यक्ति के अंतरंग और बहिरंग के लिए तथा दोनों के समन्वय में व्यक्ति की पूर्णता स्वीकार करते हैं। 'सन्यासी' में इस अहं भाव को देखा जा सकता है।

मणिमधुकर का 'सफेद मेमने' भी शुद्ध वैयक्तिक उपन्यास है जिसमें सभी पात्र रेत की उष्णता में मन के द्वैध में टूटते बिखरते रहते हैं।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) 285001 उ. प्र.

कंकाल

जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित उपन्यास कंकाल (1929) की मुख्य कथा किशोरी श्री चन्द्र के दाम्पत्य जीवन की है पर इसके समानान्तर कई कथायें चलती रहती हैं। किशोरी और देव निरंजन बचपन के मित्र हैं। किशोरी की शादी हो गयी है परन्तु बच्चे नहीं पैदा हुए हैं इसी मन्नत के लिए वह देवनिरंजन के पास पुत्र की याचना हेतु पति श्री चंद्र के साथ जाती है। वे दोनों एक दूसरे को पहचान लेते हैं और संयम के खोने से दोनों के अवैध सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। किशोरी– देव निरंजन के अवैध सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप विजय का जन्म होता है। दूसरी ओर भारत संघ के संस्थापक मंगल देव पहले तारा से प्रेम करता है फिर विवाह का प्रलोभन देकर उसे गर्भवती बनाकर विवाह से कुछ ही मिनट पहले उसे विधि के भरोसे छोड़कर उससे दूर चला जाता है और गाला से विवाह कर लेता है क्योंकि मंगल उसे दुष्चरित्र माँ की संतान समझता है जबकि मंगल खुद अवैध संतान है।

लतिका बाथम भी आपस में प्रेम विवाह करते हैं, परन्तु बाथम का चरित्र अच्छा न होने के कारण लतिका से अनबन रहती है। दूसरी ओर चाची की लड़की घण्टी का चरित्र उच्श्रृंखल होने के साथ–साथ नाजायज संतान भी है। किशोरी श्रीचंद्र का तथाकथित पुत्र विजय के दुष्चरित्र होने के साथ–साथ घण्टी के साथ अवैध सम्बन्ध भी रखता है। और वह अपनी माँ को छोड़कर चला जाता है किशोरी का जीवन एक संतप्त माँ का जीवन रह जाता है। वह पति से विलग एक महाधिपति की रखैल बन कर आन्तरिक दुःख में दुःखित जीवन व्यतीत करती है परन्तु अन्त में किशोरी तथा श्री चंद का समझौता हो जाता है, परन्तु पुत्र विजय तथा यमुना (तारा) का पवित्र जीवन टूट जाता है और उनका कंकालिक रूप समाज के सामने उपस्थित होता है।

'कंकाल' का विशेष महत्व उसकी साहित्यिक उपलब्धि में नहीं, वरन् एक नयी शुरूआत में है। कंकाल (प्रसाद) और उनके काल की कृतियों के बीच यथार्थ का एक नया आयाम लेकर उभरता है। यह शुद्ध यथार्थवादी कृति है, इसमें आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बिना किसी महत्ता या आदर्श के आरोपण के समाज की विषमता को विभाजित एवं विघटित करने वाले तत्वों को तटस्थ भाव से चित्रित किया गया है। यह सत्य है कि प्रसाद युगीन समाज सांस्कृतिक दृष्टि से इतना पतित था कि वहाँ सामाजिकता और आर्थिक समस्याएं गौण हो गयी थीं। परिवारों के विघटन एवं पतन में प्रसाद जी का विश्वास था कि धर्म हमारे समाज को पतित होने से बचा नहीं सका है और न ही उसने अपने भीतर पैदा होने वाली नित नूतन विसंगतियों से वर्णसंकरी समाज की रचना की है और समाज के विभाजन में बहुत कुछ धार्मिक अन्ध विश्वासों एवं इनके अत्याचारों का प्रभाव रहा है। धर्म के इसी मिथ्या बोध तथा आतंक ने समाज को बाध्य किया है कि वह भटकी, अपनी बहू–बेटियों को स्वीकार करने से इनकार करे, अविवाहित या विधवा स्त्रियों को माँ बनाकर परित्यक्त कर दें।

'कंकाल' का कथानक पूरे धार्मिक वातावरण के संड़ांध तथा लिजलिजापन इससे जुड़े मध्यवर्ग के स्वार्थ एवं परिवारों के टूटने–बिखरने की दास्तान कहता है। कंकाल को विघटित जीवन का ही कंकाल कह सकते हैं, क्योंकि इसमें सुगठित समाज तथा सुश्रृंखलित परिवार में सुखद दाम्पत्य के दर्शन नहीं होते। मुख्य कथा किशोरी श्री चन्द्र के दाम्पत्य जीवन की दरार की है। प्रत्येक पात्र किसी न किसी स्थान पर किसी न किसी रूप में स्त्री–पुरूष के सम्पर्क में आता है।

देव निरंजन धार्मिक हिपोक्रेट का प्रतिरूप है। उसका जीवन आरम्भ में धार्मिक निष्ठा और तपस्या से आरम्भ होता है, किन्तु किशोरी को देखते ही उसके मन में पाप उत्पन्न हो जाता हैं जिसे वह प्रेम का प्रतीक मानकर अपनी दार्शनिकता का मुलम्मा चढ़ाते हुए कहता है– "हाँ किशोरी मैं वही रंजन हूँ तुमको पाने के लिए ही जैसे आज तक तपस्या करता रहा, यह संचित तप तुम्हारे चरणों में निछावर है। सन्तान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझमें जो शक्ति है वह सब तुम्हारी है।"[3] यह जानते हुए भी कि

किशोरी किसी की पत्नी है और सामाजिक सम्बन्धों में बंधी हुई नारी है, देव निरंजन उसे पथ भ्रष्ट होने की प्रेरणा भी देता है और उसके पारिवारिक विघटन का कारण भी बनता है। जिस प्रकार मंगलदेव–तारा अनैतिक सम्बन्धों के कारण वर्णसंकरी संतान मोहन का जन्म हुआ, ठीक उसी प्रकार देवनिरंजन–किशोरी के पाप सम्बन्धों का परिणाम है विजय। मंगलदेव स्वयं भी सरला नाम की महिला की अवैध संतान है। इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते हैं– "इन अनेक पात्रों के प्रणय–सूत्र आपस में अत्यन्त उलझे हुए हैं। लोकोपवाद से डरे हुए ये पात्र दुर्बल हैं इसलिए ये अपने प्रेम सम्बन्धों में भी बहुत अस्पष्ट है। प्रणय सूत्र कई–कई गांठे मारता चलता रहता है और यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि किसका प्रेम किससे है और कब बदल जायेगा।"[4]

चूँकि कंकाल में किशोरी श्रीचंद के पारिवारिक जीवन के विघटन की मूलकथा है अतः उपन्यास के प्रारम्भ में इन दोनों के सम्बन्धों की झलक मिलती है। तत्पश्चात देव निरंजन के कारण श्री चंद्र किशोरी दाम्पत्य के विघटन और उसके पश्चात पुनर्गठन ने कंकाल में जान डाल दी है। आरम्भ में किशोरी श्री चंद्र के वार्तालाप में शाश्वत प्रेम एवं सुखी दाम्पत्य जीवन के दर्शन होते है। किशोरी श्री चंद्र पर पूर्ण अधिकार भावना से कहती है– "मैं पहले ही कहती थी कि तुम कुछ न कर सकोगे न तो स्वयं कहा और ना मुझे स्वयं प्रार्थना करने दी।" विरक्त होकर श्रीचन्द्र ने कहा– "तो तुमको किसने रोका था। तुम्हीं ने क्यों न सन्तान के लिए प्रार्थना की। कुछ बाधा तो दी न थी।"[5]

तत्पश्चात देवनिरंजन के विचलित होने पर तथा किशोरी को अपना पूर्व परिचय देने पर वे उसे पथभ्रष्ट होने पर विवश करने के पश्चात उपन्यास में नया मोड़ उपस्थित होता है। किशोरी सन्तान के लाभ में अन्धी थी। वह दुखी होकर भी तथा पति परायण होते हुए भी देवरंजन को समर्पित हो जाती है तथा उपन्यास में परिवारिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है– किशोरी की मनः स्थिति से स्पष्ट है– "अतीत की स्मृति, वर्तमान की कामनाएँ, किशोरी को भुलावा देने लगीं। माथे से पसीना बहने लगा। दुर्बल हृदया किशोरी को चक्कर आने लगा। उसने ब्रह्मचारी के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया।"[6]

किशोरी– देव निरंजन के अवैध सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप विजय का जन्म होता है, परन्तु विजय के दुश्चरित्र होने पर तथा उसके गृहत्याग के पश्चात किशोरी का जीवन एक संतप्त माँ का जीवन रह जाता है। इस बात को स्वयं देव निरंजन स्वीकार करता है कि वह उनके दाम्पत्य विघटन का कारण है। अपने पत्र में एक स्थान पर देव निरंजन लिखता है– "रूचि मानव प्रकृति, इतनी विचित्र है कि वैसा युग्म विरला होता है, मेरा विश्वास है कि वह कदापि सफल न होगा। स्वतन्त्र चुनाव, स्वयंबरा, यह सब सहायता नहीं दे सकते। इसका उपाय एकमात्र समझौता है। वही ब्याह है। तुम लोग उसे विफल बना ही रहे थे कि मैं बीच में कूद पड़ा।"[7] जहाँ देवनिरंजन के कारण किशोरी श्रीचन्द्र के पारिवारिक जीवन में विघटन होता है, उसी प्रकार 'चन्दा' नामक धनी व्यापारी विधवा के कारण श्रीचन्द्र किशोरी का पुनर्मिलन होता है। उपन्यास की यह घटना सिद्ध करती है कि दाम्पत्य–प्रेम एक शाश्वत धारा है। किसी विशेष परिस्थितिवश यदि इसमें विक्षेप आ भी जाता है तो समय एवं परिस्थिति के परिवर्तन द्वारा वह पुनः अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रवाहित होने लगती हैं। श्री चन्द्र किशोरी वार्तालाप से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है –

"तो हम लोग क्या इतनी दूर हैं कि मिलना असम्भव है ?"

'असम्भव तो नहीं है, नहीं तो मैं आता कैसे ?'

'अब स्त्री सुलभ ईर्ष्या किशोरी के हृदय में आने लगी। उसने कहा– आये होंगे किसी को घुमाने–फिराने–सुख बहार लेने।'

किशोरी के इस कथन में व्यंग्य से अधिक उलाहना था। न जाने क्यों श्रीचंद्र को इस व्यंग्य से संतोष हुआ, जैसे इच्छित वस्तु मिल गई हो, वह हंसकर बोला–"इतना तो तुम भी स्वीकार करोगी, कि यह कोई अपराध नहीं है। 'किशोरी ने देखा, समझौता हो सकता है, अधिक कहा–सुनी करके इसे गुरूतर नहीं बना देना चाहिए। उसने दीनता से कहा– तो अपराध क्षमा नहीं हो सकता।"[8]

इस प्रकार कंकाल में किशोरी– श्रीचंद्र के पारिवारिक सम्बन्धों में प्रेम की अजस्र धारा परिस्थिति की अनुकूलता पाकर पुनः प्रवाहित होने लगती है और वे साथ–साथ जीवन यापन करने लगते हैं। उनके परिवार का पुनर्गठन होता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विवाह एक सामाजिक संस्कार है। इसके द्वारा दम्पत्ति धर्म की वेदी पर एक दूसरे का वरण करते हैं। अतः पति–पत्नी का प्रेम भी शुद्ध सात्विक निरन्तर प्रवाहित रहने वाली वह मंदाकिनी है जिसमें युगल दम्पत्ति सारे जीवन स्नान करके सुगठित समाज का निर्माण करते हैं। इसके अभाव में मानव जीवन बिखर एवं टूट जाता है जैसे विजय अथवा यमुना का पवित्र जीवन टूट जाता है तथा उनके दाम्पत्य जीवन का कंकालिक स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

डॉ0 सुरेश सिन्हा के शब्दों में–"कंकाल में मूल रूप से स्त्री पुरूषों के सम्बन्धों पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से विचार किया गया है उसके अधिकांश पात्र जायज संतान है।"[9] डॉ0 सुषमा धवन के शब्दों में–"उपन्यास में सभी पात्र जायज हैं, जो समाज की दृष्टि से पतित हैं और व्यक्ति की दृष्टि से उच्श्रृंखल।"[10] कंकाल में जयशंकर प्रसाद ने भारतीय समाज तथा हिन्दू एवं ईसाई धर्म का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इस कृति के द्वारा वे सिद्ध करते हैं कि हिन्दू धर्म में आ गई दुर्बलताओं ने हमारे समाज को भीतर से खोखला कर दिया है तथा नर–नारी सम्बन्धों में विसंगतियाँ भरकर वर्णसंकरीय समाज की संरचना की है। धार्मिक विश्वासों के मिथ्याबोध और अन्य विश्वासों में बंधकर ही श्रीचंद किशोरी में विघटन उत्पन्न होने लगता है।

सन्यासी

'सन्यासी' इलाचन्द्र जोशी की अन्यतम कृति है। नन्दकिशोर दमित काम वासना का शिकार तथा अहंवादी व्यक्ति है। प्रारम्भ में वह शान्ति नामक युवती से प्रेम करता है। दोनों पति–पत्नी का व्यवहार कर इलाहाबाद में किराये का कमरा लेकर जीवन–यापन करते हैं। नन्द प्रसन्न है कि उसे नारी मिल गयी, जबकि शान्ति चिन्तित है क्योंकि स्वयं स्वीकार्य दाम्पत्य जीवन की आशंकाएँ उसके मन–मस्तिस्क को आलोड़ित करती हैं। बलदेव के आगमन से कथा में मोड़ आता है। शंकाशील नन्द बलदेव से शान्ति का अनैतिक सम्बन्ध जोड़ता है तथा उद्विग्न रहता है, तत्पश्चात शान्ति नन्दकिशोर के बड़े भाई के आग्रह पर नया निश्चय करती है। शान्ति का त्यागमय, तेजस्वी स्वरूप भी अभिमानी नन्द को नहीं बाँध पाता। वह नन्द के साथ आदर्श पत्नी बनकर जीवन यापन करना चाहती है, परन्तु उसका उच्च पवित्र सम्बन्ध नन्द की शंकाशील प्रवृत्ति का दमन नहीं करता वरन उसकी अधिकार भावना की वृद्धि करता है और यही अधिकार भावना शान्ति को घर छोड़ने पर विवश कर देती है।

नन्दकिशोर का दूसरा विवाह बंधन प्रो0 मिश्र की लड़की जयन्ती से स्थापित होता है, नन्द किशोर की अहंवादी, स्वार्थी तथा शंकालु प्रवृत्ति बनी रहती है। नन्द यहाँ भी जयन्ती का सम्बन्ध कैलाश से जोड़कर उसे त्रस्त करने लगता है। जयन्ती शान्ति के सदृश सहिष्णु स्त्री नहीं थी। वह नन्दकिशोर के साथ सुखी दाम्पत्य जीवन जीने का पूर्ण प्रयत्न करती है। परन्तु असफल रहती है वह नन्दकिशोर के चरित्र का विश्लेषण करते हुए कहती भी है कि उसने (नन्दकिशोर से वैवाहिक जीवन) सुख और शान्ति के लिए विवाह नहीं किया है वरन सामाजिक अधिकार और उसे कलुषित करने के लिए किया है। और वही दर्द जयन्ती को जलकर आत्मघात करने के लिए विवश करता है। वहीं शान्ति क्रान्त होकर एक

नया मार्ग खोज लेती है। नन्दकिशोर के कुछ समय पश्चात मिलने पर भी वह नन्द को पुनः स्वीकार नहीं करती, नन्दकिशोर निराश व हताश होकर सन्यासी बन जाता है।

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी साहित्य के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने प्रेमचन्दोत्तर काल में स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तन दर्शाये हैं। सन्यासी उपन्यास में प्रेमविवाह और दाम्पत्य सम्बन्धों पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया है। सन्यासी आत्मविश्लेषण से परिपूर्ण एक मनोवैज्ञानिक एवं क्रान्तिकारी उपन्यास है, परन्तु व्यक्ति समाज से दूर अपनी सत्ता नहीं रख सकता। समाज के फलक पर ही घटनाओं के जाल द्वारा पात्रों का चरित्र उद्घाटन होता है। शान्ति विवाहित न होते हुए भी परम्परागत दाम्पत्य भावना से ओत–प्रोत है। वह नन्द के साथ आदर्श पत्नी बनकर जीवन यापन करना चाहती है परन्तु उसका उच्च पवित्र सम्बन्ध नन्दकिशोर की शंकाशील प्रवृत्ति का दमन नहीं करता, वरन उसकी अधिकार भावना की वृद्धि करता है। अपनी इसी मानसिक स्थिति को नन्द किशोर इन शब्दों में व्यक्त करता है– "मैं अपने अज्ञान में यह महसूस कर रहा था कि मैं जिस तरह का निकम्मा असांसारिक और अनावश्यक आदमी हूँ, अंग्रेजी में जिसे कहते हैं– Heeless उस तरह के आदमी से कभी किसी भी प्रकार के बंधन से बंधे रहना (चाहे वह बन्धन कैसा भी पवित्र और स्वर्गीय क्यों न हो) सम्भव हो ही नहीं सकता।"[11]

तत्पश्चात नन्दकिशोर का जयन्ती से विवाह बंधन उसके दाम्पत्य जीवन का द्वितीय स्वरूप है। जयन्ती नन्द किशोर के चरित्र का विश्लेषण करके असफल पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन का परिचय देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहती है–"आपने वैवाहिक सुख और शान्ति के इरादे से मुझसे विवाह कभी नहीं किया, बल्कि अपने सामाजिक अधिकार के पूरे प्रयोग से मुझे कलुषित और दलित करके एक हिंसात्मक सुख प्राप्त करने का उद्देश्य आपका प्रारम्भ से ही रहा है। विवाह के पूर्व से ही आपके मन में, जान में या अनजान में मेरे चरित्र के प्रति सन्देह और साथ ही एक अस्वाभाविक ईर्ष्या का भाव घर किये था।"[12]

जयन्ती के शब्दों ने नन्द किशोर के मनस्तर की आन्तरिक ग्रन्थि खोल दी है। जिसके कारण वह दो नारियों से पत्नी के स्नेह सम्बन्ध स्थापित करता है और दोनों के साथ सुखी दाम्पत्य जीवनयापन करने में असमर्थ रहता है। जयन्ती नन्द द्वारा तिरस्कृत होकर आत्महत्या कर लेती है। शान्ति क्रान्त होकर नवीन मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। नन्दकिशोर के कुछ समय पश्चात मिलने पर भी वह नन्द को पुनः स्वीकार नहीं करती, नन्दकिशोर निराश व हताश होकर सन्यासी बन जाता है। इस प्रकार 'सन्यासी' शुद्ध दाम्पत्य परक उपन्यास न होकर दाम्पत्य सम्बन्धी जीवन के बदलते स्वरूपों का परिचय देने वाला तथा पारिवारिक विघटन की संघर्षमयी स्थिति का परिचायक अन्यतम उपन्यास है।'

नन्दकिशोर का अहं इतना भारी पड़ता है कि उसे किसी भी स्त्री के प्रति पूर्ण लगाव नहीं महसूस होता, और उनमें विकृतियों का ताना बाना बुनता रहता है, साथ अपनी प्रथम प्रेमिका शान्ति से होने वाली सन्तान को भी नहीं प्राप्त कर पाता है। पारिवारिक विघटन का दंश नयी पीढ़ी को भी भोगना पड़ता है। डॉ0 रामदरश मिश्र के अनुसार–"सन्यासी का नन्द किशोर एक प्रचण्ड अहंकारी व्यक्ति है जो अपने अहंकार की तृप्ति के लिए कई स्त्रियों का जीवन नष्ट करता है, न उन्हें शान्ति दे पाता है और न खुद पाता है। अन्त में वह अपने को एक सामाजिक अर्थ से जोड़ना चाहता है अर्थात सन्यासी होकर नेता बन जाता है और जेल चला जाता है।"[13]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नया साहित्य नये प्रश्न–नन्द दुलारे वाजपेई, पृ0 84
2. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वालुम 12, 1953, पृ0 256
3. कंकाल, पृ0 17
4. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 67
5. कंकाल, पृ0 12
6. कंकाल, पृ0 21
7. कंकाल, पृ0 267
8. कंकाल, पृ0 159
9. हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास–डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 323
10. हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुषमा धवन, पृ0 92
11. सन्यासी, पृ0 355
12. सन्यासी, पृ0 423
13. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 105

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 106-109

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता और फणीश्वर नाथ रेणु का योगदान

✍ डॉ. अमित शुक्ल

वह प्रदेश जिसकी बोली, भाषा, संस्कृति, उत्सव, विवाह, मांगलिक, कार्यो से सम्बन्धित लोकगीत, धर्म, किवदंतियाँ एवं समस्याएँ अर्थात संपूर्ण जीवन अपनी विशिष्टता रखता हो उसे अंचल कहा जाता है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में अंचल से अभिप्राय उस भूमिखण्ड देश अथवा किसी सीमा तक परिभाषित भाग से है जो कुछ प्राकृतिक आकारों जलवायु संबंधी दशाओं विशेष जीवन या वनस्पति आदि के कारण विभिन्नता रखता है। पण्डित राजनाथ पाण्डेय जी का यह कथन सत्य है कि भूमि भाग की मिट्टी की खास महक उसमें पनपने वाली वनस्पतियों, पत्तों व फूलों में एक विशेष गन्ध तथा उसी के अनुरूप वहाँ के समस्त जीवों तथा मानवों में एक भिन्न मनः स्थिति जो अन्य भू–भागों की इन विशेषताओं से भिन्न विशिष्टता रखती है, वह आंचलिकता है यह गंध वहाँ के निवासियों की भाषा, आचार–विचार तथा मानसिकता में प्रतिबिम्बित होती है। कहा जा सकता है कि अंकित उपन्यासों में प्रदेश या अंचल विशेष के ग्रामीण वातावरण, लोक संस्कृति का चित्रण, जनजीवन का समग्र चित्रण जैसे भाषा बोली, खान–पान, वेशभूषा आदि समाहित हों इस प्रकार अंचल विशेष की संपूर्ण गतिविधियों का उपन्यास साहित्य में आ जाना ही आंचलिकता है। डॉ. शशिभूषण सिंहल जी का यह मानना है कि आंचलिक उपन्यास समाज के क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत करता है। सामाजिक उपन्यास में देश के सामान्य सांस्कृतिक जीवन की झांकी मिलती है। किन्तु आंचलिक उपन्यास प्रमुख सांस्कृतिक धारा में स्थित द्वीप सरीखे स्थिर प्रायः स्वतः पूर्ण अंचलों की लोक–संस्कृति को अपना कथ्य बनाते हैं। इस प्रकार आंचलिकता सीमित क्षेत्र, अज्ञात एवं अपरिचित जन जीवन के समग्र सांस्कृतिक लोक जीवन का भौगोलिक परिवेश सहित उनकी विशिष्ट भाषा बोली द्वारा प्रस्तुत वस्तोन्मुखी चित्रण है। अतः सीमित क्षेत्र, असाधारण चित्रण एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण ही आंचलिकता की विशिष्टता है। इसमें जीवन विवरण के साथ–साथ जीवन संदेश भी है जो सीमित क्षेत्र के न रहकर समस्त देश के हो जाते हैं, क्योंकि खण्ड–खण्ड से अखण्डता का निर्माण होता है। जब उपन्यासकार छोटे–छोटे अपरिचित भूखण्डों में बसे हुए जनजीवन से परिचय करवाता है। इसी से राष्ट्र की अखण्डता का निर्माण होता है।

आंचलिक उपन्यासों में आंचलिकता का रंग भरने में जिस महान साहित्यकार का योगदान हम सबके समक्ष है वो फणीश्वर नाथ जी हैं। निःसन्देह आंचलिक उपन्यास क्षेत्र का सर्वाधिक चर्चित उपन्यासकार रेणुजी को ही माना जा सकता है। रेणुजी ने केवल दो ही आंचलिक उपन्यास लिखकर ग्राम जीवन को साहित्य में नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। यह दृष्टिकोण मैथिलीशरण गुप्त का 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है' न होकर अनेकानेक समस्याओं से घिरी हंसती–रोती भारत की भूमि है। जिस पर अनेक दरिद्र लोग रहते हैं जो दो जून रोटी की चिन्ता में ही जी रहे हैं।

यूँ तो रेणु जी के पूर्व ही नागार्जुन के कुछ आंचलिक उपन्यास प्रकाश में आ चुके थे किन्तु उनकी प्रथन कृति 'मैला आंचल' से ही हिन्दी में क्षेत्र विशेष के उपन्यासों को आंचलिक उपन्यासों के नाम से अभिहित किया गया। मैला आंचल के प्रकाशन के साथ ही यह उद्घोषणा की गई कि यह है 'मैला आंचल' एक आंचलिक उपन्यास, कथानक भूमि है पूर्णिया जिले का एक गाँव, इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी। मैला आंचल आंचलिक उपन्यास की कसौटी पर खरा उतरता है। रेणु के आंचलिक उपन्यासों में गाँव एक चेतन सत्य के रूप में चित्रित हुआ है जिसमें हर परिवर्तन का स्पंदन देखा जा सकता है। वह कोई जड़ या निस्पंद तत्व नहीं।

✍ सहायक–प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

आज की दुनिया में हर परिवर्तन के प्रति वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। मैला आंचल के प्रकाशन के पश्चात् ही रेणु को साधुवाद देते हुए अनेक आलोचकों ने उन्हें हिन्दी का 'टामस हार्डी' कहकर अभिनंदित किया था। किन्तु यह कहना समीचीन नहीं होगा कि दोनों उपन्यासकारों की जीवन दृष्टि ही उनके उपन्यासों में एक स्पष्ट विभाजन रेखा खींच देती है। टामस हार्डी के उपन्यास नियतिवाद और भाग्यवाद से बोझिल हैं उनके उपन्यासों के पात्र नियति की कठपुतली से प्रतीत होते हैं तो रेणु के उपन्यास आशावाद का, कर्मवाद का संदेश देते हैं। उनका हर पात्र एक अद्भुत कर्मेच्छा और जिजीविषा लिए हुए है। टामस हार्डी के हैन्चार्ड और सुसान से तथा रेणु के डाक्टर प्रशान्त और कमला, ममता और जीतेन बाबू में बहुत भिन्नता है। रेणु ही नहीं हिन्दी के सभी आंचलिक उपन्यास इसी जीवनेच्छा को लेकर चले हैं। यह बात अलग है कि रेणु के उपन्यासों में लोक भाषा, लोक गीत, लोक नृत्य और धवल हास्य के निश्छल प्रवाह से एक मधुर और रोचक वातावरण की सृष्टि हुई है जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

हिन्दी आंचलिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'मैला आंचल

हिन्दी आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में मैला आंचल सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है। साहित्यकार की सफलता इसी में है कि वह संवेदना को सार्वभौम और सार्वजनीन बना दे। इस दृष्टि से रेणु जी एक निष्णात उपन्यासकार हैं। 1954 में प्रकाशित उनके प्रथम आंचलिक उपन्यास मैला आंचल में पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव के जीवन को चित्रित किया गया है लेकिन यह मेरीगंज सिर्फ पूर्णिया का नहीं है, वह हरियाणा में भी हो सकता है, महाराष्ट्र में भी। उत्तरप्रदेश में भी हो सकता है और तमिनाडु में भी। यह लेखक की वर्णन शैली की सशक्तता ही है कि मेरीगंज पूरे भारत के गाँवों का प्रतीक बन जाता है। जमींदारों का शोषण, आर्थिक वैषम्य, पुराने नये मूल्यों की टकराहट और असमानता, जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि की समस्या राजनीति, धर्म तथा समाज सबके निर्माण और विध्वंस की टकराहट इस उपन्यास में मेरीगंज के माध्यम से इतने विशाल चित्रफलक पर अभिव्यक्त हुए हैं कि वह एक काल विशेष का सजीव एवं प्रभावशाली चित्र उपस्थित करने में सफल हो जाता है। मैला आंचल फोटोग्राफिक शैली में लिखा गया है जिसके चित्रों की गति इतनी तीव्र है कि कुछ दृश्य तो यथेष्ट प्रभाव भी नहीं छोड़ पाते। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं के साथ व्यक्ति चित्रण पर भी रेणु जी की दृष्टि रमी है, किन्तु पात्रों की अधिकता के कारण प्रमुख पात्रों को भी वे अधिक स्थान नहीं दे सके हैं। डाक्टर प्रशांत, कमला, ममता, बावनदास, बालदेव, कालीचरण, लक्ष्मी, मंगलादेवी, तहसीलदार विश्वनाथ, फुलिया आदि कुछ ऐसे पात्र हैं जो याद रह जाते हैं। बावनदास उपन्यास में ऐंक गाँधीवादी पात्र के रूप में उभर कर आया है जो गांधी का अन्ध भक्त है, जिसे बार-बार अनुभव होता है कि भारत माता जार-बेजार रो रही है। वह गांधी के मार्ग का सच्चा अनुयायी है, वह सत्याग्रह भी करता है, अनशन भी करता है, भाषण भी देता है और गांधी नेहरू का निकटस्थ भी है। बावनदास को गांधी जी को छोड़कर और किसी पर विश्वास नहीं होता। आत्मा की शुद्धि का उसकी दृष्टि में बहुत महत्व है वह अपने मन में कलुषता आते ही उपवास करता है, प्रायश्चित करता है। गांधी के इस निस्वार्थ सेवक का अंत बड़ा मर्मान्तक होता है। 1948 में गांधी जी की मृत्यु के आघात से जब वह स्वयं ही मृत्यु को अंगीकार कर लेता है तो भारत की सीमा से उसे पाकिस्तान की सीमा में फेंक दिया जाता है और पाकिस्तानी सैनिक उसके शव को पाकिस्तान से बाहर नदी में फेंक देते हैं। बावनदास की मृत्यु मानो एक निस्वार्थ देश सेवक की मृत्यु है।

बालदेव भी गांधीवादी पात्र है जो हर बार 'हिंसा बात' से डरता है, वह गांधी की अहिंसा को कायरों की तरह अपनी रक्षा के लिए ओढ़े है। वह हर अन्याय को अहिंसा की आड़ में सह जाता है। प्राचीन अन्धविश्वासों और परम्पराओं से जकड़े हुए बालदेव ने कभी सत्य को लेकर लड़ाई नहीं की। गाँव में स्थिति मठ के संत सेवादास का जब निधन हो जाता है तो उनके स्थान पर स्वार्थी तत्व लरसिंघदास को मठाधीश बनाकर कोठारिन लक्ष्मी को मठ से निकाल देना चाहते हैं। एक आचार्य गुरु और एक अत्याचारी पतित नागा बाबा के भय के कारण रामदास और लक्ष्मी मठ से बहस्कृत कर दिए

जाते हैं कोई गाँव वाले आपत्ति नहीं करते। बालदेव भी लक्ष्मी के साथ न्याय नहीं करता और यह कहकर कि "कोठारिन जी, आचारज गुरू तो सभी मठ के नेता हैं। वे जो करेंगे, वही होगा। इसमें हम लोग क्या कर सकते हैं? बड़ा धरम संकट है। किसी के धरम में नाक घुसाना अच्छा नहीं।.......तीसरे पहर टीका होगा?हम आयेंगे।" इस कथन के बाद पाठक की सहानुभूति बालदेव के साथ समाप्त हो जाती है, जो आरम्भ में ही अत्याचार के आगे झुक गया वह देश का भला क्या करेगा? यही नहीं कम्युनिस्ट पार्टी का कालीचरण जब इस अत्याचार को रोकता है, अन्याय का मुकाबला करता है तथा नागा बाबा जैसे ढोंगियों को मारपीट कर भगा देता है, उसके अन्य सहयोगी भी उसका साथ देते हैं तब बालदेव को यह हिंसावाद लगता है और वह अनशन करने का विचार करता है। बालदेव के माध्यम से लेखक ने अनेक स्थान पर ढोंगी कांग्रेसियों की रोचक ढंग से कलई खोली है। बावनदास की झोली जिसमें महात्मा जी के पत्र रखे हुए हैं, वह गांगुली महोदय के पास नहीं पहुँचता है और झूठ बोल जाता है। लक्ष्मी जलकर सत्याग्रह करती है।

कालीचरण एक साम्यवादी पात्र है जो यह समझने लगा है कि ये पूँजीपति और जमींदार, खटमलों और मच्छरों की तरह सोसल है।......खटमल। इसीलिए बहुत से मारवाड़ियों के नाम के साथ 'मल' लगा हुआ है और जमींदार के बच्चे मिस्टर कहलाते हैं। मिस्टर...........मच्छर। लेखक स्वयं इस शोषण के विरूद्ध आवाज उठाता हुआ कहता है "दरार पड़ी दीवार। यह गिरेगी। इसे गिरने दो। यह समाज कब तक टिका रह सकेगा।" उपन्यास में कालीचरण को एक जागृत और अन्याय के विरूद्ध मर मिटने वाला नेता चित्रित किया गया है जो बावनदास और बालदेव की अपेक्षा कहीं अधिक सशक्त पात्र है। जहाँ तक राजनीतिक वाद की प्रतिष्ठापना का प्रश्न है रेणुजी कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों पार्टियों का यथातथ्य चित्रण करते हैं। कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की कमजोरियों की ओर भी उनका ध्यान गया है अतः कांग्रेसी नेता (गाँव के) पाठकों की उतनी सहानुभूति नहीं पा सके हैं जितनी अन्याय का प्रतिकार करने वाले समाजवादी कालीचरण और उनके साथी। अनेक स्थानों पर सत्याग्रह, अनशन का भी चित्रण हुआ है तथा तहसीलदार विश्वनाथ का ह्रदय परिवर्तन भी कराया गया। उपन्यास के अंत में डॉ. प्रशान्त के संदर्भ का यह कथन वेदान्त भौतिकवाद, सापेक्षवाद, मानवतावाद। हिंसा से जर्जर प्रकृति रो रही है। व्याघ के तीर से जख्मी हिरण--शावक-सी मानवता को पनाह कहाँ मिले?हा हा हा! अट्टहास। व्याघों के अट्टहास से आकाश हिल रहा है। छोटा सा नन्हा सा हिरण हांफ रहा है। छोटे फेफड़े की तेज धुक--धुकी। नीलोत्पल। नहीं, नहीं। यह अंधेरा नहीं रहेगा। मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूँजती है-पवित्र वाणी। उन्हें प्रकाश मिल गया है। तेजोमय। क्षत-विक्षत पृथ्वी के घाव पर शीतल चन्दन लेप रहा है। प्रेम और अहिंसा की साधना सफल हो चुकी है। फिर कैसा भय। विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है। उसको पराजित करना असम्भव है, प्रचण्ड शक्तिशाली बमों से भी नहीं। पागलों! आदमी आदमी है, गिनीपिंग नहीं। सबारि ऊपर मानसु सत्य। यही कथन अनेक आलोचकों को, प्रेम और अहिंसा शब्द के कारण तथा तहसीलदार का ह्रदय परिवर्तन भी, उपन्यास में गांधीवाद की स्थापना का भ्रम उत्पन्न करता है किन्तु यह कहना ही अधिक उचित होगा कि मैला आंचल में साम्यवादी राजनीतिक दर्शन और गाँधीवादी दर्शन के होते हुए भी लेखक का उद्देश्य मानवतावाद की स्थापना का ही रहा है।

निष्कर्ष यह है कि किसी क्षेत्र विशेष की भौगोलिक इकाई को आंचलिक परिक्षेत्र नहीं कहा जा सकता। उस क्षेत्र के लोक-जीवन, लोकधर्म, लोक संस्कृति, लोक साहित्य, लोककथा की संयुक्त परिकल्पना ही उसे आंचलिक रूप और आकार प्रदान करते हैं। इसमें वहाँ के पेड़ और पर्वत नदी, नाले, जंगल, जैविक किस्म की वनौषधियाँ भी आंचलिकता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। आंचलिक उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास को नवीन दिशा दी, यह दिशा प्रगतिशील जीवन दृष्टि का परिचायक है स्वतंत्रता के बाद समाज में नव जागृति आई सचेत उपन्यासकारों का ध्यान सबसे पहले

देश के उपेक्षित, तिरस्कृत विस्मृत, दूरवर्ती अंचल जातियों के जीवन की ओर गया। कुछ साहित्यकारों ने उपेक्षित भू–खण्डों को पहचान कर इनके जीवन स्पन्द की अनुभूति आंचलिक उपन्यासों में रेखांकित किया। प्रेमचन्द ने इस दिशा में कदम उठाया, किन्तु अंतर इतना रहा कि प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण बौद्धिक दृष्टि से किया, जबकि आंचलिक उपन्यासकारों ने ग्राम अंचल के जीवन का यथार्थ चित्रण कलात्मक दृष्टि से किया है। आंचलिक उपन्यासों का जन्म व्यक्तिवादी साहित्य में आने वाली जड़ता और स्थिरता की प्रतिक्रिया के कारण विद्रोही रूप में हुआ, फलस्वरूप लेखकीय दृष्टि व्यक्ति और उसके अंतर्मन के सूक्ष्म रहस्यों तक ही सीमित न रहकर गाँव के सरल, स्वच्छन्द, अपरिचित सभ्यता के दोषों से रहित, वहाँ के जन–जीवन व पिछड़ी जातियों की ओर गया। परिणामस्वरूप अद्भुत और विलक्षण जीवन प्रणालियों का उपन्यासकारों ने संधान कर नवीन उपलब्धियों के द्वार खोले। इस प्रकार आंचलिक उपन्यास यथार्थ की भूमि पर नई दृष्टि और संवेदना के वह गवाह हैं जिनसे प्राकृतिक सुखद वायु के झोंके आल्हादित और आनन्दित करते हैं। निश्चित ही यह कलाकृतियाँ साहित्यिक प्रवर्तन हैं जो एक नई दिशा में नई विधा की खोज हैं। हिन्दी आंचलिक उपन्यास साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु का नाम सर्वोपरि है, वे आंचलिक उपन्यास के पुरोधा हैं, निःसन्देह आंचलिक उपन्यास विधा के अंकुरण की जमीन देने वाले फणीश्वर नाथ रेणु को ही श्रेय दिया गया है, जब–जब हिन्दी उपन्यासों की चर्चा होगी तब–तब फणीश्वर नाथ रेणु के आंचलिक उपन्यासों को ही प्राथमिकता दी जायेगी। वर्तमान समय में आंचलिक उपन्यासों के लेखन का कार्य अल्प है अतः भविष्य के लिए आंचलिक उपन्यासों के लेखन कार्य में वृद्धि आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. नगीना जैन, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25
2. दैनिक भास्कर समाचार पत्र, जबलपुर, दिनांक 25 नवम्बर, 2009, पृ. 5
3. दैनिक जागरण समाचार पत्र, भोपाल, 26 अगस्त, 2007, पृ. 6
4. मैला आंचल, फणीश्वर नाथ रेणु, पृ. 30
5. परती परिकथा, फणीश्वर नाथ रेणु, पृ. 95
6. बघेलखण्ड के आंचलिक उपन्यासकार, डॉ. अमित शुक्ल, पृ. 99 Research Journal Arts, Management and Social Sciences Vol. 01, Year 01, Sep. 2009
7. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 110-113

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

हिन्दी कहानी : आधुनिकता का संकट और उसकी परिणतियाँ

✍ डॉ. अरविन्द कुमार अवस्थी

हिन्दी कहानी के विकास को एक अत्यन्त बुनियादी प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में परखा गया है। यह प्रश्न है आधुनिकता या आधुनिक सभ्यता का संकट। संकट, जिसकी विचारधारात्मक परिणति कहीं 'सभ्यता–समीक्षा' की संकल्पना के रूप में उभरती है, तो कहीं 'लघुमानव' की संकल्पना के रूप में। लहनासिंह, गुण्डा, मधूलिका, चम्पा, ममता, होरी या हल्कू जैसे त्यागी, बलिदानी, आदर्श और प्रेम पर जान और जीवन होम कर देने वाले हीरोइक चरित्र कहाँ चले गये? क्या आज के दौर में भी हीरोइज्म संभव है ?अथवा यह लघुमानवों का ही युग है ?क्या हमारी सभ्यता का 'हैमलेट' जन्म ले चुका है ?क्या आज का मनुष्य नपुंसक कर देने वाले संदेहों से उबर सकेगा ? या फिर हम भी साक्षी बनेंगे 'निष्क्रिय नायक' की उसी ट्रैजिक नियति के, जिसे 'हैमलेट' से लेकर 'अँधेरे में' तक हर आधुनिकता के उन्मेश में मनुष्य स्वतंत्रता का अभिशाप बन कर पाता आया है – गॉर्डेन ऑफ ईडेन के वर्जित फल को चख लेने का अभिशाप !

हिन्दी के अधिकांश आलोचक 'दुलाईवाली' को पहली मौलिक कहानी मानते हैं। स्व0 श्री देवीशंकर अवस्थी के अनुसार, " इस कहानी में तीन बातें बहुत ध्यान देने योग्य हैं –

(1) कहानी प्रतिदिन के जीवन की एक साधारण घटना के आधार पर लिखी गयी है।

(2) स्थानीय रंगत के चित्रण से यथार्थवादी वातावरण की सृष्टि की गयी है।

(3) घटनाओं में आकस्मिक संयोगों का सहारा लिया गया है।''

यह सही है कि बनारस के घाट और गलियों का दृश्य, मुहावरे, कहावतें, देसी स्त्रियों का भोजपुरी में वार्तालाप आदि स्थानीय रंगत के सहारे यथार्थवादी वातावरण खडा करते हैं, परन्तु क्या सचमुच कहानी प्रतिदिन के जीवन की एक साधारण घटना का रोचक वर्णन मात्र है ? अगर कथावाचिका ने लिख दिया कि वंशीधर और नवलकिशोर दोनो में गहरी मित्रता है और दोनो 'एक जान दो कालिब' हैं, तो क्या पाठक को भी आँख मूँद कर इसे दो मित्रों के महज क्रीड़ाविनोद की एक साधारण घटना मान लेना चाहिए ? दुर्भाग्य से आज भी इस कहानी को इसी थीम पर पढ़ा जा रहा है। आइए देखें कि इस कहानी में और क्या दिखाया जा रहा है ?

इक्के पर पत्नी जानकीदेई को बैठाते समय वंशीधर को झेंप लगती है कि पालकी गाड़ी नहीं है, लेकिन पालकीगाड़ी वाले के डेढ़ रूपया किराया माँगने पर वह कहता है–चलो इक्का ही सही, पहुँचने से काम। कुछ नवलकिशोर तो यहाँ से साथ हैं नहीं। इसी तरह नवलकिशोर के कट्टर स्वदेशी होने के कारण वह उसके सामने देशी धोती पहन कर दिखावा करना चाहता है जबकि विलायती धोती पहनने की आदत पड़ी होने के कारण वह देशी धोती घर पर ही भूल आया है। कहानी के भीतर ऐसे संकेत हैं जिनसे वंशीधर के क्रियाकलापों में नवलकिशोर से छिपाव और उसके सामने मैत्रीभावना का दिखावा करके उसे साबित करने की प्रवृत्ति झलकती है। इससे वंशीधर के निम्नमध्यवर्गीय चरित्र का भी संकेत मिलता है। तो क्या कथावाचिका वंशीधर की मित्रता पर चुटकी ले रही है ?नवलकिशोर के वंशीधर के साथ क्रीड़ाविनोद का क्या कारण है ?क्या उसे भी वंशीधर के चरित्र का अहसास है ?नवलकिशोर से अलग अन्य स्थलों पर वंशीधर का चरित्र क्या है ?जानकी को इक्के पर बैठाते समय उसे यह चिन्ता तो होती है कि उसे ऊँचे पर चढ़ना और पराये पुरूष के साथ बैठना पड़ेगा, लेकिन मिर्जापुर में ट्रेन रूकने

✍ सहायक प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महावि0, गोपेश्वर (चमोली)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

पर जब वह पूड़ी और मिठाई लेकर आता है तो 'निराले में बैठ आपने उन्हें ठिकाने पहुँचाया, पीछे से जानकी की सुध आई'।

वंशीधर का चरित्र परम्परागत किस्म का है। उसकी नवलकिशोर और जानकी दोनों से अन्तरंगता केवल लम्बे समय तक उनके निकट सम्पर्क में रह जाने का परिणाम है। निकट सम्पर्क भी सामाजिक ढाँचे के कारण ही है। सामाजिक ढाँचा एक पुरूष प्रधान परम्परागत समाज की सूचना देता है। जानकीदेई को विदा कराते समय वंशीधर का टोन देखिए – "मैं तुम्हारे भैया के पास जाता हूँ। तुम रो–रूला कर तैयार हो जाना।" स्त्री पात्रों में स्वतंत्र चेतना का अभाव है। वे पतियों की मित्रता के बारे में ही बातें करतीं, उसी की दुहाई देती, उनके क्रीड़ाविनोदों में आनन्द लेती हुई सहायक चरित्र के रूप में उभरती हैं।

वंशीधर और जानकी – दोनों ही चरित्र आत्मचेतन नहीं हैं। परिवार के भीतर मूर्खतापूर्ण आपसी भावुकता ही उनके सम्बन्ध का असली स्वरूप है। मायके से विदाई के दृश्य में कहानी लेखिका ने इसका संकेत जानकीदेई के वस्तुसंग्रह और विलाप में दिया है।

कहानी का समाज तो परम्परागत है, परन्तु उसका दृष्टिबिन्दु आधुनिक है। यह कहानी परम्परागत समाज के आधारहीन सम्बन्धों के बीच चलती रहने वाली भावुकता की लचड़ – पचड़ तथा ऊल – जुलूल क्रियाकलापों का एक नाटकीय मजाक है। कहानी – कला का सधाव इसी बात से पता चलता है कि आधुनिक दृष्टिबिन्दु का प्रभाव चरित्रों की परम्परागतता पर नहीं पड़ने पाया है। कथावाचिका, जोकि उस परम्परागत समाज की ही एक सदस्या है, पूरे इत्मीनान से वंशीधर और नवलकिशोर की मित्रता की ही 'रामकहानी' कहती है, फिर भी कहानी कुछ और कह जाती है !

दुलाईवाली के बरअक्स 'उसने कहा था' को रख कर देखने पर पता चलता है कि यह भावुक आस्फालन की ही कहानी है। जहाँ कई आलोचक इसकी कहानीकला की श्रेष्ठता पर मुग्ध होते रहे हैं, विवेकी सिंह ने आचार्य शुक्ल द्वारा इसमें भावुकता के उल्लेख को सही रेखांकित किया है।[2] कहानी को आगे बढ़ाने वाली दो मुख्य प्रेरक शक्तियाँ हैं – भावुकता और सस्पेंस। कहानी का प्रबन्ध कौशल तो अत्यन्त श्रेष्ठ है, परन्तु दृष्टि स्पष्ट न होने पर उन्नत से उन्नत शिल्प भी कला की रक्षा नहीं कर सकता। उन्नत प्रबन्ध कौशल का सबसे बड़ा प्रमाण लेखक ने समय के व्यापक अन्तराल को एक क्षण में समेट कर दिया है।[3] शब्द के सहारे स्मृति की कौंध में समय का अन्तराल चेतना के एक क्षण में बदल जाता है। पूर्वदर्शन प्रणाली तथा अननुरेखीय नैरेटिव इसके शिल्प की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इनका प्रयोग पूरी कहानी की संरचना में किया गया है और उसके अलग – अलग हिस्सों में भी। पूरी कहानी की संरचना के सम्बन्ध में मूल संकेत शब्द हैं – 'कुड़माई' और 'उसने कहा था'। 'कुड़माई' का सन्दर्भ कहानी के आरम्भ में अमृतसर के दृश्य में आता है, फिर लहनासिंह के सूबेदारनी से विदाई लेते समय और अन्त में लहनासिंह की मृत्यु के समय। 'उसने कहा था' का सन्दर्भ भी विदाई और मृत्यु के दृश्यों को एक कर देता है। कहानी की अवान्तर संरचना में भी इसका प्रयोग है। नकली लपटन साहब के प्रसंग में नीलगाय, खोते पर सवारी, मुसलमान खानसामों के मूर्ति पर जल चढ़ाने जैसी घटनाओं का उल्लेख लपटन साहब के आने के समय और फिर मृत्यु के समय करके पीछे की घटना के वास्तविक सन्दर्भ को बाद में उजागर किया गया है। इस प्रकार कहानी में कथानक की अवधारणा का काफी सचेत प्रयोग किया गया है। परन्तु शिल्प का यह आग्रह ही कहानी को अवास्तविक भी बनाता है। बचपन की एक छोटी सी मुलाकात के अनेक दशक बाद अचानक किसी से मिलने पर तो चेहरा पहचान पाना भी अस्वाभाविक ही लगेगा। फिल्म निर्देशक बिमल रॉय ने कहानी को फिल्माते समय इस कमी को दूर करने के लिये ही इसे साहचर्यगत ढंग से विकसित हुए प्रेम में बदल दिया है। परन्तु उससे कहानी सपाट हो गयी है। दरअसल, इससे शिल्प का चमत्कार हटा दिया जाये तो कहानी में भावुकता को छोड़कर और कुछ है भी नहीं।

कहानी का आरम्भ ही ऐसे भाषिक प्रयोग से होता है जिसमें स्थानीय बोली से कथावाचक की दूरी साफ झलकती है। पहले ही वाक्य से जहाँ और वहाँ के स्थान पर जब और तब जैसे गलत भाषायी प्रयोग भी मिलने शुरू हो जाते हैं। कहानी का दूसरा दृश्य युद्धक्षेत्र को उपस्थित करता है। खन्दकों के भीतर की इस जीवन – परिस्थिति के उद्घाटन के लिये संवाद शैली अपनाई गयी है, जिससे नैरेटिव का अनौचित्य उत्पन्न हुआ है। किसी स्थिति के या उसमें सब की सामान्य अनुभूति के उद्घाटन के लिये क्या तृतीय पुरूष का नैरेटिव अधिक उपयुक्त नहीं होता ?

इसी प्रकार लपटन साहब पर गोली चलाने से पहले लहनासिंह का प्रलाप अनावश्यक और अयथार्थपरक लगता है। लहनासिंह की जाँघ में जो गोली लगी, वह भी सावधान पाठक के दिल में कोई दर्द नहीं जगाती। विवेकीसिंह का यह कहना सही है कि उसे असली ज़ख्म गोलियों का नहीं, बल्कि प्रेम का लगा था।[4] डॉ0 आनन्द प्रकाश इसके पीछे लहनासिंह के वर्ग संस्कारों को देखते हैं।[5] लहनासिंह की आत्मनिषेधात्मक मरणेच्छा को प्रेम की टूटन मानें अथवा वर्गीय संस्कारों की अभिव्यक्ति, परन्तु मेरा सवाल यहाँ कुछ और है। आखिर ये सब बलिदानी नायक–नायिका आज कहाँ चले गये ?[6]

'पूस की रात' के किसान हल्कू को कर्ज चुका कर जमींदार से गला छुड़ाने की चिन्ता है। इसी कोशिश में वह बिना कम्बल के हार में जाता है – खेत ताकने। पूस की अँधेरी रात ऐसी है कि आकाश में तारे भी ठिठुरते से लगते हैं। इस रात के भीतर एक और भी लम्बी रात है – खेत मजदूर को कर्ज के कुचक्र में फँसाकर उसके शोषण की रात, जो आठ–आठ चिलम पीकर भी नहीं कटती ! वह और लम्बी होती जाती है। हल्कू इस शोषण को जानता है –' मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।' ; परन्तु उसका भोला विश्वास अपनी किसानी मरजाद के सहारे खेल की चालों से पार पाना चाहता है। मौन, पर खुला संघर्ष चलता रहता है। रात नहीं खत्म होती। ऐसी ही घोर अँधेरी रात की हाड़तोड़ ठण्ड से जानलेवा संघर्ष के एक क्षण में अचानक एक घटना घटती है। अलाव के दो क्षण के प्रकाश में वह रात के उस पार देख लेता है। वहाँ कुछ नहीं है, कोई भविष्य नहीं है – केवल एक नितान्त वर्तमान, जिस पर पहुँच कर मनुष्य सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है ! जब खेत उसका भविष्य ही नहीं हैं तो उन्हें जानवर चरें या जमींदार – क्या फर्क पड़ता है ?क्या यह बदलाव केवल जमींदार के प्रति है ?नहीं, बिल्कुल नहीं। जीवन में पहली बार वह पत्नी मुन्नी से भी झूठ बोलता है। मुन्नी की चिन्ताओं का ठीकरा वह अपने सिर पर नहीं लेना चाहता। अब रात और ठण्ड उसे नहीं सता पातीं। वह आलस्य का आनन्द लेता है और अकर्मण्यता का भी। कहानी के अंतिम संवाद में मुन्नी की दृष्टि भविष्य और उसकी चिन्ता पर टिकी है , जबकि हल्कू की दृष्टि नितान्त वर्तमान पर।

चाहे वह 'होरी' का हीरोइक संघर्ष हो या फिर 'हल्कू' का – वस्तुतः ये सब सामंती–किसानी सभ्यता की ही संक्रमणकालीन कृतियाँ हैं। कफन एकमात्र कहानी है जिसमें प्रेमचंद इसे पार कर गये हैं। यह कहानी इतिहास के पटल पर हीरोइज्म के अन्त और आधुनिक आत्मचेतनता के उन्मेश की प्रथम सूचना है। यह पूँजीवादी युग की पहली कहानी है।

'कफन' के घीसू और माधव को हल्कू की तरह जमींदार से गला छुड़ाने की चिन्ता नहीं है। वे जमींदार सहित पूरे गाँव को बेशर्मी से ऐंठना सीख चुके हैं। उनके जीवन में न तो कोई रात है, न कोई संघर्ष। कहानी के अन्दर रात भी है और अलाव भी। अलाव की आग का सम्बन्ध अँधेरे के साथ संघर्ष करने से नहीं ; आलू भूनकर खाने से है। रात जिसके भाग्य में पड़ी है, वह उसे झेल और भोग रही है। पुत्रवधू प्रसववेदना की छटपटाहट में बिना दवा–दारू के जिन्दगी और मौत से जूझ रही है। बाप और बेटा झोपड़ी के बाहर खुले आकाश के नीचे असम्पृक्त भाव से अलाव की गरमी में भुनी आलू पर लार टपका – टपका कर उसका स्वाद ले रहे हैं। क्लाइमेक्स आरंभ से ही सामने है, बाप–बेटे के चरित्र भी स्पष्ट हैं; फिर भी कहानी नाटकीय ढँग से आगे बढ़ती है – मौत– लाश– कफन की चिन्ता और फिर भोज !

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

जहाँ जीवन है, वहीं अंधकार और प्रकाश के पक्ष हो सकते हैं। घीसू और माधव तो हैं ही वे चरित्र, जो लाश और कफन के बीच खड़े हैं। यहाँ रात नहीं टिक सकती। जिनके पास घर की लाश को ठिकाने लगाने तक के लिये धेला नहीं है, उनका कोई क्या शोषण करेगा? वे न केवल नितान्त वर्तमान में जीते हैं, बल्कि हर तरह के नैतिक भ्रमजाल से भी मुक्त हैं। वे कफन के नाम पर सारे गाँव को तो ठगते ही हैं, जीवित और मृत बुधिया का उपयोग भी अपने भोजन और मौज के लिये ही करते हैं। और इससे भी बड़ी बात यह है कि उनमें कोई नैतिक या सामाजिक द्वन्द्व पैदा नहीं होता ! बुधिया के कारण और बुधिया से उन्हें जो कुछ मिला, उसके लिये वह उसे आत्मा से दुआ देते हैं लेकिन उसके प्रति न तो उनमें कोई भावनात्मक लगाव है, न ही कोई कर्तव्यबोध ! यह चरम मुक्ति की दशा है। न अपनी चिन्ता न दूसरे की, सम्पत्ति संचय से विरक्त, फाके मारने पड़ जाये तो भी गम नहीं, न किसी के जीने की फिक्र न मरने की परवाह, चोरी करके पेट भरें ,काम करके या कफन के पैसों से – कोई अपराध बोध नहीं सालता, मान–अपमान से असम्पृक्त, पाप–पुण्य से परे स्थितप्रज्ञ घीसू और माधव ! क्या वास्तविक दुनिया में ऐसे चरित्र भी संभव हैं ?

संदर्भ – सूची

1. स्व0 देवीशंकर अवस्थी (1992,सम्पा0),कहानी विविधा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 07.
2. विवेकी सिंह, 19 कहानियाँ. नंदकिशोर नवल (सम्पा0), कसौटी–15 समापन अंक, रेनबो पब्लि0,नोएडा : 233.
3. स्व0 देवीशंकर अवस्थी (1992,सम्पा0),कहानी विविधा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 50.
4. विवेकी सिंह, 19 कहानियाँ. नंदकिशोर नवल (सम्पा0), कसौटी–15 समापन अंक, रेनबो पब्लि0,नोएडा : 232.
5. डॉ0 आनन्दप्रकाश (1997), हिन्दी कहानी की विकास–प्रकिया , लोकभारती, इलाहाबाद, : 20–21.
6. स्व0 देवीशंकर अवस्थी (2002,सम्पा0), नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 158–159.
7. स्व0 विजयदेवनारायण साही, लेख 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस', छठवाँ दशक, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 114-118

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

उदयभानु हंस के काव्य में नैतिकता

✍ **डॉ. आशा वर्मा**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहते हुए परस्पर समाज के अन्य सदस्यों के साथ अन्तःक्रिया करता है। यही अन्तःक्रिया व्यक्ति, परिवार, समुदाय, समाज, राष्ट्र के चिन्तन विकास का निर्धारण करती है। इसके लिए आवश्यक है कि समस्त समाज के अंगभूत घटक एक ही दिशा में अनुशासित मन से कार्य करें। एक बड़े समूह का नियन्त्रित करने के लिए कुछ विशिष्ट नियम बन्धनों की आवश्यकता होती है। केवल कानून, दण्ड, भय, बल के द्वारा ही समाज को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। एक विस्तृत जनसमूह को नियन्त्रित करने के लिए विभिन्न जीवन मूल्यों और रीतियों की अनुपालना हेतु इस समूह को अभिप्रेरित किया जाता है। नैतिकता इन्हीं जीवन मूल्यों का एक घटक है। समाज को वास्तविक मानवीय सम्बन्धों का समरस संगठन बनाने के लिए व्यक्ति के आचार–व्यवहार के नियम अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि मनुष्य इनका परित्याग करके स्वेच्छाचारी हो जाए तो समाज देश की ढांचा ही अव्यवस्थित हो जाएगा। अतः हम कह सकते है कि जीवन के समुचित विकास और परिवर्धन हेतु नैतिकता का विशेष महत्व है।

साहित्य मनीषी उदयभानु हंस हरियाणा के प्रथम राज्य कवि तथा आधुनिक हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे साहित्य गगन के भानु तथा काव्य सरोवर के हंस हैं। हंस जी भी नैतिकता में ही समस्त विश्व के कल्याण के निहित होने का प्रतिपादन करते हैं –

नैतिकता में ही जगत का कल्याण छुपा,
आचरण की ही शुद्धि में निर्वाण छुपा,
और
संहार से निर्माण नहीं हो सकता,
मानवता का कल्याण नहीं हो सकता।
जब व्यक्ति का आचरण ही अनैतिक हो,
तो जाति का उत्थान नहीं हो सकता।[1]

हंस साहित्य नैतिकता का अजस्र स्रोत है। वे जहाँ 'संत–सिपाही' महाकाव्य में गुरुगोविन्द सिंह के माध्यम से नैतिक आचरण का उत्कर्ष प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं वहीं उनका प्रत्येक सहचर भी इसकी रक्षार्थ अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को उद्यत प्रतीत होता है। हंस जी की मान्यता है कि जब तक प्रत्येक देशवासी नैतिक आचरण का पालन नहीं करेगा तब तक स्वराज की स्थापना नहीं हो सकती। यदि हम व्यक्तिगत स्वार्थों के वशीभूत रहें तो देश में भ्रातत्व भाव की अपेक्षा वैमनस्य बढ़ेगा। हमें आन्तरिक और बाह्य युद्धों तथा संघर्षों का सामना करना पड़ेगा। इसके विपरीत हम अपने आचरणों में सुधार कर अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार सकते हैं। कवि के अनुसार –

दृढ़ अनुशासनबद्ध न होंगे, जब तक भारत के लोग।
नहीं कटेगा तन का बन्धन, नहीं मिटेगा मन का रोग।
अभी समय है सन्त सिपाही बनकर तू ले जन्म सुधार।
आत्मज्ञान की झाड़ू ले कातरता का कतवार बुहार।[2]

✍ एसोसिएट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, डी0 बी0 एस0(पी0 जी0) कॉलेज, गोविन्द नगर, कानपुर – 208006

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

सदाचार नैतिकता का स्तम्भ है। इसके बिना किसी भी व्यक्ति के नैतिक होने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। स्वयं हंस जी तो ऐसे व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकारी ही नहीं मानते –

जिस व्यक्ति के जीवन में सदाचार नहीं।
उस व्यक्ति को जीने का भी अधिकार नहीं।[3]

सदाचार ग्रहण करने नैतिकता के पथ पर चलने वाले व्यक्ति का चरित्र उच्चकोटि का होता है। साहित्यकार के अनुसार व्यक्ति की पहचान उसकी शारीरिक क्षमता, आर्थिक सम्पन्नता, बुद्धि कौशल की अपेक्षा चारित्रिक बल से की जानी चाहिए। यथा –

नर कितना बलवान हो, बुद्धिमान धनवान।
होती सदा चरित्र से, मानव की पहचान।।[4]

मानवीय भावना का परिपोषण हंस की सकल नैतिक भावना का केन्द्रीय तत्व है। उनके साहित्य में नैतिकता के सभी प्रमुख तत्व यथा प्रेम, परोपकार, दया, दान, आचार–विचार आदि सभी कुछ हमारी संस्कृति से से उर्जित या पल्लवित होकर मानव धर्म को पुष्ट करते हैं। वे स्वयं सभी विषमताओं का परिष्कार करके सकल चराचर में समरसता और भ्रातृत्व का संदेश देना चाहते हैं जैसे –

मैंने तो प्रत्येक मनुज को गले लगाना चाहा,
भ्रातृभाव का पाठ पढ़ाकर भेद मिटाना चाहा।
स्वयं हलाहल पीकर सबको अमृत पिलाना चाहा,
शक्ति मन्त्र दे निर्जीवों को अमर बनाना चाहा।[5]

साहित्यकार हंस की जीवन मूल्यों तथा नैतिकता में अटूट आस्था है और इनकी रक्षा तथा पुर्नस्थापना के लिए वे एक सजग प्रहरी के दायित्व का निर्वाह करते हैं। टूटते–झुलसते मानवीय मूल्यों को देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो उठता है यथा –

सारे जीवन मूल्य झुलसते आज स्वार्थ के दावानल में,
मानवता की लाश रखी है, आदर्शों के ताजमहल में।।[6]

स्वार्थरूपी कीट दंश ने सामाजिक आचरण और सम्बन्धों में दीमक लगा दी। पदलिप्सा और अर्थलोलुपता के चलते राष्ट्र रसातल की ओर अग्रसर है। चारों ओर अराजकता का साम्राज्य विस्तार पा रहा है। फिर भी हंस हृदय आशावादी है और वे प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्थान और आदर्श मूल्यों पर अडिग रहने का सन्देश देते हुए कहते हैं कि यह स्वार्थपरकता और अनैतिकता का अंधकार भले ही कितना गहन हो, कोई रश्मि ऋजु आकार इसका हनन अवश्य करेगी। कवि वर्तमान यथास्थिति का चित्रण निम्नानुसार करता है –

तस्करी अपहरण हत्या या डकैती,
आज के अखबार की ताजा खबर है।
न्याय का हर खेत रिश्वत गई चर है,
चोर थानेदार हो तो किसका डर है।
अपनी असफलताओं में हिम्मत न हारो,
रात में मिलती सदा दिन की खबर है।[7]

साहित्यकार हंस देश–समाज के सजग साहित्यधर्मी है। अपने सृजन माध्यम से तिरोहित होते नैतिक मूल्यों के प्रति, समाज और राष्ट्र में पुनः आस्था जाग्रत करना उनका प्रमुख ध्येय है। वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कवि गौरवशाली अतीत का पुनर्व्याखान करते हुए सुप्त समाज की संवेदनाओं को झकझोरता है –

कहाँ है मर्यादा की लक्ष्मण रेखा ?
गुरु वशिष्ठ का वह नीति सन्देश ?
छोटे बड़े का शिष्टाचार,
पुत्र का आज्ञा पालन,
पत्नी का अनुपम त्याग और
भाई–भाई का निर्मल प्यार ?
सोचो कुछ सोचो
नैतिकता के वे ऊँचे आदर्श,
कहाँ खो गए हैं ?
जन सेवा के वे शिव संकल्प
क्यों गहरी नींद सो गए हैं।[9]

हंस साहित्य में पौषित नैतिकता, दण्ड या भय के द्वारा बलात् आरोपित नहीं हैं। उनके अनुसार न तो व्यक्ति को किसी अन्य को डराना चाहिए और न ही स्वयं को भी मिथ्या, धन, बल, दम्भ के सामने डरना चाहिए। कोई भी व्यक्ति किसी अन्य का पालन–पोषणहार नहीं है। अतः किसी को भयभीत करना या होना ही अनैतिक है। अपने इस चिन्तन को उन्होंने अपने महाकाव्य में कथानायक गुरु गोविन्द सिंह के मुख से प्रकट किया है –

आपकी तो सीख है ,
यह, जाति के अभिमान
भय किसी को दे कभी मत,
न भय किसी का मान।[10]

वे शोषित, दलित, कुंठित मानवता को दानवता के चंगुल से आजाद करना चाहते हैं। वे अभावग्रस्त जनता में सुख समृद्धि का संचार करना चाहते हैं लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि युवा पीढ़ी परम्परा द्वारा स्थापित उच्च आदर्शों और नैतिक मूल्यों को अपने आचरण में ढाल लें। अपने उर में संजोए ऐसे ही स्वप्न का वर्णन करते हुए हंस जी कहते हैं कि –

निर्धन जिन पर बलवानों का जब अत्याचार नहीं होगा।
सतियाँ होंगी वीर नारियाँ, जब व्यभिचार नहीं होगा।
नवयुवक सभी जब लक्ष्मण का सुन्दर आदर्श निभाएंगे,
वे शुभ दिन फिर कब आएंगे।[11]

जब व्यक्ति उच्च आचरण को अपने जीवन में अंगीकृत कर लेगा तब व्यक्ति का तन–मन सब निर्मल हो जाएगा और प्रत्येक घर का आँगन सुख, शान्ति का सौरभ जग में बिखराएगा यथा –

निर्मल तन हो, निर्मल मन,
तन–मन का निर्मल जीवन हो।
सरस सुगन्धित सुमन सरीखा,
गाँव नगर हर घर आँगन हो।[12]

हंस जी के अनुसार, मनुष्य–मनुष्य के रूप, वर्ण–जाति, भाषा क्षेत्र की भिन्नता होने से मानवीय आचरण में कोई अन्तर नहीं आना चाहिए ; क्योंकि सभी मनुष्य समान हैं। वे स्वयं भी इस चिन्तन पर दृढ़ प्रतिज्ञ है। हंस जी उद्घाटित करते हैं –

भेदभाव का मैं न कभी व्यवहार करता हूँ।
मैं मानव हूँ हर, मानव से प्यार करता हूँ।[13]

नैतिकता मानव मन को बन्धन नहीं प्रदान करती अपितु नीतिगत आचरण करने वाला व्यक्ति इससे ऊर्जा प्राप्त कर स्वयं को और अधिक शक्तियुक्त अनुभव करता है। मार्ग में आने–वाले प्रत्येक बाधा को पार करने का सामर्थ्य वह उसके द्वारा प्राप्त कर लेता है –

न्याय के पथ पर कभी चलना गर सीखा नहीं,
कर सकोगे तुम न जग में संकटों का सामना।[14]

यदि मानव को जीवन में सफलता व सिद्धि प्राप्त करनी है तो उसे शुद्धाचरण का वरण करना ही पड़ेगा ; उसे सत्य को जीवन में ढालना ही पड़ेगा और समस्त नैतिक उपांगों की अनुपालना भी करनी होगी। इस अवस्था के द्वारा ही राष्ट्र का ही नहीं समस्त विश्व का कल्याण करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है –

सत्य शिव से जगती का करो अभिषेक तुम,
हो सफल दुनियाँ में जीवन की तुम्हारी साधना।[15]

हंस जी के साहित्य की मूल विशेषता भारतीय नैतिक मूल्यों का संरक्षण है। उन्हें नैतिकता का सजग प्रहरी कहा जा सकता है। उनकी नैतिक भावना मानव की आलोकोज्ज्वल, उच्च अन्तरीण प्रवृत्तियों का जागरण है। उनका लक्ष्य पथ पर विचलित मनुष्य को सन्मार्ग पर लाना है। उनके साहित्य के अक्षर–अक्षर में नैतिकता विद्यमान है। यह उच्च मूल्यों का नैतिक रूप जन–मानस में जन–कल्याणकारी भावना का निदर्शन करे यही हंस साहित्य का नैतिक लक्ष्य है। हंस जी की नैतिकता जहाँ शुद्धाचरण से अनुप्राणित होती है वहीं उच्च आदर्श उसको स्वस्थ क्लेवर प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ

1. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, हिन्दी रुबाईयाँ, पृ0 145
2. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–2, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, सन्त सिपाही, पृ0 175
3. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, हिन्दी रुबाईयाँ, पृ0 83
4. दोहा सप्तशती, उदयमानु हंस – गुरु जम्भेश्वर प्रकाशन, हिसार, 2005, पृ0 33
5. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–2, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, सन्त सिपाही, पृ0 160
6. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, अमृत कलश, पृ0 42
7. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–2, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, दर्द की बाँसुरी, पृ0 472
8. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, अमृत कलश, पृ0 494
9. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, अमृत कलश, पृ0 494

10. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–2, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, सन्त सिपाही, पृ0 30
11. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, धड़कन, पृ0 258
12. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, वन्दे मातरम, पृ0 543
13. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–1, सम्पादक – डॉ0 रामराजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, सरगम, पृ0 403
14. उदयमानु हंस रचनावली, भाग–2, सम्पादक – डॉ0 रामसजन पाण्डेय, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा, दिल्ली, 1999, दर्द की बाँसुरी, पृ0 504
15. – वही – पृ0 504

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 119-124

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

ममता कालिया की कविताओं में जागृत स्त्री की तस्वीर

✍ डॉ. राधा वर्मा

आज हम इक्कीसवीं शताब्दी में पहुँच चुके हैं। महज कुछ स्त्रियों की स्थिति में बदलाव आया है। जहाँ उसे पुरुष का सहयोग मिला, वहाँ उसकी दशा पहले से बेहतर अवश्य हुई है, परन्तु चिंतनीय अभी भी है। आज भी कुछ मजबूर औरतें अपने अस्तित्व को ढूँढ रही हैं, सम्मान से जीने के लिए तरस रही हैं। सम्मान घर से शुरु होता है परंतु वह तो वहीं इससे वंचित दिखाई देती हैं। पुरुष प्रधान समाज के कारण उसके अस्तित्व पर प्रश्न–चिह्न लग गया है। पुरुष अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए औरत का मानसिक व शारीरिक शोषण कर उसे कमजोर बनाकर अपने नियंत्रण में रखना चाहता है। यही नहीं, वह औरत को विभिन्न नियमों, कायदे कानूनों, सामाजिक मर्यादाओं में बांधकर उसका शोषण करता है, जिसे सहन करना प्रत्येक महिला का कर्त्तव्य सा हो गया है । औरत के साथ ऐसा दुर्व्यवहार, उसका यह अपमान सचमुच शर्मसार करने लायक है । इस स्थिति से निपटने के लिए , अपना वजूद प्राप्त करने के लिए जागृत स्त्री की तस्वीर ममता कालिया की 'खाँटी घरेलू औरत' की कविताओं में देखने को मिलती है।

हमारे समाज में स्त्री की स्थिति दयनीय ही दिखाई देती है। औरत के प्रति पुरुष का अधिकाशतः संवेदनहीन, भावहीन, अनैतिक दृष्टिकोण देखने को मिलता है, जिस के कारण उसका जीवन दुश्वार हो जाता है। इसमें बदलाव तभी सम्भव है जब वह जागृत होगी। जागृत होती स्त्री को ममता कालिया की कविता–पुस्तक 'खाँटी घरेलू औरत' की 'एक दिन पति पहुँचे घर' , 'आज नहीं मैं कल बोलूंगी', 'पैंतीस साल मैंने घर' , 'लोग कहते हैं', 'इस घर में', 'क्या इसे जीना कहेंगे' कविताओं में देख सकते हैं । वह जान चुकी है कि आज जरूरत इस बात की है कि स्त्री आँसू बहाने न बैठकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता को पहचाने । कर्त्तव्य को सजगता से निभाते हुए अपना सम्मान बनाये रखे। सम्पूर्ण रूप से जागरूक हो जाने पर उसे कोई नहीं रोक सकता यानी उसे अपनी अस्मिता को बचाने में कामयाबी मिलेगी । हाशिये पर रखी गईं स्त्रियां अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती दिखाई दे रही हैं। वे अब हाशियों की सीमायें लांघती हुई, अपनी चुप्पी को तोड़ने लगी हैं। 'एक दिन पति पहुँचे घर' कविता में जागृत होती स्त्री को इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

एक दिन पति पहुँचे घर
काम के बाद शाम को
उन्होंने पाया
पत्नियाँ यकायक बागी हो गई हैं
वे थाली पीट–पीट कर मांग रही हैं
पच्चीस साल का अपना वेतन, ओवरटाइम और बोनस।[1]

पति के गुस्से, झुंझलाहट का भी उन पर कोई असर पड़ता नजर नहीं आता। स्त्री आज पुरुष के असली चेहरे को पहचान कर उसे सचेत करती, दृढ़ प्रतिज्ञा लेती निडर हो कर कहती हैं :

'आज नहीं जलेगा चूल्हा, नहीं पकेगी रोटियाँ',
बिस्तर नहीं बिछेगा',
'बच्चों का होमवर्क नहीं होगा।'[2]

✍ 'वर्मा निवास', गाहन, कमला नगर, संजौली, शिमला–171006 (हि0प्र0)

पुरुष के लिए उनके ये काम किसी भी गिनती में नहीं आते। स्त्री निरन्तर उपेक्षा की शिकार हो रही है जिसके लिए हमारा पितृसत्तात्मक पुरुष प्रधान समाज जिम्मेवार है। स्त्री की जिन्दगी से सीधा साक्षात्कार कर कवयित्री ने सबको परिचित करवाने की कोशिश की है। पुरुष उसके काम को काम न मानकर उसे कैसे डाँटता–फटकारता है। ये पंक्तियां इस का उदाहरण हैं :

'इन्हें काम कहती हो तुम'
'यह तो तुम्हारा सौभाग्य है'
'उनसे पूछो जिन्हें नहीं मिला सुहाग।'[3]

पतियों के इस तरह कहने पर भी वे डर कर पीछे नहीं हटती बल्कि आंदोलनरत दिखाई देती हैं यानी उनका जागृत रूप देखने को मिलता है :

पत्नियों पर कोई असर नहीं पड़ा,
वे आन्दोलन पर आमादा थीं
आखिर वे इस दुनिया की
आधी आबादी थीं।[4]

'आज नहीं मैं कल बोलूंगी' कविता में विवाह के बाद अनेक बंधनों में जकड़ दी गई दुःखी नारी, विवाह के बाद और पहले की जिन्दगी से अवगत करवाते, जागृत हो कर कहती है :

मैंने कब चाहा था बँधना
बैलों सा नकेल में नथना,
मेरे पैरों में भी गति थी
भावों में साहस, संगति थी ।
मन में चिड़ियाँ चह–चह करतीं
हर पतंग के साथ फहरती ।
आँखें ऊँचे सपने तकतीं
किरणें मेरी बातें कहतीं ।
दुखती पट्‌टी कल खोलूँगी
आज नहीं मैं कल बोलूँगी।[5]

अपनी ऐसी हालत होते देखकर वह चारदीवारी की हद तोड़ने को तैयार दिखाई देती है । विवाह के समय सात फेरों के समय सुखद गृहस्थी के लिए दी गई अनेक कसमें–वायदें उसे महज दिखावा ही दिखाई देते हैं, उन्हें बाद में अमल में कम ही लोग लाते हैं। अगर इन के अनुसार जीवन–निर्वाह करें तो किसी की जिन्दगी भी दुःखद न बने । पशुवत जिन्दगी जीती स्त्री अब जागृत हो रही है। जागृत होती स्त्री को निडर होकर अपने पति को यह कहना इसका प्रमाण है :

जितने मंत्र बोल कर तुमने
मेरा हाथ गहा था
उतने मंत्र विलोम उचारो
तब होगा अलग्योझा ।
कच्ची चोटें तब खोलूँगी
आज नहीं मैं कल बोलूँगी।[6]

विवाह की रस्म के समय पति–पत्नी को हर कार्य में एक–दूसरे की सलाह लेने को कहा जाता है ताकि जीवन सुचारू रूप से शांतिपूर्ण तरीके से चलता रहे । पर यहाँ तो उसका पूरी तरह से उल्लंघन

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

ही दिखाई पड़ता है। पैंतीस साल तक घर के लिए पूरी तरह समर्पित औरत अपना सही मूल्यांकन न होते देख 'पैंतीस साल मैंने घर' कविता में अपने अंदर के गुब्बार को व्यक्त कर कहती है :

पैंतीस साल मैंने घर चलाने की कोशिश की
मेरा रिपोर्ट कार्ड कभी संतोषजनक नहीं रहा।
अपनी तरफ से न कभी नागा की, न इतवार मांगा।
पर क्या करूँ
नम्बर देने वाला मुखिया था सख्त और कंजूस।[7]

हालांकि वह स्वीकारती है कि इतने समय में वह कुछ भी ऐसा कर सकती थी जिसकी अन्य लोग भी प्रशंसा करते। समाज में भी उस का अच्छा मूल्यांकन होता। परन्तु अपनी ही वजह से वह यह नहीं कर पायी। वह स्वीकारती है :

इससे बहुत कम मेहनत में मैं
स्कूल में बच्चों को पढ़ा लेती
दफ्तर में सैंकड़ों फाइलें बढ़ा देती
अस्पताल में रोगियों को दवा खिला लेती
गाँव की औरतों को 'कमला' लिखना सिखा देती ।
पर मुझ पर तो नशा चढ़ा था
अच्छी गृहणी कहलाने का।[8]

अपनी हालत का अन्वेषण कर वह कहती है कि वह बहुत कुछ कर सकती थी और बहुत कुछ बन सकती थी परन्तु वह न कुछ कर सकी और न बन सकी । क्योंकि वह सिर्फ एक औरत बनी रही और वह भी एक कमज़ोर औरत। पुरुष समाज में अपना अह्म स्थान बनाने के लिए स्त्री के अन्दर अनेक ऐसी चीजों को भर देता है जिसकी वजह से वह खाँटी घरेलू औरत ही बनी रहती है । नेतृत्व करने का विचार वह अपने जेहन से निकाल ही देती है । जागृत होती स्त्री इस षड्यन्त्र को समझते हुए पुरुष को धिक्कारती हुई स्पष्ट कहती है :

तुमने मिथक में इतिहास मिलाया
उसमें धर्म का छौंक लगाया
और चूहा मार दवा सा मेरे गले के नीचे उतार दिया।
मैं जीने लगी वेद, पुराण और मनुस्मृति।
मुझे सीता सावित्री, उमा और अनुसूया की तरह बनना
अधिक भाया।
मैंने शकुंतला जितना जोखिम भी नहीं उठाया,
लक्ष्मीबाई को मैंने चेतना से हकाल दिया।
विरोध का विचार तक जेहन से निकाल दिया।[9]

ममता कालिया ने विवाह के उपरांत स्त्री के वास्तविक परिवेश को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। हालांकि घर स्त्री और पुरुष दोनों का ही था । उसको चलाने की जिम्मेदारी दोनों की ही थी । परन्तु पुरुष के अधीन बन कर, चुपचाप उत्पीड़न को सहन कर, वह अकेली ही उसको चलाती रही :

घर था हम दोनों का
पर मैंने इसे गोवर्धन सा उठाया।
रच रच पकाया, कभी खाया, कभी नहीं खाया।

मैं भजन गाती रही,
कभी इसकी, कभी उसकी खैर मनाती रही।
इससे बहुत कम उपक्रम में मैं
अपनी बौद्धिक क्षमता सिद्ध कर लेती
तर्कशक्ति तराश कर निर्णय कर लेती।
पर मैंने यह सब नहीं किया।
जीवन एक सरल रेखा में जिया।[10]

पुरुष द्वारा खोंटी घरेलू औरत के खिताब से नवाजे जाने पर वह स्वीकारती है कि उसके प्रति विरोध करने में हालांकि देर हो गई है परन्तु आज मेरी बेटियाँ मेरी भूल को पहचान चुकी है । जो मैंने सहा वे उसे नहीं सहेंगी । इसीलिए जागरूक होकर वे पूरे जोश से चिल्ला रही हैं :

सड़क पर, संसद में, सभाओं में,
उनसे नहीं होगी भावुकता की भूल।
वे बदल देंगी सारी व्यवस्था समूल।
उनकी माँग है
बराबर का हक
बराबर का नाम
बराबर की शिक्षा
बराबर का काम।
वे मेरे सीमित सपनों में संशोधन लाएंगी।
और मेरी चुप्पी को निर्भय उद्‌बोधन में बदल देंगी।[11]

'लोग कहते हैं' कविता में महिलाओं को प्रताड़ित करने वालों की खबर लेते हुए वह बुलन्द आवाज में कहती हैं :

लोग कहते हैं
मैं अपना गुस्सा कम करूँ
समझदार औरतों की तरह सहूँ और चुप रहूँ।
गुस्सा कैसे कम किया जाता है ?
क्या यह चाट के ऊपर पड़ने वाला मसाला है
या
रेडियो का बटन ?
जिसे कभी भी कर दो ज़्यादा या कम।
यह तो मेरे अन्दर की आग है।
एक खौलता कढ़ाह, मेरा दिमाग है।[12]

सुबह से शाम तक लगातार काम में व्यस्त घरेलू औरत को जागृत होते सवाल पूछते 'इस घर में' कविता की इन पंक्तियों में भी देख सकते हैं :

इस घर में
एक सर्वहारा का जीवन जीते हुए
मैंने परिश्रम को ही माना पारिश्रमिक।
तुम मेरी जगह होते
क्या करते सातों दिन श्रम

सुबह शाम के अनवरत क्रम
बिना अवकाश
बिना वेतन।[13]

यही नहीं, अपने को अस्तित्वहीन मानते हुए वह अपने पति को अपनी जगह रखकर सोचने को कहती है यानी जिस हालत में वह जी रही है उस हालत में जीकर उसको कैसा महसूस होता :

क्या जी लेते तुम ऐसे
कि हक होते मेरे
ना हक तुम्हारे
घर की किसी भी खिड़की, बालकनी पर
तुम्हारा चेहरा न दिखता,
सबकी चिट्ठियों के अंत में
तुम्हारे लिये सिर्फ नमस्ते लिखा रहता ।
बोलो क्या तुम खुश रहते
कहते हुए
कि यह तुम्हारा सौभाग्य है।[14]

ऐसी जिन्दगी को वह जिन्दगी नहीं मानती। 'क्या इसे जीना कहेंगे' कविता में जागृत होती स्त्री के ये प्रश्न सच में सोचने को मजबूर करते हैं :

जिन सवालों पर सच्चाई से मुँह खोला
उन पर बवाल मचा
जब जब लगाई चुप
अच्छी औरत का खिताब मिला।...
औरत का बोलना घर को नहीं भाता है।
चुपचाप करते रहें उसके हाथ पाँव काम
उसके शब्दकोश में हों बस दो शब्द
'जी हाँ' और 'हाँ जी'
तो खुश रहें बच्चे, बड़े और माँजी।
आदर्श पत्नी सी वह घर में आसीन रहे।
बाकी जगत से उदासीन रहे।[15]

इस कवितांश को देख कर कहा जा सकता है कि स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वह अन्याय, अत्याचार को चुपचाप झेलती है । इसी सहनशीलता के कारण शोषण–तंत्र मजबूत होता रहा है और पीढ़ी–दर–पीढ़ी स्त्री को दबाया कुचला गया है। जो व्यवहार उसके साथ पुरुष करता है उसे इन पंक्तियों में कवयित्री ने बखूबी रेखांकित किया है । लिंग भेद के पीछे जो सामाजिक स्थितियाँ हैं यहाँ उनको उजागर करने की कोशिश की है जिनकी वजह से स्त्री कष्टदायक स्थितियों से गुजर रही है। अमानवीय व्यवहार को झेलते हुए बद से बदत्तर जिन्दगी जी रही औरत की इस स्थिति के लिए आज का मूल्य विहीन समाज ही जिम्मेदार है। जो इतना गिर चुका है कि जानवर के समान व्यवहार कर रहा है ।

अन्ततः कहा जा सकता है कि पितृक सत्ता के अंतर्विरोधों को पहचान कर स्त्रियों की स्थिति को सामने रखकर उस प्रभुत्व, वर्चस्व को चुनौती देते, अपना वजूद प्राप्त करने की दिशा में औरत के बढ़ते कदम ममता कालिया की 'खाँटी घरेलू औरत' की कविताओं में देखने को मिलते हैं।

संदर्भ-संकेत

1 ममता कालिया, खाँटी घरेलू औरत, पृष्ठ 64।
2 वही, पृष्ठ 64।
3 वही, पृष्ठ 64।
4 वही, पृष्ठ 64।
5 वही, पृष्ठ 67।
6 वही, पृष्ठ 67–68।
7 वही, पृष्ठ 87।
8 वही, पृष्ठ 87–88।
9 वही, पृष्ठ 88।
10 वही, पृष्ठ 88–89।
11 वही, पृष्ठ 89।
12 वही, पृष्ठ 15।
13 वही, पृष्ठ 42।
14 वही, पृष्ठ 42।
15 वही, पृष्ठ 18–19।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 125-129

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

साठोत्तरी हिन्दी कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन

✍ डॉ. सियाराम

साहित्य एक सामाजिक संस्था है। इसका माध्यम है भाषा, जो एक सामाजिक सर्जना है। प्रतीक–विधान और छन्द–विधान आदि की परम्परागत साहित्यिक युक्तियों की प्रकृति ही सामाजिक है। ये ऐसी रूढ़ियाँ और आदर्श हैं जिनका विकास केवल समाज में ही हो सकता है। इसके अलावा साहित्य 'जीवन' को प्रतिबिम्बित करना भी है। हालाँकि प्राकृतिक जगत् और व्यक्ति के आन्तरिक या आत्मपरक जगत् का भी साहित्यिक 'अनुकरण' होता आया है, पर जीवन काफी अंशों में सामाजिक होता है। स्वयं कवि भी समाज का एक सदस्य होता है, उसकी एक खास सामाजिक हैसियत होती है। उसे कुछ न कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा और पुरस्कार भी मिलता है; वह अपनी बात एक पाठक वर्ग को संबोधित करके कहता है, चाहे यह पाठक वर्ग कितना ही ख्याली क्यों न हो। सच्चाई तो यह है कि प्रायः साहित्य का जन्म कुछ विशेष सामाजिक संस्थाओं के निकट सम्पर्क में हुआ है; और आदिम जन–समुदायों में तो कविता को अनुष्ठान, जादू, काम या क्रीड़ा से अलग कर पाना भी असम्भव है। साहित्य का एक सामाजिक प्रयोजन या उपयोग भी होता है, जिसे विशुद्ध रूप से वैयक्तिक नहीं माना जा सकता है। अतः साहित्यिक अध्ययन के प्रसंग में जो प्रश्न खड़े होते है वे कम से कम अपनी अन्तिम परिणति में या अपने अभिप्राय की दृष्टि से सामाजिक प्रश्न होते हैं : परम्परा और रूढ़ि के प्रश्न, आदर्श और प्रकार भेद के प्रश्न, प्रतीकों और पुराणकथाओं के प्रश्न।

लेखक समाज से केवल प्रभावित ही नहीं होता है; वह उसे प्रभावित करता भी है। कला जीवन का प्रस्तुतीकरण ही नहीं करती अपितु वह उसे नया रूप भी देती है। लोग कथाओं के नायक और नायिकाओं के नमूने पर अपने जीवन को ढाल सकते हैं। उन्होंने पुस्तकों के अनुसार प्रेम किये हैं, और आत्महत्यायें की हैं चाहे यह पुस्तक गेटे की सरोज आफ वर्थर हो या ड्यूमा की मस्केटियर्स। लेकिन क्या हम किसी पुस्तक से इसके पाठकों पर पड़ने वाले निश्चित प्रभाव की ठीक–ठाक व्याख्या कर सकते हैं? क्या व्यंग्य के प्रभाव का वर्णन कर पाना कभी भी संभव हो सकता है ? क्या एडिसन ने अपने समाज के तौर–तरीके सचमुच बदले थे, या डिकेन्स ने कर्जदारों के कैदखानों, बच्चों के स्कूलों और अनाथालयों के सुधार की प्रेरणा भरी थी? क्या हैरिएट बीचर स्टोव सचमुच एक ऐसी ठिगनी औरत थी जिसने अमेरिका में गृहयुद्ध की आग फूँकी थी? क्या गानविद द विण्ड ने श्रीमती स्टोव के संघर्ष के प्रति संयुक्त राज्य के प्रति उत्तरी राज्यों के पाठकों की भावना बदल दी थी? हेमिंग्वे और फानकर ने अपने पाठकों को किस रूप में प्रभावित किया है? आधुनिक राष्ट्रवाद के जागरण पर साहित्य का कितना प्रभाव माना जा सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि स्काटलैण्ड में वाल्टर स्टाक के, पोलैण्ड में हेनरी शेनक्येविच के और चेकोस्लावाकिया में एलोड्स जायरासके के ऐतिहासिक उपन्यासों ने राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाने में ऐतिहासिक घटनाओं की याद जगाने में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

साहित्य और समाज के सम्बन्धों के अध्ययन का सबसे आसान तरीका है साहित्यिक कृतियों को सामाजिक दस्तावेज मानकर, सामाजिक यथार्थ की कल्पित तस्वीर के अनुसार अध्ययन करना। इस विषय में कोई आशंका नहीं की जा सकती कि साहित्य से समाज की किसी न किसी तरह की तस्वीर खींची जा सकती है। सच्चाई यह है कि आरंभ से ही व्यवस्थित अध्ययन करने वाले लोग साहित्य का जिन रूपों में उपयोग करते रहे हैं उनमें से यह भी एक है। इसीलिए यह माना जाता है कि साहित्य की यह एक 'अनूठी विशेषता है कि यह हर युग की विशिष्टताओं को बहुत सच्चाई से अंकित करता है, आचार–व्यवहार के नितान्त चित्रात्मक और अभिव्यंजनापूर्ण पहलुओं को जिलाए रखता है।

✍ रीडर, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया

जहाँ तक साहित्य एवं समाजशास्त्र का प्रश्न है, दोनो में अधिक भिन्नता नहीं है। साहित्य का जुड़ाव काफी हद तक उन्हीं सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचनाओं से है जिनसे समाजशास्त्र का सम्बन्ध है। अन्तर केवल इस दृष्टि से है कि सृजनात्मक कृति के रूप में साहित्य का उद्देश्य मात्र वस्तु का यथातथ्य वर्णन या विश्लेषण ही नहीं है वरन् उससे कहीं अधिक आगे तक जाकर समाज एवं मनुष्य के भाव जगत को प्रभावित करना भी है। यदि ऐसा नहीं होगा तो साहित्य का सृजन संभव नहीं है।

साहित्य में युगीन सामाजिक प्रवृत्तियों का प्रतिफलन होता है। समाज के परिवर्तन के साथ साहित्य भी परिवर्तित होता चलता है। परिवर्तन के साथ समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ अपने प्राचीन रूप को खो बैठती हैं। यह परिवर्तन इतने सूक्ष्म एवं व्यापक स्तर पर होता है कि समय के साथ सामाजिक संस्थाओं के मूल रूप को पहचानना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसे में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा ही तत्कालीन सामाजिक परिवेश की विधिवत् जानकारी प्राप्त की जा सकती है। साहित्य ही एकमात्र ऐसी सामाजिक संस्था है जो परम्परा के साथ स्वयं को जोड़े रखती है और युगों–युगों का समाज उसमें जीवित रहता है। अतः साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थिति के साथ–साथ समसामायिक वास्तविक स्वरूप का भी मूल्यांकन किया जा सकता है। साहित्य समाज की संस्था अवश्य है लेकिन यह संस्था अन्य सामाजिक–आर्थिक संस्थाओं की अपेक्षा इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण है (यद्यपि तत्कालीन समय में कम महत्त्व की होती है) कि कालान्तर में समाज उसी के माध्यम से जीवित रहता है जबकि अन्य संस्थाएँ समय के साथ बंद या नष्ट हो जाती हैं। साहित्य में व्यक्ति के प्रत्यक्ष अनुभव संवेद्य के अतिरिक्त प्राचीन या पारम्परिक अनुभव भी संचित होते रहते हैं।

समाजशास्त्री भौतिक जगत की मानव उपयोगी वस्तुओं को अर्जन का लक्ष्य बनाता है जिससे व्यक्ति सुख, शांति एवं समृद्धि प्राप्त कर सके । आज साहित्य की सम्पूर्ण दृष्टि इन्हीं वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए सहज एवं नैतिक साधनों पर संकेन्द्रित है और वह उन्हीं का वर्णन भी करता है। अतः समाजशास्त्रीय प्रतिमान अचानक ही अर्जित नहीं किए जाते अपितु धीरे–धीरे सामाजिक क्रिया और परम्परा से प्राप्त होते हैं। साथ ही ये व्यक्ति के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण एवं व्यवहार पर भी काफी हद तक निर्भर रहते हैं।

यह प्रश्न आम है कि साहित्य का किसी विशेष सामाजिक स्थिति से या किसी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक प्रणाली से क्या सम्बन्ध है ? साहित्य पर समाज के प्रभाव की सफाई देने और इसके समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करने के प्रयास किये जाते हैं। साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने परखने का प्रयत्न न केवल साहित्य एवं समाज के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करना है अपितु इस सम्बन्धों के सन्दर्भ में इस धारणा को भी स्पष्ट करना है कि साहित्य कैसा हो ? यह धारणा वर्तमान एवं भविष्य दोनों काल–खण्डों पर संकेन्द्रित होती है। सबसे पहले रचनाकार के पेशे और संस्थाओं के समाजशास्त्र का, साहित्यिक कृतित्व के समग्र आर्थिक आधार का, लेखक की सामाजिक हैसियत और दायरे का तथा उसके उन सामाजिक सिद्धान्तों का प्रश्न आता है जिनकी अभिव्यक्ति रचना के वाह्य उपादानों द्वारा संभव होती है। इसके बाद तब कहीं जाकर साहित्यिक कृतियों की सामाजिक वस्तु फलितार्थों और प्रयोजन की समस्या आती है।

सन् 1943 में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हिन्दी कविता के इतिहास–फलक में महत्त्वपूर्ण अध्याय है। इसे कविता का क्षेत्र के क्रान्तिकारी परिवर्तन भी कहा जा सकता है। कविता को नयी राहों के अन्वेषण मानने का दृष्टिकोण इस संकलन के साथ विकसित हुआ। गम्भीर कविता सम्बन्धी दृष्टि को विकसित करने में भी इसका योगदान है और यह मामूली बात नहीं है। कविता जहाँ बिदकती है, जहाँ फिसलती है, जहाँ वह पलायित होती दिखाई देती है, वहीं इसका महत्त्व है। यह कवि के कविता–कर्म

का उल्लंघन भी है और अपने सरलीकरणों को महिमामंडित करके पाठकीय चेतना को दूषित करने के ढोंग के विरुद्ध एक उपक्रम भी। वस्तुतः तारसप्तकीय कवियों ने इसी का विरोध किया है। इसलिए तारसप्तकीय कविताओं की रचनात्मक अपरिपक्वताओं के बावजूद, उनमें साठोत्तरी संकट की स्वीकृति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। युगीन संक्रमण को कवियों ने महसूस किया और इस दृष्टि से तारसप्तक एक सही शुरुआत थी। काव्यचिन्तन का जो उल्लेख यहाँ हुआ है वह भी साधारण नहीं है। तारसप्तक के साथ रचना और आलोचना को सहचर मानने की दृष्टि अधिक बल पकड़ती गई। कवियों की टिप्पणियों से काव्यचिन्तन की नयी अवधारणाएँ भी स्पष्ट होने लगीं।

साठोत्तरी कविता का उत्स निराला से माना गया है जिसके पीछे मात्र महाकवि का व्यक्ति–वैभव या उनका विराट व्यक्तित्व नहीं है वरन् उनकी कविता भारतीय समाज का ऐसा नक्शा प्रस्तुत करती है जो बहिरंगतः परिवर्तनशील और अंतरंगतः पतनशील रहा है। इस परोक्ष विरोध को सही ढंग से समझने वाले कवि के रूप में निराला साठोत्तरी कविता के सन्दर्भ में प्रमुख हो उठते हैं। उसी प्रकार प्रकारान्तर से 'तारसप्तक' के कवियों ने भी सामाजिक अन्तर्विरोध को प्रस्तुत किया है जिनके मूल में कहीं उनकी प्रगतिवादी दृष्टि कार्यरत है तो कहीं उनकी व्यक्ति–केन्द्रित दृष्टि। यह विवाद उतना मुख्य नहीं है कि तारसप्तकीय चेतना से नए काव्य का विकास सम्भव हुआ या नहीं; बल्कि मुख्य है तारसप्तकीय चेतना में साठोत्तरी बोध को कहाँ तक अनुभव किया जा सकता है। उसकी मात्रा चाहे जितनी हो, साठोत्तरी कविता के इतिहास–फलक में उस दौर की कविता का स्थान है। समय की कश्मकश और यथार्थबोध की सही सन्निहिति तथा मूल्यबोध की विभिन्न दिशाएँ इसमें विकास पा रही हैं। कविता के इस आन्तरिक संकल्पधर्मी चेतना–पक्ष को सोठोत्तरी कविता से जोड़ा जा सकता है। हिन्दी की नयी कविता ने आधुनिक कविता सम्बन्धी हमारे अवबोध को सुदृढ़ किया है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन को केन्द्र में रखकर नयी कविता ने अपनी रचनात्मक संभावनाएँ दर्शायी हैं।

साठोत्तरी कविता के परिदृश्य को संवेदनशील बनाने वाले कवियों में कुछ ऐसे हैं जिनकी रचनाशीलता उत्तरोत्तर विकसित हुई। अपने दौर की कविता–रूढ़ियों ने उन्हें सीमित नहीं किया। यह कहना अधिक संगत प्रतीत होता है कि इन कवियों ने साठोत्तरी हिन्दी कविता के परिप्रेक्ष्य को निर्मित किया और उनकी कविता में अनेकानेक रचना–चिह्न अंकित किए जा सकते है क्योंकि उनकी कविता का मानवीय सरोकार प्रबल है। विश्वभर में होने वाले तमाम प्रकार के मूल्य–विघटनों एवं मानवीय त्रासदी के कारण आज यह विचार अत्याधिक मूल्यवान हो गया है कि यह एक जागरूक चेतना है और मानवीयता के प्रति मनुष्य मात्र की सही प्रतिक्रिया भी। आज विकसित देशों में ही नहीं, बल्कि विकासशील देशों में भी पूँजीवादी संस्कृति फैलने लगी है। उसके कई अवान्तर रूप भी है और नवउपनिवेशवादी दृष्टि से लेकर बाजारू संस्कृति तक उसमें शामिल हैं। आज जो कुछ हमारे सामने सरल दिखाई पड़ता है वह इतना जटिल है कि इससे एक विकराल मानवीय समस्या खड़ी हो गई है। जो जटिल है उसका अन्दाजा लगा पाना औसत व्यक्ति के लिए कठिन कार्य हो गया है। यही सामाजिक चिन्ता साठोत्तरी कविता की धुरी है और यही उसकी सत्तात्मक स्थिति को निर्णीत करती है। कविता का यह पक्ष इसलिए सार्थक है कि उसमें चिंता की तात्कालिकता ही मुखर नहीं है, उसमें मानव मात्र के भविष्य की चिंता भी मुखर है। साठोत्तरी कविता की यह मुख्य चिंता है।

वय में बुजुर्ग पर रचनाशीलता में एक दम नई पीढ़ी के नार्गाजुन और त्रिलोचन की कवितायें शुरू से सामाजिक गतिविधियों के समानान्तर चलती रही हैं। सामाजिक विषयों से युक्त होने के कारण उनकी कविता में जीवन–यथार्थ की असंख्य विकृतियाँ भी चित्रित हैं लेकिन उनका यथार्थ भविष्य के इसी प्रखर और जटिल यथार्थ के भीषण सत्य से जुड़ा हुआ है। उनका यह यथार्थ आवेगयुक्त मानसिकता से आपलवित न होकर तर्क संगत एवं बौद्धिक है। व्यापक अनुभवों से युक्त कवि होने के कारण उनमें यथार्थ के रचे बसे रूप को आत्मसात करने और उसकी संभावनाओं को महसूस करने की अदम्य शक्ति है। सम्भवतः इसी कारण वे साठोत्तरी कविता के अभिन्न अंग भी बन गये है। त्रिलोचन की

कविता का आस्वादन करते समय अधिकाँशतः हम भावुकता के वृत्त में आ जाते हैं। वह इसलिए कि त्रिलोचन का कविता संसार लोकचेतना की अनुभूतियों से सृजित है। सम्भवतः इसीलिए कवि–सम्पादक सोमदत्त ने उनकी लम्बी कविता 'नगई महरा' के सम्बन्ध में लिखा है– "आज के इस दौर में जबकि हमारे काव्य–दृश्य का अधिकांश हिस्सा जातीय चरित्र से च्युत और भूगोलहीन है, तब ऐसी कविता हमारे लिए कितनी मूल्यवान है"(पूर्वाग्रह का कविता विशेशांक)। 'नगई महरा' शीर्षक कविता अपना परिवेश स्वयं जुटाती है। इस प्रक्रिया ने साठोत्तरी कविता को अपने स्वयं को ढूँढ़ पाने में काफी मदद पहुँचायी है। त्रिलोचन की कविता ने इस अर्थ में साठोत्तरी कविता के लिए पर्याप्त रचना संकेत दिये हैं।

त्रिलोचन ने कविता के जातीय चरित्र को रूपापित किया है। मगर यह पक्ष कविता की वस्तुगत यथातथ्यता से स्वयं उद्भूत होने के कारण उन तत्त्वों की द्वन्द्वात्मकता का अपना कवितागत परिवेश भी सृजित करता है जो साठोत्तरी कविता की रचना भूमि का अपना परिवेश है। नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' शीर्शक कविता दोहा छन्द में उतरकर अपना एक विशिष्ट लोकवृत्त बना लेती है; पर उनके असंख्य चित्रों में सिर्फ गरीबी का वर्णन ही नही मिलता बल्कि एक पूरा परिवेश जीवन्त हो उठता है। मनुष्य से सम्बद्ध यह कविता मनुष्य का अंकन खुलेआम करती नहीं है, पर इसमें मनुष्य का रूप भरा पड़ा है और यह एक पूर्ण चित्र है।

यह प्रश्न स्वाभाविक और सहज है कि किस रचनादृष्टि ने साठोत्तरी कविता को सर्वाधिक प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि छायावाद के मांसल आग्रह से परे और प्रगतिवाद–प्रयोगवाद की यथार्थवादी परिधि को छूती हुई साठोत्तरी कविता का विकास एक गहरी और पुष्ट वैचारिक स्थापना के रूप में हुआ है। साठोत्तरी कविता ने विचार को किसी कटघरे में न बाँधकर विभिन्न स्तरों पर उसकी वैज्ञानिक और सहज समीक्षा की है। उसने साहित्य को भावाभिव्यक्ति के सघन और व्यापक निष्कर्ष दिये हैं। इसी कारण साठोत्तरी कविता की आलोचना करते समय विचार–तत्त्व के स्तर पर उसका मूल्यांकन समीचीन और आवश्यक हो जाता है।

साठोत्तरी कविता के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में पहला वर्ग साठोत्तरी सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों का है। प्रत्येक समाज अपने विकास की हर स्थिति में इन स्थितियों से प्रभावित होता है और गाहे–बेगाहे इन स्थितियों को प्रभावित भी करता है। सामाजिक संरचना एक जटिल स्थिति है और इस स्थिति को रूपायित करने में विभिन्न वातावरणीय कारक क्रियाशील रहते हैं। साठोत्तरी कविता में विभिन्न सामाजिक आर्थिक–परिस्थितियों के अंकन से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय विशेष में उत्पन्न हुई सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के वस्तुगत परिप्रेक्ष्य क्या रहे होगें ?कुँवर नारायण की 'बँटवारा', लीलाधर जगूड़ी की 'क्रीड़ा प्रसंग' , पंकज सिंह की 'इन्हीं हालात में', बोधिसत्व की 'जो विलाप से विचलित होता है' आदि सभी कविताओं में इन्हीं जटिल सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के दर्शन होते हैं।

'कामगर–श्रमिक वर्ग' की समस्याओं पर कुछ कवितायें भी लिखी गयी हैं। भारतीय समाज का जो ढाँचा है, उसमें हमेशा से श्रमिक वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अपने परिश्रम से समाज की संरचना को सुदृढ़ बनाने वाला यह वर्ग सदैव समाज की उपेक्षा का शिकार रहा है। इस संदर्भ में मंगलेश डबराल की 'गाता हुआ लड़का', राम कुमार तिवारी का 'रो रोकर बच्चे', गीत की 'महकती चाय का गीत' आदि कवितायें इसी समस्या पर आधारित है। इन कविताओं में जहाँ श्रमिक वर्ग की सामाजिक परिस्थिति का प्रतिचित्रण मिलता है वहीं उनके भविष्य के बारे में कुछ बुनियादी प्रश्नों का भी उत्तर मिलता है।

'स्त्री विमर्श' आज साहित्य का मुखर मुहावरा बन गया है। नारियों की सामाजिक स्थिति के बारे में बातचीत, उनकी वैचारिक स्थिति तथा सामाजिक प्रत्ययवाद के क्षेत्र में उनकी सक्रिय भागीदारी पर गहरे विमर्श भरी कई कवितायें साठोत्तरी सृजन–परिदृश्य पर उपस्थिति मिलती हैं। उदय प्रकाश की

'औरतें', हेमन्त शेष 'लड़कियाँ घास नहीं हैं माँ' बोधिसत्व की 'अन्धी स्त्री' आदि उल्लेखनीय कविताओं में स्त्रियों के प्रति प्रतिबद्धता स्पष्ट है। ये कविताएँ हमारे समक्ष भारतीय साठोत्तरी समाज में स्त्रियों की सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिदर्श कराती हैं।

समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की परिकल्पना में मध्यमवर्गीय समाज की स्थिति को नजरअन्दाज नही किया जा सकता है यह समाज का वह वर्ग है, जिसे जटिलतम् सामाजिक परिस्थितियों से रू–ब–रू होना पड़ता है। वैचारिक प्रक्षेत्र की प्रतिबद्धताओं और क्रियान्वयन की सीमाओं के कारण यह वर्ग अपने दृष्टिकोण और आशय की समस्याओं में उलझा रहता है। साठोत्तरी कविता में इस वर्ग की मानसिकता का प्रचुर चित्रण मिलता है। विष्णुनागर की 'सपने में सपना', उदय प्रकाश की 'सुनो कारीगर', रघुवीर सहाय की 'टेलीविज़न' आदि कविताओं में मध्यमवर्गीय समाज का आंतरिक द्वन्द्वसिरे से परिभाषित होता है।

'दलित–विमर्श' साहित्य के समाजशास्त्र का अत्यधिक संभावनाओं से भरा पक्ष है। साठोत्तरी साहित्य में इस ज्वलंत मुद्दे को लेकर कई प्रकार की समानान्तर विचारधारायें भी सक्रिय हैं। राजनैतिक प्रतिबद्धताओं के चलते साठोत्तरी हिन्दी कविता में इस विमर्श के औपचारिक रूप से स्थापना के पहले और बाद में भी काफी चर्चा हुई है। बद्री नारायण की कविता 'मौत मुकर्रर किया गया', अनिल गंगाल की 'गिड़गड़ाता हुआ मनुष्य', केदार नाथ सिंह की 'पंचनामा' आदि कविताओं में दलित विमर्श की सामूहिक अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

सम्प्रदाय–निरपेक्षता के स्तर पर गौर करें तो अल्पसंख्यक समाज भारतीय सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। विघटनवादी और अराजक परिस्थितियों के चलते अल्पसंख्यक समाज की सामाजिक स्थिति तथा इस बदलाव से सम्पूर्ण समाज की संरचना में जो अन्तर आये हैं वे अल्पसंख्यक समाज के सन्दर्भ समाजशास्त्रीय अध्ययन का प्रमुख ध्येय है। 'बाकर मियाँ', 'खोज', 'दंगें से लोटा आदमी' आदि कविताओं से यही साबित होता है कि प्रचण्ड अलगाववाद के माहौल ने अल्पसंख्यक समाज के सामाजिक मानसिक दृष्टिकोण में व्यापक बदलाव किये हैं, जो हमारी जटिल सामाजिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

स्पष्ट है कि भले ही कविता और साहित्य के समाजशास्त्र की अपनी कुछ सीमायें है। पर यह भी सत्य है कि यदि हमें साहित्य की मानवीयता पर विचार करना हैं और उसमें मूल्य और उपादेयता जैसे निष्कर्ष तलाशने हैं, तो समीक्षा की अनिवार्य और मूल्यपरक प्रविधि के रूप के साहित्य के समाजशास्त्रीय महत्त्व को स्वीकार करना होगा। यद्यपि अभी तक आलोचना के स्थापित मानदण्ड के रूप में इस प्रविधि को मान्यता नहीं मिल सकी है तथापि साहित्य के भविष्य और आसन्न समय के संकटों और प्रतिबद्धताओं की छाया यही संकेत करती है कि सम्यक् आलोचना प्रविधि के रूप में साहित्य के समाजशास्त्र की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। मानवीय मूल्य और आशयों की प्रामाणिक अनुभूति की दृष्टि से साहित्य का समाजशास्त्र सदैव साहित्य के कलात्मक रूप को उसकी यथार्थवादी वस्तुगत चेतना के साथ सम्बन्धित करता रहेगा।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 130-133

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

भारत की सांस्कृतिक चेतना और हिन्दी साहित्य का परिदृश्य

✍ डॉ. शशिभूषण कुमार 'शशि'

भारत की सांस्कृतिक चेतना का विकास कालान्तर में अनेक जनगण की संस्कृति के समन्वय से हुआ है। इसकी प्रवृत्ति किसी विशेष जनगण की न होकर उदात्त मानवीय भावनाओं को पल्लवित और पोषण करने की रही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से संवरित इस सांस्कृतिक चेतना के केन्द्र में आरंभ से ही मानव मात्र रहा है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान को. अ. अंतोनोवा, ग्रि. म. बोगर्द–लेविन और ग्रि. ग्रि. कोतोव्स्की के सम्मिलित प्रयास से लिखी गयी पुस्तक 'भारत का इतिहास' की भूमिका में लिखते हैं – "भारत मानव सभ्यता के उद्गम स्थलों में एक है। भारत की संस्कृति अनेक जनगण की संस्कृति से घनष्ठितः संबद्ध रही है और उनके विकास पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। किन्तु शताब्दियों के इस पारस्परिक समृद्धिकरण के बावजूद भारत ने अपनी मौलिकता और विलक्षण विशिष्टता को बनाये रखा है। हजारों वर्षों के दौर में प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत की विज्ञान, साहित्य तथा कला में उपलब्धियों ने दूर–दूर के राष्ट्रों के सृजनात्मक चिंतन को प्रेरित किया है।"[1] इनका स्पष्ट मत है कि भारत में उत्पन्न हिन्दू तथा बौद्ध धर्मों ने केवल अनेक पूर्वी सभ्यताओं के विकास ही नहीं, वरन् संसार के अनेक अन्य भागों में सामाजिक चिंतन पर भी प्रभाव डाला।

इन्होंने भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता को भी रेखांकित किया है – "लगभग दो सौ साल के औपनिवेशिक उत्पीड़न के बावजूद भारतवासी अपनी सांस्कृतिक थाती की परम्पराओं को कायम रख सके हैं, जिसकी मुख्य विशेषतः मानवतावाद के उदात्त विचार और शांति से गहन अनुराग है।"[2] हिन्दी साहित्य अपने आरंभ काल से ही भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों से अनुप्राणित रहा है। आदिकाल की रचनाएँ इसका प्रमाण है कि भारत के इतिहास में यह युग हिन्दू शासकों के पराभव का था। अंतिम वर्द्धन सम्राट हर्षवर्द्धन के शासनकाल में ही उत्तरी भारत पर यवन आक्रमण आरंभ हो गये थे। यवन आक्रमण का प्रभाव मुख्य रूप से पश्चिम और मध्य प्रदेश पर पड़ा। इन क्षेत्रों के निवासी युद्धों और अत्याचारों से आक्रान्त हुए और यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इन्हीं क्षेत्रों में उस समय हिन्दी भाषा विकसित हो रही थी। संस्कृति की दृष्टि से भी यह काल हिन्दू धर्म और इस्लाम के परस्पर टकराव एवं समन्वय से नयी सांस्कृतिक चेतना के निर्माण का काल है जिसके फलस्वरूप इस्लामी विचारधारा की जमीन पर सूफी मत का प्रेममार्गी स्वरूप प्रस्फुटित हुआ। "हिन्दी साहित्य का आदिकाल उस समय आरंभ हुआ जब भारतीय संस्कृति उत्कर्ष के चरम शिखर पर आरूढ़ हो चुकी थी, और जब उसने भक्तिकाल को अपना दायित्व सौंपा, उस समय भारत में मुस्लिम संस्कृति के स्वर्ण–शिखर स्थापित होने लगे थे। इस प्रकार आदिकाल को दो संस्कृतियों एवं ह्रास–विकास की गाथा कही जा सकती है। भारत में मुस्लिम संस्कृति के परिवेश के समय यहाँ की विभिन्न जातियों, मतों, आचारों–विचारों आदि में दीर्घकाल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुँच रही थी।"[3] इस काल की राजनीतिक उथल–पुथल और धार्मिक स्थिति का प्रभाव स्पष्ट रूप से साहित्य पर भी पड़ा।

इस काल में साहित्य रचना की तीन धाराएँ थी। पहली धारा संस्कृत साहित्य की परम्परा से आबद्ध थी, दूसरी धारा प्राकृत एवं अपभ्रंश की थी और तीसरी धारा हिन्दी भाषा की थी जो अपभ्रंश से प्रभावित थी। इस धारा के रचनाकारों ने सामाजिक जीवन में पनप रहे पाखंड और आडम्बर का विरोध कर सहज जीवन मार्ग पर बल दिया। इस काल के कवि सरहपाद लिखते हैं – "नाद न बिन्दु न रवि न शशि मण्डल। चिअराअ सहाबे मूकल। अजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक। निअहि बोहिमा जाहु रे लांक। हाथेरे कांकाण मा लोउ दापण। अपने अपा बुझतु निअन्मण।"[4] इसी काल में खुसरो नाम के कवि हुए थे जिन्हें कुछ लोग अमीर खुसरो से भिन्न व्यक्ति मानते हैं। जन–जीवन के साथ घुल–मिलकर

✍ स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर

काव्य–रचना करने वाले कवियों में खुसरो का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी पहेलियाँ और मुकरियाँ गहरा प्रभाव डालने में सक्षम थीं – ''तरवर से एक चिड़ियाँ उतरी, उनने बहुत रिझाया। बाप का उसने नाम जो पूछा, आधा नाम बताया। आधा नाम पिता का प्यारा, बुझ पहेली गोरी। अमीर खुसरो यों कहे, अपने नाम न बोली''निबोरी'।''[5] ''आदिकाल में जो खुसरो हुए थे, उनकी पहेलियाँ और मुकरियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें मनोरंजन और जीवन पर गहरे व्यंग्य एक साथ मिलते हैं। अमीर खुसरो को भाव गहराई की दृष्टि से भले ही महत्व न दिया जाए, किन्तु भाषा की दृष्टि से उनकी पहेलियाँ साहित्य के इतिहास का सदा एक महत्वपूर्ण अंग रहेगी।''[6]

भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी प्रकृति के विकास की दृष्टि से भक्तिकाल महत्वपूर्ण है। साहित्य के इतिहास में इस काल का नामकरण भले भक्तिकाल किया गया है परन्तु भारतीय संस्कृति के मुख्य तत्व, इसकी उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति इसी काल की रचनाओं की रचनाओं में हुई है। दादू, कबीर, रैदास, जायसी, नानक देव, सूर, तुलसी आदि कवियों की रचनाओं में जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की गई। ''सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्तनधारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं की आनुशंगिक उपलब्धियाँ हैं। इन सबका क्षेत्र विशाल मानव–समाज है जिसकी प्रेरणा और प्रसाद से मनुष्य जीवनयापन करता है। भारतीय जीवन में समय–समय पर विदेशी विजातीय तत्वों के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहते हैं। परन्तु इन्हीं से होकर ऐसी जीवनी शक्ति का संचार भी होता रहा है कि हम डूबते–डूबते भी उबरते चले आये हैं, निष्प्रभ या निस्तेज न होकर नव–जीवन की अरूणिमा से महिमा मंडित होते रहे हैं। इन सबके मूल में हमारी समन्वय–साधना की प्रवृत्ति उजागर रही है।''[7] इस काल की रचनाओं में यह समन्वय–भावना अंतसलिला की भाँति प्रवाहित है। आदिकाल की तुलना में भक्तिकाल की स्थिति थोड़ी भिन्न है। अब भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित हो चुका है। हिन्दू–मुसलमान साथ निवास कर रहे हैं परन्तु जाति, धर्म की श्रेष्ठता, धार्मिक आडम्बर और परस्पर संदेह की भावना से ग्रसित मन का मैल उनकी मनुष्यता को मलीन कर रहा है।'' हिन्दी का पहला काव्य और महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष की गाथा है। हिन्दी के पहले बड़े कवि कबीर के कृतित्व का एक बड़ा अंश इस संघर्ष को प्रशमित करने पर खर्च हुआ है। फिर हिन्दी का पहला बड़ा महाकाव्य जायसी का 'पद्मावत' इसी हिन्दू–नरक द्वन्द की कथा कहता है। और यह स्मरणीय है कि इन सभी प्रसंगों में साम्प्रदायिकता की भावना कहीं नहीं है – ''न हिन्दू कवि चंदबरदाई में, न मुसलमान कवि मलिक मुहम्मद जायसी में और न ना–हिन्दू–ना–मुसलमान कवि कबीरदास में। यह हिन्दी काव्य–भाषा और साहित्य परम्परा की जीवंतता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि जिसका जन्म हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष के साथ होता है और जो इस संघर्ष का अनेक रूपों में चित्रण करती है पर जिसकी रचना में साम्प्रदायिक दृष्टि का संस्पर्श भी नहीं होने पाता। विरोधों का साधना हिन्दी भाषा की प्रकृति का अंग है, यह इस विवेचन के आरंभ में ही स्पष्ट किया गया है।''[8] हिन्दी भाषा की यह प्रकृति वास्तव में भारतीय संस्कृति की प्रकृति है। इसे समझने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि जिस प्रकार विभिन्न जनगण के परस्पर मेल से भारतीय संस्कृति से समन्वयवादी चरित्र का विकास हुआ और इसमें विभिन्न जनगण की संस्कृति के तत्व अभिन्न रूप से घुल–मिलकर एक हो गये, उसी प्रकार हिन्दी भाषा आरंभ से ही विभिन्न धर्मों और समाज के सभी वर्गों के लोगों के जीवन और रचना की भाषा रही है।

भक्तिकाल तक हिन्दी काफी निखर चुकी थी और भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर चुकी थी। 'जिन मुस्लिम कवियों ने हिन्दी में कविताएँ लिखीं, उनकी संख्या थोड़ी नहीं है। अमीर खुसरो, कबीरदास, जायसी, कुतुबन, मंझन, रसखान, रहीम, नेवाज, मुबारक, आलम, शेख, रसलीन, मुमताज आदि सभी कवि मुसलमान थे और उनकी कविताएँ हिन्दी का श्रृंगार हैं। इनमें से कबीर और रसखान धार्मिक दृष्टि से इस्लाम से जरा दूर पड़ते हैं, मगर बाकी जो भी कवि थे, पूरी तरह से इस्लाम के कायल थे। उनके जीवन से यह शिक्षा निकलती है कि अलग–अलग धर्मों पर टिके रहकर भी लोग एक भाषा में साहित्य लिख सकते हैं तथा भारतीयता को स्वीकार करने में धर्म कोई हस्तक्षेप नहीं होता।''[9] किसी भी देश की संस्कृति

मूलतः उस देश के निवासी के रहन–सहन, खान–पान, उत्सव तथा भाषा से ही निर्मित होती है, जिसमें समन्वयक की भावना महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से भारत विभिन्न जनगण का देष है और यहाँ विभिन्न धर्मों और भाषा को बोलने वाले लोग हैं। खान–पान और रहन–सहन की दृष्टि से भी भिन्नता है फिर भी समस्त देश एक संस्कृति के सूत्र से बँधा हुआ है, जिसके मूल में इसकी समन्वयवादी प्रकृति ही है। "राष्ट्रीय समन्वय का विचार हमारे लिए नया नहीं है। यदि हिन्दू–मुस्लिम एकता के आन्दोलन को लें, तो यह आन्दोलन महात्मा कबीरदास के समय से चलता आ रहा है। मुसलमानों के आगमन के पूर्व इस देश में हिन्दू–मुस्लिम समस्या नहीं थी, लेकिन विदेश से आने वाली अनेक जातियों और धर्मों के जो लोग इस देश में आते रहे, उनके पचाने की समस्या जरूर रही होगी।"[10] भक्तिकाल रचनात्मकता की दृष्टि से ही नहीं, भारतीय सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भी अन्यतम है। इसी काल में दो परस्पर विरोध रखने वाले धार्मिक समुदाय की साझी संस्कृति विकसित हुई जो भारतीय संस्कृति में समाहित हो गई और इसमें हिन्दी साहित्य की उल्लेखनीय भूमिका रही है, इसे विस्मृत नहीं किया जा सकता।

साहित्य और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। संस्कृति जिन जीवन–मूल्यों का संचयन करता है, साहित्य उन जीवन–मूल्यों का पोषण करता है। "साहित्य या संस्कृति के स्थाई और सर्वमान्य मूल्य क्या हैं जिन्हें हम मनुष्यता की मूल्यवान धरोहर के रूप सहेज सकें या जिनके कारण मनुष्य सही अर्थों में मनुष्य और उसके द्वारा रची जाने वाली संस्कृति सही मायनों में मानव संस्कृति है। वस्तुतः साहित्य और संस्कृति के स्थायी मूल्य वे हैं जिन्हें मनुष्य ने अपने लंबे सामाजिक जीवन में प्रकृति तथा परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अर्जित और समृद्ध किया है।"[11] संस्कृति मनुष्य की सामासिक सह अस्तित्व का बोध कराती है। साहित्य और संस्कृति युगानुरूप अपने अन्तर में विगत युगों को आत्मसात किये रहती है जिससे उनकी निरंतरता सदा बनी रहती है। "यह सही है कि युग और व्यवस्थाओं के बदलने के साथ हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिरूचियाँ, हमारी मान्यताएँ, हमारे विचार–विश्वास बदलने हैं, और उनके अनुरूप साहित्य संस्कृति का भी नया रूप सामने आता है जो उनकी गतिशीलता, उनकी जीवंतता और उनकी शक्ति का परिचायक है, किन्तु ऐसा नहीं है कि उनके भीतर जो स्थायी तत्व हैं वे समाप्त हो जाते हैं।"[12] भारत की सांस्कृतिक चेतना और हिन्दी साहित्य का अंतर्संबंध रीतिकाल में अवश्य क्षीण दिखता है तो इसका कारण तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ हैं। सत्रहवीं शताब्दी में मुगलों का साम्राज्य हासोन्मुख था, उस समय दिल्ली के तख्त पर शाहजहाँ आसीन था। देश में सर्वत्र विद्रोह से मुगल शक्ति क्षीण हो गयी थी। उत्तरदायित्वविहीन विलासिता के वातावरण में उपजी शृंगार भावना नारी देह में सिमट गई थी। "जैसे, सब ओर से चोट खाकर, किसी ओर रास्ता न पाकर, बुद्धि घर के भीतर सिमट गई हो, जैसे जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोविशेष का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का एकमात्र साधन नारी देह की शोभाओं और चेष्टाओं के अवलोकन–कीर्तन तक ही सीमाबद्ध हो गया हो।"[13] फिर भी इस काल में चिंतामणि, भूषण, मतिराम और बिहारी जैसे समर्थ कवि हुए।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल निश्चित रूप से सांस्कृतिक विमर्श का काल है। इसके भारतेन्दु युग में ही राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना के प्रसार में हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण परिवेश को प्रभावित किया, जिस कारण इसे पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी गयी। द्विवेदी युग (जागरण–सुधार–काल), छायावाद और छायावादोत्तर काल में साहित्य और संस्कृति का जनोन्मुखी रूप विकसित हुआ। औपनिवेशिक दासता, स्वाधीनता संग्राम के इस दौर में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, निराला, प्रसाद, दिनकर, अज्ञेय, मुक्तिबोध, धूमिल, नागार्जुन, प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र आदि कवियों–कथाकारों ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को मनुष्यता के उदात्त मूल्यों से आबद्ध किया। "राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा भारतेन्दु–काल से प्रारंभ होकर द्विवेदी काल, छायावाद काल को पार करती हुई इस काल की कविताओं में समकालीन–प्रश्नों, स्वरों से संयुक्त होकर और भी उदार और वैविध्यपूर्ण हो गयी।"[14] राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य धारा के कवियों की राष्ट्रीयता को उभारने वाली रचनाओं से नया वातावरण

निर्मित किया। इस धारा के सशक्त कवि दिनकर ने संवेदना और विचार के सुन्दर समन्वय से हिन्दी कविता और भारतीय संस्कृति को नया आयाम दिया। 'भारतीय संस्कृति के चार अध्याय' इनकी भारतीय संस्कृति का गंभीर विश्लेषण करने वाली पुस्तक है। "कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समस्याओं आदि के ही रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों को नये जीवन–संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आंकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है।"[15] हिन्दी गद्य को प्रेमचन्द्र और जैनेन्द्र जैसे रचनाकारों ने समाज के विभिन्न वर्गों और नारी मनःस्थिति से जोड़ा और समृद्ध किया। आजादी के पश्चात इससे मोहभंग की स्थिति पतनशील राजनीति और सामाजिक दुरावस्था को नागार्जुन, मुक्तिबोध, धूमिल, श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, राही मासूम रजा आदि कवि–कथाकारों ने चित्रित किया। वर्तमान में भी रचनाकार अपनी रचनाओं से भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति की सामासिक प्रवृत्ति मनुष्यता के प्रति नकारात्मक मूल्यों के प्रतिरोध की रही है और यही प्रवृत्ति वर्तमान हिन्दी साहित्य के सभी विधाओं में व्याप्त है।

संदर्भ

1 भारत का इतिहास – को. अ. अंतोनोवा, ग्रि. म. बोगर्द–लेविन, ग्रि. ग्रि. कोतोव्स्की, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1984, पृ. 11

2. वही, पृ. 11

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नागेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, ए–95, सेक्टर–5, नोएडा–201301, द्वितीय संस्करण : 1991, पृ. 57

4. वही, पृ. 63

5. वही, पृ. 78

6. वही, पृ. 78

7. वही, पृ. 79

8. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1, चतुर्थ संस्करण–1994, पृ. 43–44

9. भारतीय एकता – रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना–16, प्रथम संस्करण–1970, पृ. 31

10. वही, पृ. 1

11. दर्शन साहित्य और समाज – शिवकुमार मिश्र, अरूणोदय प्रकाशन, 1/2165, पूर्वी रामनगर, गली नं.–16, मंडौली रोड, शाहदरा, दिल्ली–110032, पृ. 17

12. वही, पृ. 16–17

13. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1–बी., नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, छठा संस्करण–1990, पृ. 163

14. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र, पृ. 608

15. वही, पृ. 621

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 134-136

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

मन्नू भण्डारी की कहानियों में वृद्धावस्था और अकेलेपन का दंश

✍ **सरोज पाठक**

वृद्धावस्था मनुष्य के जीवन की ऐसी अवस्था है जहाँ व्यक्ति शारीरिक रूप से बहुत अशक्त, कमजोर और दुर्बल हो जाता है। इस अवस्था में शरीर के सारे अवयय शिथिल पड़ने लगते हैं। जिंदगी भर काम करनेवाले शरीर के सारे कल–पुर्जे जवाब देने लगते हैं। वृद्ध व्यक्ति का शरीर कई तरह की बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है। धीरे–धीरे वह दूसरे पर अवलम्बित होता जाता है और उसे अपनी प्रत्येक जरूरत के लिए दूसरे का मुंह निहारना पड़ता है। इस अवस्था में मनुष्य को विश्राम तथा देखभाल की जरूरत होती है। पूरी उम्र अपने बच्चों के पिछे जान देने वाला व्यक्ति मन में यह जरूर आस रखता है कि बच्चे भी वृद्धावस्था में उसके सहारे की लाठी बनेंगे। लकिन उम्र के अंतिम पड़ाव पर उसका आस, विश्वास खण्डित हो जाता है और उसके समक्ष यथार्थ का निर्मम रूप उपस्थित हो जाता है। वह समझ जाता है कि दुनिया में उसका अपना कोई नहीं है। बच्चों पर वह बोझ स्वरूप हो जाता है। अपने स्वजनों के होते हुए भी वह उपेक्षित और अपमानित जीवन जीने को बाध्य हो जाता है।

वृद्धावस्था चाहे स्त्री हो या पुरूष की बहुत तकलीफदेह होती है। लेकिन स्त्रियों के लिए तो वृद्धावस्था अभिशाप ही है। वैसे तो हमारे भारतीय परिवेश में स्त्रियाँ हर अवस्था में उपेक्षित और अपमानित होती है लेकिन वृद्धावस्था में उनकी स्थिति और अधिक दयनीय और कारूणिक हो जाती है। इस अवस्था में तन्हाई और अकेलापन उनके चिरस्थायी मित्र बन जाते हैं। दूसरा कोई न उनका संगी होता है न साथी। न कोई उनका दुख समझनेवाला होता है न दर्द। न कोई उनकी खुशी में शामिल होता है न गम में।

वृद्ध स्त्री अपने स्त्री जन्म पर रोती है, कलपती है, सिसकती है। युवावस्था में तो उसके शरीर की उपयोगिता थी। उसके शरीर में अथाह उर्जा थी, बल था। उसके स्नायुयों में तेजी थी वह हड्डी तोड़ मेहनत करती थी। सबकी एक अवाज पर पूरे घर मे दौड़ती रहती थी। पुरूष उसके मांसल, खुबसूरत शरीर पर आसक्त रहता था। इस सबके एवज में वह उसे दो जून की रोटी देता था। परन्तु अब जबकी उसका शरीर जर्जर और खोखला हो चुका है, कौन उसे रोटी देगा। उसके बच्चे समाज के भय से यदि उसे अपने पास रख भी लेते है तो पग–पग पर उसे अपमानित और उपेक्षित करते रहते हैं।

यह उपयोगितावादी संसार उसे ही इज्जत और सम्मान देता है जो उसके लिए लाभदायक होता है, जो उसके काम आता है। यह संसार ईश्वर की भी इसीलिए पूजा करता है क्योंकि उसे उम्मीद है कि ईश्वर उसकी कामनाओ की पूर्ति करता है। जिस दिन उसे पता चल जाए कि ईश्वर ऐसा कुछ नहीं करता है तो वह उसे मानने से इंकार भी कर देगा। यह अवसरवादी संसार उर्जावान, शक्तिशाली व्यक्ति को ही पूछता है। वृद्ध व्यक्ति उसके लिए अनुपयोगी, फालतू और बेकार हो जाते हैं।

स्त्रियों की वृद्धावस्था की इन्हीं भयावह स्थितियों का मार्मिक चित्रण मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानियों में किया है। मन्नू भण्डारी स्त्रियों की समस्याओं, परेशानियों, जटिलताओं, पेचीदगीयों से सर्वप्रथम गहरे स्तर पर जुड़ती हैं तब जाकर उनपर कहानियाँ लिखती हैं। वृद्धावस्था से संबंधित उन्होंने बहुत अधिक कहानियाँ नहीं लिखी हैं। लेकिन उनकी दो कहानियाँ "अकेली" और मजबूरी वृद्धावस्था से संबंधित लगभग सभी समस्याओं का समुचित वर्णन करने में समर्थ है।

✍ हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मन्नू भण्डारी की कहानी "अकेली" की मुख्य पात्र सोमा बुआ है जो अपने पति के होते हुए भी अत्यन्त अकेली और तन्हा है। सोमा बुआ का बेटा हरखू जबसे भगवान को प्यारा हो गया तबसे उनके जीवन की सारी खुशियाँ ही छिन गयीं। उनका पति विरक्त होकर सन्यासी हो गया। वह सालभर में केवल एक महीने के लिए घर आता था।

"जब तक उनका पति उनके साथ रहता उनका मन मुरझाया हुआ रहता क्योंकि पति के स्नेह–हीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की आबाध गति से बहती स्वच्छंद धारा को कुंठित कर देता।"

उनके पति के घर आने से उनकी स्वतंत्रता को ग्रहण लग जाता था, वह उन्हें न किसी से मिलने–जुलने देता और नही घूमने–फिरने की इजाजत देता। हरखू के मरने के बाद सोमा बुआ इतनी अकेली हो गयी थीं कि उन्हें लगता ही नहीं था कि वे जी पायेंगी। लेकिन उन्होंने अपने जीवन की नीरसता शुष्कता, उदासीनता को समाप्त करने के लिए अपने जीवन के ढर्रे को बिल्कुल बदल डाला। वे लोगों की प्रत्येक खुशी, गम में शामिल होने लगीं। दूसरों का काम करके उन्हें संतुष्टि और खुशी मिलती। अपने पड़ोसी किशोरीलाल के बेटे के मुंण्डन में उन्होंने रसोई का कार्यभार खुद संभाला और सारे कार्य को उम्दा अंजाम दिया। उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर किशोरीलाल ने उन्हें धन्यवाद दिया और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। सोमा बुआ को दूसरों का बिगड़ता काम बनाकर बहुत आत्मसंतुष्टि मिलती थी।

एक बार सोमा बुआ के देवर के ससुराल वाले अपने बेटे की शादी उनके गाँव में करने आए। सोमा बुआ बहुत खुश हुई और उन्हें लगा कि उन्हें भी निमंत्रण जरूर मिलेगा। देवर के मरने के बाद उनके उनके आपसी संबंध भी मर गये थे लेकिन यह एक मौका था मरे संबंध को पुनर्जीवित करने का। नन्दा ने जब बताया कि उसने लिस्ट में उनका नाम देखा है, तो सोमा बुआ अपने निमंत्रण को लेकर आश्वस्थ हो गयीं। उनके घर जाने के लिए अपने बेटे की एक मात्र निशानी, सोने की अंगूठी को बेचकर उन्होंने राधा से कुछ उपहार मंगवाया। राधा ने चाँदी की एक सिंदूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज का कपड़ा लाकर दे दिया। सोमा बुआ उपहार देखकर बहुत पुलकित हुयीं। दूसरे दिन सुबह सोकर उठीं तो उनके मन में जाने का उत्साह बहुत तेज था। अपनी साड़ी रंगकर उन्होंने फैला दिया। नयी चूड़ियाँ पहनकर वे बुलावे का इंतजार करने लगीं। पाँच बजे तक भी कोई बुलावा नहीं आया तो वे खिन्न हो गयीं। सोमा बुआ एक तो वृद्धा थीं, दूसरी तरफ परित्यकता भी। भारतीय समाज में वृद्धाओं की स्थिति शोचनीय तो है ही और यदि वह परित्यक्ता भी हो तब तो उसकी समस्या और अधिक बढ़ जाती है। यदि सोमा बुआ का पति ठीक होता, उसके साथ रहता, सबसे सम्बन्ध बनाए रखता तो उसके देवर के ससुरालवाले उसकी इतनी अवहेलना नहीं कर पाते।

मून्नू भण्डारी की दूसरी कहानी "मजबूरी" है जिसमें बूढ़ी अम्मा की लाचारगी, विवशता और अकेलेपन की व्यथा का यथार्थ चित्रण मिलता है। बच्चों से दूर रहने की पीड़ा इस कहानी में साफ दृष्टिगोचर होती है। वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने बच्चों, अपने नाती–पोतों के बीच रहना चाहता है। उनकी किलकारियों के बीच असीम सुख का अनुभव करता है। कहा जाता है कि मूल से ब्याज अधिक प्रिय होता है । वृद्धावस्था में अपने बच्चों से अधिक उनके बच्चों से लगाव होता है। बूढ़ी अम्मा भी इस चाह में अपनी उम्र काट रही थीं। बुढ़ी अम्मा अपने बेटे रामेसुर के बेटू को बहुत मानती थीं और चाहती थीं कि वह उनके पास ही रहे। जब उनकी बहू को दूसरा गर्भ ठहरा तो उनकी यह इच्छा भी पूरी हो गयी। बहू ने उनसे कहा कि इस बार वह बेटू को उनके पास ही छोड़कर मुम्बई चली जायेगी। यह बात सुनकर अम्मा की तो मानो बाछें खिल गयी। उस दिन उन्हें अपना व्यर्थ, निरर्थक और सारहीन जीवन बहुत अर्थपूर्ण और सार्थक लगने लगा। उन्होंने सारे मुहल्ले में प्रचार कर दिया कि बेटू अब मेरे पास रहेगा। बूढ़ी अम्मा को पहले तो थोड़ी दिक्कत हुई लेकिन धीरे–धीरे वह उसका सारा काम सीख गयीं।

दो साल बाद बहू वापस आयी तो "बेटू" की हालत देखकर स्तब्ध रह गयी। बेटू की बात–बात पर जिद देखकर रमा का का तो खून खौल जाता था। उसने निश्चय किया कि वह बेटू को अपने साथ मुम्बई लेकर जायेगी। बहू ने कहा कि यह उसकी जिंदगी का सवाल है। यदि वह कुछ दिन और यहाँ रहा तो बिल्कुल चौपट हो जायेगा। इसलिए उसका भविष्य संवारने के लिए उसका जाना जरूरी है। बूढ़ी अम्मा विवश थीं। बेटू आखिरकार उसकी बहू का ही था। इसलिए उसपर उसका अधिकार था। बेटू उसके कलेजे का टुकड़ा, उसकी आँखों के सामने चला गया और वह कुछ नहीं कर सकी। उसके चले जाने के बाद अम्मा का जीवन पुनः उजाड़ हो गया। अब वह क्या करें, उन्हें कुछ समझ ही नही आ रहा था। "आज अम्मा के पास कोई काम नही था करने को। सो खाली आंगन में दर्दीले स्वर से एक लोरी गुनगुना रही थी।"

सन्दर्भ सूची

1. तीन निगाहों की एक तस्वीर, अकेली, मन्नू भण्डारी, पृ0 25
2. वही0 मजबूरी, मन्नू भण्डारी, पृ0 94

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010, पेज : 137-139

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

दीवार में एक खिड़की रहती थी–एक अध्ययन

✍ **डॉ. वन्दना मिश्रा**

विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' कहने को निम्न मध्यम वर्गीय परिवार की संघर्ष कथा है, जहाँ महाविद्यालय में पढ़ाने वाले प्राध्यापक रघुवर प्रसाद के पास एक साईकिल भी नही है। इस संघर्ष गाथा को इतने सहज ढंग से व्यक्त करता है लेखक कि लगता नहीं यह दुःख अभाव या संघर्ष की कथा है बल्कि उससे अलग सपनों की दुनिया की कथा लगती है। एक कमरे के मकान को घर बनाने के लिए कल्पना की खिड़की जरूरी है। उपन्यास को चार बातों के लिए याद किया जायेगा।

1. उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद से खिलाफत करने के लिए।
2. प्रकृति से मानव के साहचर्य के लिए।
3. भाषा की काव्यात्मकता के लिए।
4. मानव का मानव से सम्बन्ध के लिए।

कुछ वर्ष पहले तक प्रेमचन्द की कथा 'ईदगाह' का पाठ हामिद को बच्चा मानकर उसकी त्याग की प्रवृत्ति को, दादी के प्रति प्रेम को श्रेष्ठ मानकर किया जाता था। प्रसिद्ध आलोचक एवं विचारक नामवर सिंह जी ने इस कथा की नवीन व्याख्या इसप्रकार की कि यह बाल मनोविज्ञान के स्थान पर, निम्न मध्यमवर्गीय मनुष्य बचपन से ही बाजार के प्रलोभन से, अपने को किस प्रकार बचाता है के जद्दोजहद की कथा हो गयी।

'दीवार में एक खिड़की रहती थी' इस प्रकार के अनेक प्रसंग छिपाए है अपने भीतर –

"कितनी चीजें होती है पर ये जान जाते है कि वे हमारे लिए नहीं है। छोटा सा बच्चा जान जाता है। छोटू जान गया था। देख लेने से वस्तुओं का पा लेने का सुख मिल जाता तो कितना अच्छा होता। ऐसा होता तो दिखाने के लिए थोड़ी चीजें होती और सबकी जरूरत पूरी हो जाती। अनजानी खुशी सोच–समझकर हुए दुःख को भी दूर कर देती थी।"

अमरकान्त की कथा 'दोपहर का भोजन' में अभाव का जैसा मार्मिक चित्र है, वैसा नहीं। अभाव को इस प्रकार चित्रित किया गया है कि वह अतिरिक्त करूणा जगाने का प्रयास नहीं लगता – "सोनसी नहा धोकर बासी बचा खाना खा लेती नहीं बचा होता तो, भूखी रहती।"

अपने अभाव के बावजूद वे एक गाय को भी रोटी देने पेड़ पर छिपे लड़के को भी। साग न बनने की बात भी इतने हल्के तरीके से कही जाती है कि लगता है यह वास्तविक बात है और वास्तव में निम्न मध्यम वर्ग में है भी।

नई चप्पल मिलने पर पिता का मन खिड़की से पार जाने का हुआ। कहने का तात्पर्य यह मन की प्रसन्नता ही वह खिड़की है जो निम्न मध्यमवर्गीय मन को तृप्त कर देती है। खाये पिये वर्ग के लिए यह खिड़की अप्राप्य है।

कथा में कोई खलनायक है तो यह अभाव ही। एक दूसरे संसार का निर्माण करती है यह सादगी पूर्ण जिन्दगी। मध्यमवर्गीय मन बिना व्यक्त किये एक चमत्कार की उम्मीद करता है। वह सोचता, जानता है कि बाजार उसका नहीं, उसके लिए नहीं परन्तु वह पूरी तैयारी से बाजार जाता है। अभाव

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जी. डी. बिनानी पी. जी. कालेज, मिर्जापुर (उ. प्र.)

उसका ऐसा कवच है जो बाजार से उसकी रक्षा करता है, परन्तु उम्मीद का दामन वह छोड़ता नहीं है – "पिता जब भी बाहर निकलते खाली झोला लेकर निकलते थे। उन्हें लगता था कि बहुत जरूरत की चीज बहुत सस्ते में कभी भी अचानक दिख जायेगी तो खरीद कर रखने के लिए झोला होना चाहिए। झोला नहीं भूलते थे। पैसे भूल जाते थे। जब पैसे नहीं होते तो याद आने पर भी नहीं रखते थे। कैसे रखते।"

सूक्ष्म से सूक्ष्म भी देखने की क्षमता रखते है विनोद जी। मध्यवर्ग में जो बच गया है वह सिर्फ सपने देखने की शक्ति और साहस।

प्रकृति भी एक तरह से इस उपभोक्तावाद के बचने में सहायता करती है। यहाँ 'बैक टू द नेचर' या 'लिव एकार्डिंग टू नेचर' एक फैशन नहीं शरणस्थली है।

चाय की दुकान पर रखी बेंच अनगढ़ सी है जिसे प्राकृतिक कहकर परिचित कराता है लेखक –

"चाय और पान की दुकान के सामने जमीन पर धँसी हुई लकड़ी की दो बेंचे थी, इतनी प्राकृतिक थी कि लगता था कि पेड़ पर बेंच की तरह उगी थी और काटकर इनके पायों को जमीन पर गाड़ दिया गया था।"

रघुवर प्रसाद व सोनसी के कमरे में एक खिड़की है जिसके दूसरी तरफ सपनों की जमीन है। वृक्ष है नदी है, बूढ़ी अम्मा है उसकी चाय है, उसकी टोकरी में जंगली फल है। रघुवर और सोनसी जो जीवन में नहीं पाते मानों इस खिड़की के पार जाकर पा लेते हैं। मन की इस काल्पनिक उड़ान का अत्यन्त काव्यात्मक वर्णन करते हैं विनोद जी इतना कि हम में से हर व्यक्ति अपने मन की इस अदृश्य खिड़की से झाँके तथा जो मानवीय और सौन्दयपूर्ण हमें नहीं मिल पा रहा है उसे पाने का अनथक प्रयास करें और न भी कर पाए तो रघुवर एवं सोनसी के सपनों में ही सुख पा ले। "रघुवर सहाय रिक्शे वाले से कहेंगे 'आकाश की तरफ ले चलो', फिर सोचेंगे आकाश की तरफ बहुत चढ़ाई करनी पड़ेगी। तब रिक्शे वाले से कहेंगे 'तुम रहने दो यहीं हमारा रास्ता देखना मैं रिक्शा ले जाता हूँ।' अपनी पत्नी को रिक्शा चलाते हुए वे आकाश की तरफ ले जायेंगे। ऊपर बादल के टुकड़े रिक्शे पर लद जायेंगे। बादल का कोई वजन नहीं होता।"

यदि जीवन में ऐसी कल्पनाशीलता न हो तो निम्नमध्यमवर्गीय जीवन सम्भव न हो। उपन्यास पढ़ते हुए कई बार लगता है कि हम स्वप्न देख रहे हैं। गद्य में छिपा पद्य व पद्य में छिपा गद्य कमाल की ऊर्जा उत्पन्न करता है। जीवन ही नहीं हिन्दी उपन्यास की जड़ता तोड़ने का कार्य भी करता है उपन्यास। कविता व उपन्यास को एक साथ जोड़ने का कार्य है इसमें एक कवि यदि उपन्यास लिखेगा तो इसी प्रकार एक नए प्रयोग होंगे उसमें। विष्णु खरे कहते हैं –

एक सुखदतम अचंभा यह है कि इस उपन्यास में अपने जल, चट्टान, पर्वत, वन, वृक्ष, पशुओं–पक्षियों, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्र, हवा, रंग, गंध और ध्वनियों के साथ प्रकृति इतनी उपस्थित है कि कितनी रेणु के गल्प के बाद कभी नहीं रही।

बच्चों के आने से इस चहारदीवारी में एक खिड़की और खुल जाती है। विभागाध्यक्ष उस खिड़की की तलाश में जाते हैं परन्तु उन्हें वह नहीं गोबरलिपि पगड़ण्डी नहीं मिलती। निराशा से वे सोचते हैं कि उन्हें "पीछे के सौन्दर्य को पत्नी बच्चों के सामने इतना नहीं बखानना चाहिए था" विनोद कुमार जी एक विशेष बात विभागाध्यक्ष के माध्यम से कहते हैं। "किसी की खिड़की को रास्ता बनाना ठीक नहीं। रास्ता मिल जाएगा तो वे जायेंगे।" वास्तव में यह खिड़की तब ही मिल सकती है जब सोनसी व रघुवर की तरह बकरी के बच्चे पेड़, पक्षी सबमें रूचि ली जाय। रघुवर प्रसाद अपने काले रंग की तुलना केवल मनुष्यों से नहीं पेड़, पक्षी तथा हाथी से भी कहते हैं। महावत उनसे हाथी पर जूते उतार कर बैठने को कहता है। प्राचार्य द्वारा हाथी को न लाने के आदेश पर वे आहत होकर हाथी के पक्ष में तर्क करते हैं।

भाषा की दृष्टि से विनोद कुमार जी कई शैली इजाद कहते हैं। एक जो सामान्य लोगों से, एक दूसरी भाषा पत्नी से बोलते समय, जो काव्यात्मक सी हो जाती है। पूरा परिवार आपस में आंचलिकता लिए हुए भाषा में बोलता है। कभी–कभी कहे हुए से अलग हटकर अनकहा भी सुना जाता है। ऐसे दृश्य अद्‌भुत है। उपन्यास के बँधे बँधाए ढ़ाचे की मांग करने वाले साहित्य के लचीलेपन को नहीं जानते –

"दो और दो को जोड़ हमेशा चार कहाँ होता है।
सोच समझ वालों को थोड़ी नादानी दे मौला।"

"सोनसी ने चुपके से सोचा था इसलिए रघुवर प्रसाद ने नहीं सुना।" पति पत्नी के कोमल एवं पवित्र प्रेम के दृश्य में – "मैं कसौटी पत्थर पर लेट जाऊँगा और आकाश को देखता रहूँगा। मैं भी खिड़की से तुम्हारे देखे हुए आकाश को देख लूँगी। रघुवर प्रसाद का आकाश देखना चिट्‌ठी लिखना होगा। चन्द्रमा सोनसी के लिए लिखा हुआ सम्बोधन होगा।"

मानवीय सम्बन्धों की उष्मा शुक्ल जी की कविताओं में भी दिखता है –

हताशा में एक व्यक्ति बैठ गया था।
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था
हताशा को जानता था।
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया।
मैंने हाथ बढ़ाया मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ।
मुझे वह नहीं जानता था।
हाथ बढ़ाने को जानता था।
हम दोनों साथ चले।
दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे
साथ चलने को जानते थे।

बूढ़ी अम्मा स्वयं बालू से स्वर्ण कण ढूढ़ती है परन्तु सोनसी को सोने का कंगन देती है। रघुवर प्रसाद की माँ छोटू पत्नी एवं पिता एक दूसरे से अटूट रूप से जुड़े हैं। बिना शोर किये त्याग करने की प्रवृत्ति है। घर के सदस्य ही नहीं साधु, हाथी, बीड़ी पीने वाला लड़का तथा उसके पिता, बूढ़ी अम्मा, पड़ोसी, प्राचार्य तथा विभागाध्यक्ष सभी मदद के लिए तत्पर है। प्राचार्य तथा विभागाध्यक्ष दोनों रघुवर के लिए साइकिल का प्रबन्ध करना चाहते हैं। हाथी की देखभाल के लिए ली गयी छुट्‌टी का आवेदन पत्र फाड़ देते हैं। विष्णु खरे के शब्दों में कहे तो "भारतीय निम्न मध्य वर्ग को लेकर जितनी गहरी समझ व सहानुभूति विनोद कुमार के पास है, उतनी और किसी उपन्यासकार में नहीं दिखाई देती। मेरे मन में इसे लेकर जरा भी संदेह नहीं है कि रेणु के बाद से स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी के सबसे बड़े उपन्यासकार हैं। भारतीय गल्प लेखन में ही उन जैसी प्रतिभाएँ कम ही हैं।"

जिस समय में कहा जाता है –

"इस बन्द कमरे में मेरी सांस घुटी जाती है।
खिड़कियाँ खोलूँ तो जहरीली हवा आती है।।"

विनोद कुमार शुक्ल जी एक ऐसी खिड़की खोलकर जो बाहरी आँधी से निर्लिप्त हो, शीतल हवा प्रसारित करें, संतोष और ऊर्जा से भर देते हैं।

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 140-144

भाषा एवं साहित्य का समकालीन परिदृश्य

बाल–पत्रिकाएं : अतीत, वर्तमान दशा एवं दिशा

डॉ. प्रीति सागर

"बच्चे राष्ट्र की आत्मा हैं क्योंकि यही हैं जिनको लेकर राष्ट्र पल्लवित हो सकता है, यही है जिनमें अतीत सोया हुआ है, वर्तमान करवटें ले रहा है और भविष्य के अदृश्य बीज बोए जा रहे हैं।" बच्चों के लिए कही गई उपर्युक्त उक्ति बच्चों के महत्त्व को ही रेखांकित नहीं करती वरन् उन्हें एक सही दिशा देने के लिए भी सचेत करती है। पत्रकारिता ने हमेशा ही समाज के पथ–प्रदर्शक का कार्य किया है। बाल–पत्रकारिता भी इसका अपवाद नहीं है। बाल–पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण अंग हैं बाल–पत्रिकाएं। बाल–पत्रिकाओं का कार्य बच्चों के मानसिक स्तर तक उतरकर रोचक ढंग से जानकारी देना एवं उनके भविष्य को सकारात्मक दिशा देने वाला साहित्य उपलब्ध कराना है। बाल–पत्रिकाओं का केन्द्र बालक और बाल–मनोविज्ञान ही होता है। बाल–पत्रिकाएं सामान्य पत्रिकाओं से इस मायने में भिन्न हैं कि इसमें बच्चों की कल्पनाएं, आकांक्षाएं एवं सपने मूर्त रूप पाते हैं। बाल–पत्रकारिता का लक्ष्य बच्चों को आधुनिक जीवन परिस्थितियों से जोड़कर एक सुयोग्य नागरिक बनाना तथा अतीत एवं वर्तमान की जानकारी देते हुए उनके भविष्य की दिशा निर्धारित करना है। बच्चों के जीवन की समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करते हुए उनका मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन करना है और इस प्रकार बच्चों के मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास का उपादान बनना है। वस्तुतः बाल–पत्रिकाओं के लक्ष्य एवं कसौटी बच्चे ही हैं और ये बच्चों के सर्वतोमुखी विकास के कई आयामों को पूर्णता प्रदान करती है।

हिंदी बाल–पत्रिकाओं की पृष्ठभूमि जानने के लिए पिछली दो सदियों में झाँकना होगा। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में बच्चों को जानने समझने के प्रयास शुरू हुए और बच्चों को केन्द्र बनाकर बाल–साहित्य सृजन किया जाने लगा। बाल–साहित्य की विविध विधाएं अस्तित्व में आईं, जिनको बच्चों तक पहुँचाने के लिए ही बाल–पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। हिंदी बाल–पत्रिकाओं के उद्भव एवं विकास यात्रा को पिछली दो सदियों में समझना समीचीन होगा।

19वीं सदी और बाल–पत्रिकाएं

उन्नीसवीं सदी हिंदी साहित्य के इतिहास में ही नहीं वरन् हिंदी बाल–साहित्य के इतिहास में भी मील का पत्थर है। स्वतंत्र रूप से हिंदी बाल–साहित्य की विधिवत् शुरूआत भारतेंदु युग में हुई क्योंकि प्राचीन काल में बाल–साहित्य की अवधारणा नहीं थी और साहित्य–सृजन का लक्ष्य बच्चे नहीं थे। उस समय बड़ों के लिए लिखे गए साहित्य के कुछ अंशों को बच्चों के लिए भी रुचिकर एवं उपयोगी होने के कारण बच्चों के द्वारा अपना लिया गया। प्रारम्भिक बाल–साहित्य पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से आना शुरू हुआ। ब्रिटिश शासन काल में भारतीयों को आधुनिक शिक्षा देने के लिए खोले गए स्कूलों के पाठ्यक्रम में बालोपयोगी रचनाओं को सम्मिलित किया गया। इन पाठ्य पुस्तकों से बाल–साहित्य सृजन को गति एवं दिशा मिली। भारतेंदु युग से पूर्व का मौलिक या अनूदित साहित्य पाठ्य पुस्तकों के रूप में था। कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज में कार्यरत सदलमिश्र द्वारा संस्कृत ग्रंथ 'नासिकेतोपाख्यान' के हिंदी अनुवाद तथा फोर्ट विलियम कॉलेज के ही लल्लूलाल द्वारा संस्कृत से हिंदी में अनूदित 'बेतालपंचविंशतिका' तथा 'सिंहासनबत्तीसी' के आधार पर हिंदी में बच्चों की नैतिक शिक्षा प्रारम्भ हुई। इनमें बाल–साहित्य के तत्त्व विद्यमान थे और तत्कालीन समय में ये बच्चों में लोकप्रिय हुईं। इसके पश्चात् राजाशिवप्रसाद सितारेहिंद ने बच्चों के लिए कुछ रचनाएं जैसे 'राजा भोज का

रीडर, साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा–442001; महाराष्ट्र

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

सपना', 'बच्चों का ईनाम', 'बालबोध', 'वीरसिंह का वृत्तान्त' प्रस्तुत कीं जो विशुद्ध रुप से पाठ्य-पुस्तकें थीं लेकिन इनमें बच्चों के मनोरजंन के तत्त्व भी विद्यमान थे। ये साहित्य बच्चों के मनोरंजन के लिए उपयोगी तो था लेकिन उसकी भाषा बच्चों की रुचि के अनुकूल नहीं थी। नवसृजित बाल-सहित्य को बच्चों तक पहुँचाने का माध्यम बाल-पत्रिकाओं को बनाया गया। डॉ0 सुरेन्द्र विक्रम ने हिंदी बाल-साहित्य की शुरूआत भारतेंदु युग से मानते हुए पहली बाल-पत्रिका के प्रकाशन के संबंध में लिखा है, "भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से 1882 में बालदर्पण नामक बच्चों की पहली पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।"[1] उक्त पत्रिका इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थी। आलोच्य सदी के अंतिम दशक में लखनऊ से बच्चों की मासिक पत्रिका 'बालहितकर' सन् 1891 में प्रकाशित हुई। यद्यपि इस समय बहुत कम बाल- पत्रिकाएं अस्तित्त्व में आईं तथापि इन संक्षिप्त प्रयासों से ही हिंदी बाल-साहित्य को बहुत बल मिला।

20वीं सदी और बाल-पत्रिकाएं

उन्नीसवीं सदी में हिंदी बाल-पत्रिकाओं की संख्या गिनी-चुनी थी, वहीं बीसवीं सदी में बाल-पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गई। इनके माध्यम से न केवल प्रभूत राशि में बाल-साहित्य अस्तित्त्व में आया वरन् बाल-- साहित्य को स्वतन्त्र और साहित्यिक स्वरूप भी मिला। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक पाँच दशकों की इन बाल-पत्रिकाओं में मनोरजंक एवं नीतिप्रधान साहित्य के प्रकाशन को प्राथमिकता दी गई। इस समय 1906 में बनारस से किशोरीलाल गोस्वामी की 'बालप्रभाकर,' 1906 में ही अलीगढ़ से 'छात्रहितैषी', 1911 में मेरठ से विनोद बिहारी की 'बाल-हितैषी', 1914 में प्रयाग से पं0 रामजीलाल शर्मा की 'विद्यार्थी', 1914 में आगरा से पं0 गणेशदत्त शर्मा इन्द्र की 'बालमनोरजंन', 1915 में इलाहाबाद से पं0 सुदर्शनाचार्य की 'शिशु', 1917 में 'बालसखा', 1926 में पं0 रघुनंदन शर्मा की 'खिलौना', 1927 में विश्वप्रकाश की 'बालक', 1931 में प्रयाग से रामनरेश त्रिपाठी की 'वानर', 1932 में कुंवर सुरेश सिंह की 'कुमार', 1936 में मुरादाबाद से 'बालविनोद', 1942 में रामकृष्ण शर्मा की 'हमारे बालक', नरसिंहपुर से 'मॉनीटर', 'मदारी', 'तितली' आदि पत्रिकाएं अस्तित्त्व में आईं।

यद्यपि इनमें से अधिकांश पत्रिकाओं का जीवनकाल कम ही रहा तथापि 'बालसखा', 'शिशु' 'खिलौना', 'कुमार', 'वानर' आदि का योगदान उल्लेखनीय एवं सराहनीय रहा। इन पत्रिकाओं ने बाल-साहित्य की संभावनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया और बाल-साहित्य की प्रचलित विधाओं के विकास को गति दी। इस समय की हिंदी बाल-पत्रिकाओं का लक्ष्य बच्चों में आदर्शवादी स्वरूप निर्मित करना था। अतः उपदेशपरक, नीतिप्रधान एवं शिक्षाप्रद रचनाएं प्रकाशित की गई, साथ ही बच्चों में देशप्रेम एवं सामाजिक चेतना जाग्रत करने के प्रयास भी किए गए। मिशनरी होते हुए भी इस समय की बाल-पत्रिकाओं में मनोवैज्ञानिकता एवं विज्ञान के प्रति चेतना का विकास हो चुका था। इस वाक्य की पुष्टि हेतु 'कुमार' बाल-पत्रिका के संपादकीय का अंश द्रष्टव्य है, "हम अपने बालकों के सामने केवल वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करें; जिससे उन्हें मानवीय जीवन और संसार के प्रति अपने-अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने में सहायता मिले.....।"[2] स्पष्ट है कि ये बाल-पत्रिकाएं मिशनरी होते हुए भी वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न थीं।

बीसवीं सदी के अंतिम पाँच दशकों की बाल-पत्रिकाएं पूर्व युग के पाँच दशकों से किंचित् भिन्न रही हैं और यह भिन्नता परिस्थितियों एवं युग मूल्यों के कारण है। चूँकि परिस्थितियाँ एवं मूल्य समयानुसार बदलते रहते हैं और पत्रिकाओं का एक लक्ष्य युगानुरूप मूल्यों की प्रतिष्ठा, रक्षा एवं विकास को सुनिश्चित करना भी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से बीसवीं सदी के अंत तक अनेक बाल-पत्रिकाएं अस्तित्त्व में आई जिनमें बच्चों के लिए विविध विषयक सामग्री उपलब्ध कराकर उनके सर्वतोमुखी विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।

अधिकतर बाल पत्रिकाओं में परम्परावादी एवं नीतिपरक बाल–साहित्य की सीमा से आगे बढ़कर नए–नए विषयों और विचारधाराओं से पूर्ण बाल–साहित्य प्रस्तुत किया गया। कई नई विधाएं भी अस्तित्त्व में आई जैसे पराग एवं नंदन पत्रिकाओं ने 'शिशुगीत' विद्या की शुरूआत की। कई बाल–पत्रिकाओं ने विशेषांक प्रकाशित कर बाल–पाठकों को अपना मुरीद बना लिया और व्यापक बाल–पाठक वर्ग की चहेती पत्रिका के रूप में लोकप्रिय हुई जैसे नंदन पत्रिका का नवम्बर, 1971 का जासूसी कहानी विशेषांक आदि।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो–तीन दशकों में कई उल्लेखनीय बाल–पत्रिकाएं सामने आई जैसे सरस्वती बाल कल्याण न्यास, इंदौर द्वारा 1979 में 'देवपुत्र', प्रकाशन विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली की 'बाल–भारती', 1996 में राजस्थान से 'बालवाटिका', 1996 में ही नई दिल्ली से 'पाठक मंच बुलेटिन', 1998 में भोपाल से 'स्नेह', 1998 से ही उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा 'बालवाणी' 1999 में जयपुर से 'बच्चों का देश' आदि।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में कला, साहित्य और विशेषकर विज्ञान के क्षेत्र में तेजी से घूमते परिवर्तन चक्र ने हिंदी बाल–पत्रिकाओं को भी प्रभावित किया। बाल–पत्रिकाओं में बच्चों को यथार्थ से जोड़ने वाला तथा कल्पनाओं को मूर्त रुप प्रदान करने वाला साहित्य उपलब्ध कराने को प्राथमिकता दी जाने लगी तथा प्रचलित साहित्यिक विद्याओं में प्रयोग किए गए। इस समय सूचनात्मक बाल–साहित्य जिसका आधार विज्ञान है, के सृजन को बढ़ावा दिया गया ताकि बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो सके तथा वे सम्पूर्ण विश्व पटल पर तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों को शीघ्रता एवं सहजता से ग्रहण कर सकें। 'नंदन', 'सुमन–सौरभ', 'बालहंस', 'बालभारती', 'बच्चों का देश', 'बालभास्कर' आदि पत्रिकाओं में वैज्ञानिक एवं सूचनात्मक बाल–साहित्य को बढ़ावा दिया गया। पूर्णतः विज्ञान पत्रिकाएं जैसे 'अंकल हाथी', 'परिबोध', 'विज्ञान आपके लिए' आदि भी सामने आई। इस समय आयुवर्ग के आधार पर भी बाल–पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू किया गया। अभी तक की अधिकांश पत्रिकाएं 6 वर्ष से 16 वर्ष तक के बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निकाली जाती थीं लेकिन इस युग में शिशु, बालक एवं किशोरों को एक दूसरे से पृथक मानते हुए कुछ पत्रिकाएं निकलीं। भोपाल की 'एकलव्य' संस्था ने 1984 के बाद तीन पत्रिकाएं 'चकमक', 'शैक्षिक संदर्भ तथा 'शैक्षिक पलाश' क्रमशः बच्चों, तरुणों एवं किशोरों के लिए प्रकाशित कीं। होशंगाबाद से 'किशोर भारती', 'किशोर लेखनी' आदि पत्रिकाएं प्रकाशित हुई।

21वीं सदी और बाल–पत्रिकाएं

21वीं सदी में विश्व पटल पर परिस्थितियाँ बहुत तेजी से बदल रही हैं जिसके कारण मनुष्य की सोच और जीवन–शैली में बहुत अंतर आ चुका है, बच्चे भी इससे अछूते नहीं हैं। आज के बच्चों पर प्रभाकर माचवे की यह पक्तियाँ बहुत सटीक बैठती हैं–"अब न खेले कोई कंचे, / उन्हें चाहिए सिर्फ तमंचे। / नहीं कबड्डी अथवा कुश्ती, / लिखना पढ़ना, आती सुस्ती। / अब बूझो 'क्विज' तो हम मानें / अब के बच्चे कितना जानें। / अब के बच्चे नहीं हैं भोले। अब के बच्चे जगत टटोलें।" बाल–साहित्य के मर्मज्ञ जयप्रकाश भारती ने तो इक्कीसवीं सदी को बालकों की सदी घोषित किया है, "इक्कीसवीं सदी बालक की सदी होगी। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बालक के बारे में समझ–बूझ के साथ चिंतन की शुरूआत हुई है। इक्कीसवीं सदी से बालक केन्द्र में होगा। उसकी समस्याओं, उसके स्वास्थ्य, उनके मनोविज्ञान तथा बालक की पुस्तकों को लेकर अनुसधांन और चितंन तीव्र गति से होगा। बालक को मिनी बह्माण्ड ही मानना चाहिए। उसको ठीक–ठीक जानने समझने के लिए बहुमुखी प्रयास किए जाने चाहिए।"

बाल–पत्रिकाएं हर युग में यह दायित्व निभाती रही हैं लेकिन इक्कीसवीं सदी में

बाल–पत्रिकाओं पर बच्चों की निर्भरता कम होती जा रही है। पहले कॉमिक्स बाल–पत्रिकाओं के अस्तित्व के लिए खतरा बन कर उपस्थित हुईं और फिर इलेक्ट्रानिक मीडिया के प्रभाव से बच्चे कार्टूनों के मकड़जाल में उलझ गए और आज तो बच्चों के पास मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन के अनगिनत साधन उपलब्ध हैं। इलेक्ट्रानिक उपकरणों के बढ़ते वर्चस्व से बाल–पत्रिकाओं के अस्तित्व पर मंडराते खतरे के बादल सचेत करने के सकेत हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया की चमकीली दुनिया से बच्चों को पुनः बाल–पत्रिकाओं की ओर आकर्षित करने के लिए समयानुरूप बदलाव किए जाने आवश्यक हैं। इस संबंध में बाल–पत्रिकाओं के प्रति बच्चों की अरुचि के कतिपय कारण और सुझाव अग्रलिखित हैं –

1. वर्तमान में अधिकांश बाल–पत्रिकाएं बच्चों को अतीत एवं कल्पनालोक की ही सैर कराती हैं। परम्परागत विचारधारा की पोषक होने के कारण उनमें नई दृष्टि का अभाव है। अतः बाल–पत्रिकाओं की विषय–वस्तु को बदलना आवश्यक है। महादेवी वर्मा ने बच्चों के साहित्य की रचना के विषय में कहा था, "हमारे युग में चंदामामा उतरा करते थे थाली में, पानी में, परन्तु आज का बालक जानता है कि वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। वातावरण में ज्ञान–विज्ञान फैल गया है, बालक इससे अपरिचित नहीं हैं।"[3] अतः आज के समय में कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट आदि से टक्कर लेने के लिए परम्परागत सामग्री से युक्त बाल–पत्रिकाओं के कलेवर, विषयवस्तु, भाषा–शैली और प्रस्तुतिकरण में व्यापक फेरबदल की आवश्यकता है।

2. बाल–पत्रिकाओं में कहानी, कविता आदि के अतिरिक्त अन्य विधाओं का समावेश भी किया जाना चाहिए ताकि बच्चों में साहित्यिक संस्कार निर्मित हो सकें। बाल–पत्रिकाओं में विज्ञान, इतिहास, पुरातत्व आदि विषयों के अतिरिक्त सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक यथार्थ से परिचित कराने वाली सामग्री रखनी चाहिए जिससे वे जीवनोपयोगी बातों को अपनाकर स्वयं समाजोपयोगी बन सकें।

3. बच्चों को बाल–पत्रिकाएं पढने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। वर्तमान में बाल–पत्रिकाओं का विस्तार सीमित वर्ग विशेषकर मध्यवर्ग तक है। अतः स्कूलों एवं स्थानीय पुस्तकालयों में बाल–पत्रिकाओं के पठन और वाचन को बढावा दिया जाना चाहिए। इस अध्ययन से ही उन्हें जीवन की अनेक समस्याओं का सामना करने की सीख मिलेगी। जैसा कि डा. श्री प्रसाद का भी मत है, "जिन्होंने बाल्यावस्था में केवल पुस्तकें पढ़ी हैं। बाल साहित्य का अध्ययन नहीं किया है, उनमें वास्तविक साहित्य के प्रति संस्कार उत्पन्न होने में कठिनाई होती है।... बाल कहानी, बाल उपन्यास, बाल नाटक आदि के द्वारा बालकों का केवल ज्ञान ही विकसित नहीं होता, उनके जीवन में अतिरिक्त सरसता भी आ जाती है। अपने जीवन की अनेक समस्याओं का उन्हें समाधान भी प्राप्त होता है।"[4]

4. संचार कान्ति के कारण बच्चों की अभिरुचि तेजी से एक अनचाही दिशा की ओर बढ़ रही है। वे नैतिक मूल्यों से रहित होते जा रहे हैं। हर बात को तर्क की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करते हैं। बाल पत्रिकाओं में इन बिंदुओं पर ध्यान दिया जाना जरूरी है।

5. आयु वर्ग के आधार पर शिशु एवं किशोर वर्ग के लिए उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए और पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाना चाहिए।

6. बाल–पत्रिकाओं के प्रकाशन को व्यवसायिक रूप दिया जाना चाहिए साथ ही बाल–पत्रिकाओं की साज–सज्जा पर भी ध्यान दिए जाने की जरूरत है ताकि बच्चे उनको पढ़ने के लिए प्रेरित हों।

19वीं सदी से लेकर वर्तमान समय तक की हिंदी बाल–पत्रिकाओं के स्वरूप में परिवर्तन होते रहे हैं। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव ने बाल–पत्रिकाओं के समक्ष कई चुनौतियाँ

खड़ी कर दी हैं। आज के बच्चों पर इनका असर कम होता जा रहा है फिर भी बाल–पत्रिकाओं के महत्त्व को कमतर नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि शब्द की सत्ता सर्वोपरि है। आज भी बच्चो में कल्पनाशक्ति, सृजनात्मकता, अनुसंधानवृत्ति एवं विश्लेषण–क्षमता विकसित करने में बाल पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संभवतः इसी कारण इलेक्ट्रानिक मीडिया के प्रभाव को नकारते हुए हरिकृष्ण देवसरे ने बाल–साहित्य के संबंध में, जो प्रथमतः बाल पत्रिकाओं में ही स्थान पाता है, आशावादी विचार व्यक्त किए हैं, "बाल साहित्य की संभावनाएं अपार हैं। आज के बच्चे पहले के मुकावले कहीं अधिक पुस्तकें पढ़ रहे हैं। इसलिए मुझे नहीं लगता कि इंटरनेट या टीवी बच्चों को बालसाहित्य से विमुख बनाएगा क्योंकि वे तो जिज्ञासा को बढ़ाते हैं और जिज्ञासा शन्ति के लिए पुस्तकें पढ़ना अनिवार्य हो जाता है।"

उपर्युक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि बाल–पत्रिकाओं का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है। इन्हें आज की बालपीढ़ी के मन का आइना बनाया जाना चाहिए ताकि बच्चे उनमें अपना सच्चा एवं वास्तविक प्रतिरूप पाएं। बाल–पत्रिकाओं में समयानुरूप बदलाव तथा व्यापक प्रचार–प्रसार निश्चित ही देश के भावी कर्णधारों को स्वर्णिम भविष्य प्रदान करेगा। बाल–पत्रिकाओं का महत्त्व सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है क्योंकि बाल–पत्रिकाओं में बच्चों के मनोरजंन के एवं जीवन–निर्माण से संबंधित विषयों का प्रकाशन होता है। इनकी विविध विषयक सामग्री बच्चों के मन–मस्तिष्क को कल्पना की उड़ान पर ले जाती है, उन्हें सृजन के लिये प्रेरित करती है, उनमें साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्कार निर्मित करती है। बच्चों की प्रतिभा एवं कल्पना को रचनात्मक रूप में परिवर्तित करके साहित्यकार, कलाकार और वैज्ञानिक आदि बनने की राह दिखाती है। सहज और प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति के अधिकतम अवसर उपलब्ध कराके बच्चों को मानवीय गुणों से युक्त सुयोग्य नागरिक बनने में मदद करती है। बाल–पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य की विविध विधाएं बच्चों में सौन्दर्य बोध और व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि विकसित करती हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. भाषा, मई–जून 2007, पृष्ठ 21, हिंदी बाल साहित्य का इतिहास, लेखक डॉ0 परशुराम शुक्ल
2. कुमार, बाल–पत्रिका, जनवरी, 1940
3. महादेवी वर्मा उद्घाटन भाषण, बाल साहित्य की रचनालय आख्या, सितम्बर–अक्टूबर 1964
4. आज, भारत 1975, विशेषांक, 'हिंदी बाल–साहित्य एक सर्वेक्षण', लेखक डॉ0 श्री प्रसाद

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 145-149

बहुजन समाज का स्याह यथार्थ

दलित विमर्श के नए आयाम

✍ **डॉ. आनन्द स्वरूप शुक्ल**
✍ **हृदय नारायण अवस्थी**

सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में इक्कीसवीं सदी का आंकलन तमाम तरह के प्रश्न उत्पन्न करता है। भारतीय समाज की मानसिक द्वन्द्वता अपने पूरे आयाम को समेटे हुए प्राचीन और आधुनिकता के मध्य घड़ी के लोलक की भांति गति कर रही है। इस सदी में जहां हम भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने की कल्पना करते हैं वही हम स्वयं अपने आचरणों एवं व्यवहार से अठारहवीं सदी की मानसिकता में जीने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई पड़ते हैं। समाज में वर्तमान सदी तक जहां समता, समानता और बन्धुता का प्रकाश फैलना चाहिए था वहां हम आज भी उपेक्षा, दलन और शोषण की परंपरा को प्रवाहित होने में मदद कर रहे हैं। शोषण और दालित्य को बनाये रखने के लिए पूँजीवाद और ब्राह्मणीय मानसिकता ही निरंतर जिम्मेवार रहे हैं और आज भी स्वयं को श्रेष्ठ मानने वाली अर्थात् ब्राह्मणीय व्यवस्था के साथ ही साथ पूँजीवाद भी विशालकाय राक्षस की भांति दबे-कुचलों का शोषण जारी रखे हुए है।

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने भारत को विकसित राष्ट्र की परिधि में लाने के लिए उसके सामाजिक संगठन को चुस्त-दुरस्त करने का प्रयास किया। वे समाज में समता और समानता के स्तर पर ही बन्धुता को स्वीकार करते हैं। समता और समानता के आड़े आने वाली श्रेष्ठता की मानसिकता और पूँजीवाद जो एक वर्ग विशेष की स्वतंत्रता और समानता की मांग को हमेशा से दबाता आ रहा है उससे संघर्ष कर कमजोर और दलित अपना अधिकार और सम्मान प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की आकांक्षा रखने वाले हर समाज को संघर्ष की प्रेरणा देते हुए डॉ0 अम्बेडकर कहते है–"मेरे विचार से इस देश के दो दुश्मन हैं, ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद........! ब्राह्मणवाद से हमारा आशय स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावनाओं के निषेध से है। यद्यपि ब्राह्मण इसके जनक हैं, लेकिन यह ब्राह्मणों तक ही सीमित न होकर सभी जातियों में घुसा है।"[1]

अम्बेडकर और अम्बेडकरवादियों में आज वही अन्तर है जो गांधी और गांधी के अनुयायियों के बीच। अम्बेडकर देश को समता और बन्धुता का पाठ पढ़ाकर सामाजिक परिवर्तन की आंकाक्षा अपने सम्पूर्ण जीवन में पाले रहे किन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक वर्ग जो स्वयं को अम्बेडकरवादी विचार धारा का पोषक बताकर प्रसारित कर रहा है वह अंम्बेडकर की दूरदर्शिता को नहीं छू पाया। दलित, शोषित और उत्पीड़ित केवल एक वर्ग या जाति विशेष में हो ऐसा नहीं। सामाजिक स्तर पर भले ही थोड़ा सा भी सम्मान प्राप्त करने वाला आर्थिक दृष्टि से कमजोर और गरीब भी दलित और शोषित की परिधि में आता है। अंम्बेडकर की दूरन्देशी सोच का वर्तमान दलित दृष्टिकोण उपेक्षित कर रहा है। आज अम्बेडकर को एक वर्ग विशेष की बात कहने वाले के तौर पर पेश किया जा रहा है, जो न केवल अंम्बेडकर का अपमान है बल्कि उनकी नैतिक और विस्तृत विचारधारा को संकीर्ण बनाने और मानने का प्रयास जारी है। "अब वह सिर्फ हाशिए की जातियों के उद्धार में अपने अप्रतिम योगदान के लिए याद किये जाते हैं। निस्संदेह भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के भीतर आत्मगौरव का भाव भरा। लेकिन शायद हम यह भूल गये कि वह सिर्फ क्रांतिकारी दलित ही नहीं थे, बल्कि एक दूरदर्शी लोकतंत्र कामी भी थे, जिनकी जिन्दगी और विचार जाति और धर्म से परे सभी भारतीयों को विवेकशील, ज्ञान सम्पन्न बना सकते हैं"[2]

✍ रीडर हिन्दी-विभाग हिन्दी विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर
✍ शोध-छात्र-हिन्दी विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर

भारतीय गणतंत्र सातवें दशक में प्रवेश कर चुका है साठ साल के लम्बे अनुभव के बाद भी गणतन्त्र की मशीनरी पूरी तौर पर संविधान की आकांक्षा और अपेक्षा पर खरी नहीं उतरी है। समानता और समता को पोषित करने वाला संविधान राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण उपेक्षित और तिरस्कृत होकर हास्यास्पद प्रतीत हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन की आशा लगाए गरीब और बेसहारा आज भी उतना दमित और पीड़ित है जितना कि पहले था। संविधान से संरक्षण प्राप्त आरक्षण केवल उन्हें लाभ पहुँचा रहा है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं भले ही वे सामाजिक स्तर पर वर्ण–व्यवस्था के चलते निम्न वर्ग से आते हों। आर्थिक लाभ लेने के लिए दलित स्वयं अपने वर्ग के गरीब और कमजोर लोगों का शोषण करने में नहीं चूकते। राजनैतिक मंच पर समानता और समता का उद्घोष निरंतर जारी है पर सामाजिक स्तर पर भेदभाव, उत्पीड़न और शोषण से उत्पन्न असमानता का दौर भी चल रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज की दोहरी मानसिकता जिसमें एक ओर मत और राजनीति के क्षेत्र में समानता है किन्तु सामाजिक संरचना में असमानता का वातावरण निरन्तर पूँजीवाद की ओर से जारी है। डॉ0 अम्बेडकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान लागू होने के बाद अपनी आशंका और संवेदना को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं "भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतः अभाव है। इनमें से एक समानता। सामाजिक क्षेत्र में हमारे भारत का समाज वर्गीकृत असमानता के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसका अर्थ है, कुछ लोगों के लिए उत्थान एवं अन्यों की अवनति। आर्थिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि समाज में कुछ लोगों के पास अथाह सम्पत्ति है जबकि दूसरी ओर असंख्य लोग घोर दरिद्रता के शिकार है। 26 जनवरी, 1950 को हम लोग एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति के क्षेत्र में हमारे बीच समानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक मत एवं एक मत एक मूल्य के सिद्धान्त को स्वीकृत देंगे। पर अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के चलते एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धान्त को अस्वीकार करना जारी रखेंगे। हम कब तक विरोधाभासी जीवन को जीते रहेंगे, अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में समानता को अस्वीकार करते रहेंगे?"[3]

वर्तमान दलित चिंतन और दलित विमर्श जिस प्रकार से गांधी को नकारने का क्रम जारी रखे हुए है वह केवल सामाजिक समता के स्थान पर समाज के विखंडन को बढ़ावा देने का प्रयास भर है। आज का दलित विचारक राजनैतिक लाभ लेने के लिए तथा समाज के हाशिए के लोगों को उकसा कर उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए गांधी और अम्बेडकर की कटुता को हवा दे रहा है। किन्तु वह गांधी और अम्बेडकर की मानसिकता में जाकर उनकी संवेदना में झाँकने का प्रयास बिल्कुल भी नहीं करता। अस्पृश्यता आन्दोलन की असफलता को देखते हुए गांधी की मंशा थी कि समाज में हृदयपरिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। पृथक मतदाता मंडल की अंम्बेडकर की मांग को गांधी ने इस लिए आप्त्तिजनक माना कि यदि सामाजिक परिवर्तन की प्रारम्भिक प्रक्रिया को पृथकता के आधार पर विभाजित कर दिया तो अछूत हमेशा के लिए अछूत बने रहेंगे। अंम्बेडकर की पृथक मतदाता मंडल की मांग आज के राजनैतिक और आर्थिक युग में स्वतः ही अप्रासंगिक है किन्तु अम्बेडकरवादी अपनी खीझ को गांधी की नैतिकता को कोस कर व्यक्त करते हैं।

मानवीय संवेदनओं के साथ गहराई तक बैठी अस्पृश्यता की जड़ें, जो अपना बजूद केवल व्यक्ति परक बनाए हुए हैं, उसे अपने स्थान से विचलित करने के लिए मनुष्य की संवेदना को झकझोर कर सामाजिक संरचना की ओर उन्मुख करना उस समय भी अनिवार्य था और आज भी अपरिहार्य है। गांधी जी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए जो प्रारम्भिक कदम उठाये वे इन तथ्यों की पुष्टि करते हैं। डॉ0 अंबेडकर अस्पृश्यता के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचारों से असंतुष्ट थे। वे दलितों का उत्थान सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी को मानते थे। जबकि गांधी जी समाज के हृदय को परिवर्तित करके अस्पृश्यता और शोषण का स्थाई हल निकालना चाहते थे। इसका सिर्फ अर्थ यह है कि दलितों की मुक्ति के लिए वे पृथकतावाद को अनिवार्य मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने दलितों की राजनीतिक पृथकता का विरोध किया, क्योंकि यह सामाजिक पृथकता को तर्क संगत बनाना था और

सामाजिक प्रभेद को एक दूसरे सिरे से उकसाना था। सामाजिक पृथकतावाद की जगह सामाजिक सुधार और न्याय की जरूरत थी। प्रति घृणा पर आधारित पृथकतावाद कभी भी तथाकथित ऊँची जातियों की गुलामी से दलितों की मुक्ति का सही रास्ता नहीं था।"[4]

आज जब बड़े पैमाने पर विभिन्न स्तरों पर अस्पृश्यता का लोप हो रहा है तब गांधी जी द्वारा पृथक मतदाता मंडल के विरोध की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य में अम्बेडकर की मांग का कोई औचित्य नजर नहीं आता। राजनैतिक भागीदारी केवल भौतिकवाद का पोषण करने का माध्यम है जबकि अस्पृश्यता का निवारण केवल सामाजिक संरचना को चुस्त–दुरूस्त करने पर ही संभव है "जब गांधी जी कहते हैं कि अस्पृश्ता का निवारण न धन से होगा, न बाह्य संगठनों से और यहां तक कि राजनीतिक सत्ता से भी नहीं होगा तो वे डॉ0 अंम्बेडकर को ही आध्यात्मवादियों की भाषा में व्यक्त कर रहे होते हैं। आध्यात्मवादी ऐसे प्रयांसो को भौतिक प्रगति प्राप्त करने के रूप में देखते हैं। आर्थिक अवसर का विचार धन के रूप में व्यक्त होता है। जबकि नागरिक अधिकार और सामाजिक भागीदारी राजनीतिक सत्ता के रूप में है।"[5]

वर्तमान दलित विमर्श के समक्ष एक–एक करके जैसे–जैसे तथ्य और विचार उभरते जाते हैं वैसे–वैसे नये–नये सन्दर्भ और तथ्यों को लेकर ऊहापोह की स्थिति में है। उसे जब जैसा कथन मिल जाता है वह उसी का प्रयोग करने लगता है। दलित खीझ भरी भाषा शैली का प्रयोग करने लगता है। दलित चिन्तकों की ओर से गांधी पर वर्ण–व्यवस्था का पोषक और हिन्दुधर्म का सरंक्षक होने का आरोप भी लगाया जाता है। लेकिन यह बहुत ही दुःखद है कि ऐसा आरोप लगाने वाला स्वयं कितना धर्म निरपेक्ष है इस सवाल के लिए न कोई मानक है और न ही कोई आधार। लोकतंत्र में स्वतंत्रता के अधिकार को प्राप्त करके मनमानी करने और कहने की परंपरा का विकास नयी सदी की बहुत बड़ी उपलब्धि है। भारतीय समाज में ही नहीं संपूर्ण विश्व की मानव जाति आस्था धर्म और परंपराओं से परिचालित है किन्तु गांधी के विषय में आरोपों–प्रत्यारोपों का सिलसिला भी इक्कीसवीं सदी में चल पड़ा है। गांधी जी धर्म निरपेक्ष थे और उनका दर्शन एवं विचार भी किसी धर्म विशेष को नहीं वरन् धर्म की आत्मा को अधिक महत्व आज भी दे रहा है और भविष्य में भी देता रहेगा।

धार्मिक मानदण्डों पर आधारित समाज और राजनीति सदैव नैतिक मार्ग पर चल कर आदर्श समाज निर्माण की ओर अग्रसर होता है। गांधी इस तथ्य को बहुत ही गहराई से देख पाये थे। व्यक्ति को सामाजिक बनाने तथा नैतिकता के अनुपालन में पूर्ण धार्मिक भावनाओं को जगाना बहुत ही महत्वपूर्ण है। जो मान्यताएं उसे भय और परलोक के मध्य स्वच्छ चरित्र बनाए रखने के लिए सदैव आशंकित रखती हैं उन मान्यताओं को अप्रासंगिक मानकर किसी विशेष परिवर्तन की उम्मीद करना व्यर्थ है। गांधी ने स्वच्छ समाज और शुद्ध राजनीति के लिए धार्मिक समाज के अन्तर्मन को सही दिशा देने के लिए धर्म की प्रासंगिकता को बरकरार रखा।

गांधी दर्शन और उनके दलित दृष्टिकोण को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की प्रवृत्ति को वर्तमान परिदृश्य में विभिन्न अध्येताओं और श्रेष्ठ विचारकों ने गांधी की धर्म सम्बन्धी विचारधारा को हिन्दु धर्म दर्शन की प्राचीन संस्कृति से पुष्ट माना है। हिन्दू धर्म की वैष्णव परंपरा को परपीड़ा और परदुःखकातरता जैसे विशद सामाजिक चिन्तन से जोड़ते हुए गिरिराज किशोर ने एक ओर हिन्दू दर्शन की प्राचीन चिंतन धारा को पुष्ट किया तो दूसरी ओर गांधी दर्शन को व्यापकता प्रदान की। गांधी के सामाजिक चिंतन की मूल अवधारणा को वैष्णव परंपरा से जोड़ते हुए गिरिराज किशोर लिखते हैं –" गांधी का पूरा चिंतन वैष्णव था यानि परपीड़ा को जानने का और समझने पर आधारित वह पीड़ा केवल व्यक्ति और उसके समाज की ही पीड़ा नहीं था, बल्कि उसका सरोकार हर प्राणी से था। ऐसा न हुआ होता तो गांधी को किसी ने हथियार उठाकर लड़ने से रोका नहीं था। अपने जीवन को महत्व देकर दूसरे के जीवन की उपेक्षा को महत्व देकर दूसरे के जीवन की उपेक्षा करना गांधी के चिंतन का हिस्सा नहीं था।"[6]

वर्तमान दलित विमर्श और अंबेडकर का अनुयायी बताने वाला वर्ग भी न तो गांधी को स्वीकार करना चाहता है और न ही अंबेडकर की भावना को आत्मसात करने का प्रयास कर रहा है। सामाजिक समता और समानता के स्तर पर शोषितों और उत्पीड़ितों को सामाजिक न्याय दिलाने की दिशा में न तो कोई प्रयास किया जा रहा है और न ही किसी प्रकार की जागरूकता का प्रसार ही। "इस वास्तविकता को शायद दलित पार्टियाँ स्वीकार न करें कि दलित राजनीति में आज भी सामान्य दलित का न तो कोई स्थान है न ही भूमिका। वो हाशिए पर हैं, क्योंकि दलित पार्टियों ने उसका उपयोग अपने 'वोट बैंक' के रूप में किया, परन्तु उसमें सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक जागरूकता जगाने का प्रयास कभी नहीं किया गया। इसके पीछे शायद यह कारण भी रहा हो कि अगर कल को यही दलित सीना तानकर अपने अधिकार और सम्मान की बात दलित नेताओं से कहता है तब उनके पास इन्हें न करने का क्या विकल्प रह जाएगा? इसलिए जहां तक हो सके, दलितों को अपने अभावों–त्रासदियों में ही जीने दो। गौरतलब है, आज दलित जितना शोषित सवर्ण समाज से है उससे कहीं ज्यादा अपनों से भी है। ऐसा नहीं है कि ये तमाम दलित नेता एक रात में ही बादशाह बन बैठे हैं, इसके लिए उन्होंने संघर्ष अवश्य किया है, लेकिन एक स्तरीय पद या सम्मान प्राप्त कर वे अब सब कुछ, अपना संघर्ष, अपना आन्दोलन भुला चुके हैं, क्योंकि सत्तामद ने उन्हें खुद से भी दूर कर दिया है।"[7]

वर्तमान राजनैतिक परिवेश जिस ढंग से दालित्य और अस्पृश्यता पर हाय–तौबा मचा रहा है वह स्वयं भी अपने आचरणों और सत्ता लोलुपता के स्वार्थ में दालित्य को बढ़ा रहा है। शासक और शासित के मध्य उपेक्षा और अस्पृश्यता की परंपरा का निर्वाह वर्तमान सरकारें भी बखूबी कर रहीं हैं। वर्तमान राजनीति के दंगल में आरक्षण, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और परिवारवाद, क्षेत्रवाद ऐसे ही अनेकों मुद्दे हैं जो कहीं न कहीं से अलगाव, उपेक्षा और शोषण को बढ़ावा दे रहे हैं। उपेक्षा और तिरस्कार की परंपरा को गिरिराज किशोर इस प्रकार स्वीकारते हुए लिखते हैं –"रंगभेद और वर्णभेद ऐसा ही नहीं कि केवल रामायण या महाभारत काल में ही हो। आधुनिकता के इस युग में और सभ्य माने जाने वाले देशों में भी वह मौजूद रहा है। हिटलर इस श्रेष्ठतावाद का सबसे बड़ा प्रतीक है।"[8]

आज शासन और सत्ता में बैठे लोग भले ही राजनीति के मंच से सामाजिक समानता की बात कर रहे हों किन्तु उनके व्यवहार में जातिवाद, परिवारवाद, क्षेत्रवाद का प्रतिशत अधिक है। सत्ता में बैठकर जातीय उन्मूलन एवं दलित हित की घोषणा करने वाले भाषण देकर समाज एक नहीं हो जाता, उसके लिए व्यक्तिगत आचरणों और व्यवहारों में समाज चिंतन आवश्यक है। आरक्षण या अन्य सरकारी सुविधाएं (जिनमें राजनैतिक ठेकेदारों का प्रतिशत टेबिल के नीचे से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित है) भी अन्तिम पायदान पर बैठे व्यक्ति को लाभ नहीं पहुंचा पा रहा है। जनहित के मामलों में भी शासन और प्रशासन खर्च के नाम पर रिश्वत लेने या मांगने में नहीं हिचकता। व्यक्ति मजबूर और निराश होकर इस परंपरा का निर्वाह इस लिए कर रहा है कि उसके पास शासन और प्रशासन से टकराने का साहस नहीं है। व्यक्तिगत लाभ और व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्य की मानसिकता पर निरन्तर हावी होता जा रहा है।

संदर्भ

1. गेल ओमवेटः अम्बेडकर एण्ड आफ्टर, द दलित मूवमेण्ट इन इण्डिया सं0 घनश्याम शाहा, सेज पब्लिकेशन 2002
2. रामचन्द्र गुहा, 'अमर उजाला' पृष्ठ सम्पादकीय 25.01.2010
3. भीमराव अम्बेडकरः संविधान सभा में दिया गया भाषण, नवम्बर, 1949, सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज–2, सं0 शम्भुनाथ, वाणी प्रकाशन 2004

4. शम्भुनाथ, हिन्दी नवजागरण और संस्कृति पृ0सं0–147
5. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आइने में दलित, पृ0सं0–78
6. गिरिराज किशोर, जन–जन जनसत्ता, पृ0–239
7. राजकिशोर, प्रधान सम्पादकः दलित राजनीति की समस्याएँ, पृ0सं0–124
8. गिरिराज किशोर, दलित विमर्शः संदर्भ गाँधी, पृ0सं0–12

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 150-151

शैक्षिक परिदृश्य

उच्च शिक्षा में गुणात्मकता

डॉ. गीता अस्थाना
अनिल कुमार पाण्डा

स्वतन्त्रता के पश्चात विश्वविद्यालय शिक्षा में संख्यात्मक विकास तीव्र गति से हुआ लेकिन गुणात्मक विकास की गति आयोजित रही। परिणामस्वरूप शिक्षा का स्तर गिरता चला गया। विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य नवीन विचारों, सत्य एवं विवेक की खोज करना, राष्ट्र को सशक्त, सम्पन्न तथा प्रगतिशील बनाना होना चाहिए।

"The student is not created for the university but the university exists for the students" **– Report of the University Education Commission.**

उच्च शिक्षा सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तन का माध्यम है। किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति में उच्च शिक्षा का अधिक योगदान होता है। विश्व में सबसे शक्तिशाली देश उच्च शिक्षा के विकास में भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। उच्च शिक्षा में नीति निर्धारकों के सार्थक प्रयासों के बाद भी आज उच्च शिक्षा का स्तर अवनति पर है। उच्च शिक्षा की गुणात्मकता को बनाये रखने के लिये विभिन्न आयोगों और राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का निर्माण किया गया है। यदि हम अतीत पर दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि हमें 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति विरासत में मिली है। शिक्षा के इतिहास में इस नीति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 1968 की शिक्षा नीति में राष्ट्रीय विकास के लिए कुछ लक्ष्यों का निर्धारण किया गया था। राष्ट्रीय प्रगति एक समान नागरिकता और समान संस्कृति की भावना को बढ़ावा देना तथा राष्ट्रीय एकता को मजबूती प्रदान करना था। उच्च शिक्षा प्रणाली में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आवश्यकता सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तथा विज्ञान और टेक्नोलॉजी में अधिक ध्यान देने पर बल दिया गया। शिक्षा में नैतिक मूल्यों को शामिल करने तथा शिक्षा को लोगों के जीवन से सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया।

भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों का विकास तीव्र गति से हुआ। आई0आई0टी0, आई0आई0एम0, एम्स जैसे संस्थानों का विकास हुआ, जिनमें लगभग एक लाख छात्र अध्ययनरत् है। इसी क्रम में कुछ डीम्ड विश्वविद्यालयों की स्थापना भी की गई। निचले स्तर पर 481 विश्वविद्यालय, 2000 सम्बद्ध महाविद्यालय, 300 मेडिकल कालेज तथा 2500 के लगभग इंजीनियरिंग कालेज हैं। इनमें एक करोड़ से अधिक छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं। इनमें अधिकांश शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता दयनीय है। इस प्रकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में समस्या केवल विश्वविद्यालयों और कालेजों की कम संख्या की ही नहीं वरन् उनके शैक्षिक स्तर की भी है।

आज भारतवर्ष में बड़ी संख्या में विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तो हैं लेकिन एक छोटा भाग ही शैक्षिक मानकों को पूरा करता है। 21वीं सदी में उच्च शिक्षा में परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए नये पाठ्यक्रम, नये शोध, नई शिक्षण पद्धति और नए शिक्षण प्रबन्धन की आवश्यकता है।

अमेरिका के इंस्टीट्यूट आफ इण्टरनेशनल एजूकेशन की वार्षिक रिपोर्ट 'ओपेन डोर 2008' के अनुसार अकादमिक सत्र 2007–2008 में अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने वाले छात्रों में रिकार्ड संख्या में 94563 भारतीय छात्र हैं। बाहर से आने वाले छात्रों में भारतीय छात्रों की संख्या 2001 से सबसे ज्यादा चल रही है। अमेरिका में इस वर्ष 6.23 लाख विदेशी छात्र आए, जिनमें सबसे अधिक 15 प्रतिशत भारतीय छात्र हैं। ये भारतीय छात्र न केवल भारी भरकम फीस देते, बल्कि शिक्षा के अलावा खाने–पीने, रहने और अन्य खर्चों की वजह से बड़ी मात्रा में रोजगार भी पैदा करते हैं। उच्च शिक्षा को

विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर।
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, डी0ए0वी0 कालेज, कानपुर

लेकर शीर्ष भारतीय उद्योग संगठन एसोचेम की भी एक रिपोर्ट आयी है। इसके अनुसार अमेरिका, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, कनाडा, जर्मनी, सिंगापुर आदि देशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए 4.50 लाख से अधिक भारतीय छात्र हर साल जाते हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार इस पलायन की सबसे बड़ी वजह है पर्याप्त संख्या में उच्च गुणवत्ता वाले संस्थानों का अभाव होना। इसके अनुसार आई0आई0टी0 और आई0आई0एम0 में प्रवेश न पाने वाले 90 प्रतिशत छात्रों में कम से कम 20–25 प्रतिशत छात्र बाहर चले जाते हैं। इस अध्ययन के अनुसार ये छात्र विदेशों में लगभग 48 हजार करोड़ रुपये प्रति वर्ष खर्च करते हैं। इस धन से विश्व स्तर के कम से कम 20 इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट खोले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में रोजगार में लगे लगभग 46 करोड़ लोगों में केवल 5 प्रतिशत के पास ही व्यवसायिक शिक्षा में प्रशिक्षण है, जबकि दक्षिण कोरिया में 95 प्रतिशत, जापान में 80 प्रतिशत और जर्मनी में 75 प्रतिशत तक लोग व्यवसायिक शिक्षा या प्रशिक्षण को प्राप्त करते हैं।

एसोचैम के अनुसार अगर हम उच्च शिक्षा का समुचित विकास कर सकें तो भारत न केवल लगभग 2.4 लाख करोड़ रुपये की आय अर्जित कर सकेगा, बल्कि इसके द्वारा तकरीबन 10 लाख अतिरिक्त रोजगार भी पैदा होंगें। भारत में उच्च शिक्षा में सुधार और विकास के लिए सरकार ने एक 'राष्ट्रीय ज्ञान आयोग' की स्थापना की थी।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने 2006 में अपनी अनुशंसाएँ और उच्च शिक्षा के लिए भावी रूपरेखा सरकार को सौंप दी। इसमें अन्य चीजों के अलावा सरकार राजनेताओं और नौकरशही के हस्तक्षेप से उच्च शिक्षा को मुक्त करने की बात कही गई थी, जिससे विश्वविद्यालयों का राजनीति और लालफीताशाही से दूर रखते हुए अकादमिक स्वतंत्रता और स्वायत्तता मिल सके।

विकसित देशों में उच्च शिक्षा संस्थान सरकार के नियंत्रण से बाहर हैं। यह रिपोर्ट भारत में उच्च शिक्षा के नए आयाम खोलने की दिशा में अत्यन्त दूरगामी हैं। सरकार ने इस दिशा में कुछ कदम उठाने शुरू कर दिये हैं जैसे 11वीं योजना में 30 केन्द्रीय विश्वविद्यालय, 8 नये आई0आई0टी0, सात आई0आई0एम0, 3 इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंटिफिक एण्ड एजूकेशनल रिसर्च, 2 स्कूल आफ प्लानिंग एण्ड आर्किटेक्चर, 10 नेशनल इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी खोलने का प्रस्ताव है। फिर भी छात्रों की इतनी बड़ी संख्या और भारत को उच्च शिक्षा का एक वैश्विक केन्द्र बनाने के लिए यह प्रयास काफी नहीं है। करंट साइन्स शोध पत्र से यह निष्कर्ष सामने आया है कि भारत में शोध कार्य अनेक देशों की तुलना में गुणवत्ता की उच्च स्थिति तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में गुणात्मक सुधार हेतु निम्न सुझाव हैं –

1. संसाधनों की कमी को दूर किया जाये।
2. गुणात्मक शोध को प्रोत्साहन प्रदान किया जाये।
3. आय की असमानता को दूर किया जाये।
4. मान्यता प्रदान करने के नियमों को कठोरता से लागू किया जाये।

गुणवत्तापरक शिक्षा का अर्थ है कि शिक्षा परीक्षापयोगी न होकर जीवनपयोगी होनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डागर, बी0एस0 (1992), शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाण, साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, पृ0–29
2. सिंह, नरेन्द्र पाल और नजाकत हुसैन (1996), भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था एक मूल्यांकन। कुरुक्षेत्र, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली।
3. गुरुसरन दास त्यागी – भारतीय शिक्षा का परिदृश्य
4. U.G.C. History and Development of Higher Education in Free India – Dr. S.R. Sharma, Vol. III.
5. सुरेश भटनागर – भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010, पेज : 152-155

संगीत

सङ्गीत का जीवन पर प्रभाव : लौकिक संस्कृत–साहित्य के सन्दर्भ में

✍ डॉ. निरुपमा त्रिपाठी

मनुष्य मूलतः सौन्दर्य–प्रेमी है। सौन्दर्य के प्रति उसके सहज आकर्षण से ही जीवन में विविध कलाओं का जन्म होता है। संगीत एवं काव्य अथवा साहित्य भी उनमें परिगणित हैं। संगीत एवं साहित्य दोनों ही मानव–जीवन का अभिन्न अंग है। आचार्य भर्तृहरि ने तो साहित्य और संगीत से रहित मनुष्य को साक्षात् पशु कह दिया है –

'साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः'

संगीत वह कला है जिसमें मनोभावों एवं कल्पनाओं को स्वर, लय तथा ताल के माध्यम से प्रकट किया जाता है तो साहित्य शब्दार्थों की समष्टि से भावों की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है। दोनों का ही उद्देश्य 'आनन्द' की प्राप्ति है। काव्य अथवा साहित्य के प्रयोजनों को निर्धारित करते हुए संस्कृत के आचार्यों ने 'आनन्द' को सर्वोपरि रखा है।[1]

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार शिव के डमरू से ही संगीत एवं भाषा का जन्म हुआ जो क्रमिक विकास की यात्रा तय करते हुए आज हमारी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक निधि बन गए हैं। वैदिक–वाङ्मय ऐसे अनेक उदाहरणों से भरे हैं जो संगीत एवं जीवन के घनिष्ठ सम्बन्ध को सूचित करते हैं। जहाँ ऋग्वेद में कई प्रकार के वाद्य तथा नृत्य का उल्लेख मिलता है वहीं सामवेद देव–स्तुति के रूप में संगीत के गेय स्वरूपों से व्याप्त है। देवताओं की स्तुति के अतिरिक्त सामवेद के मन्त्रों का गायन असाध्य रागों के उपचार के लिए भी किया जाता था। कृषि की उत्तम उत्पादकता के लिए भी साम–यन्त्रों का गान उपयोगी था।

क्षेत्र की दृष्टि से काव्य अथवा साहित्य संगीत की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है क्योंकि साहित्य में सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। किन्तु सीमित होते हुए भी प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से संगीत काव्य की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि इसका प्रभाव मनुष्यों पर ही नहीं पशु–पक्षियों पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है। जीवन के विविध पक्षों पर पड़ने वाले संगीत के प्रभावों को दर्शाते हुए अनेक उद्धरण संस्कृत–साहित्य में प्राप्त होते हैं।

महाकवि कालिदास की अमर कीर्ति के प्रतीक नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रारम्भ में ही नटी द्वारा गीत गाए जाने पर सूत्रधार कहता है कि 'तुम्हारे राग से लोग ऐसे बेसुध हो गए हैं कि रङ्गशाला चित्र–लिखित सी जान पड़ती है।'[2] इसी प्रकार गीत के मनोहर राग से मन को बल–पूर्वक खींचा जा सकता है। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सूत्रधार का मन खींच लिया गया था।[3] ये संगीत के माध्यम से मन को उस चरम अवस्था तक ले जाने के उदाहरण हैं जहाँ पहुँच कर मनुष्य चित्रवत् हो जाता है। अर्थात् अन्य किसी प्रकार के सम्पर्क से शून्य हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चित्त की एकाग्रता को उत्पन्न करने का सामर्थ्य है संगीत में। इसके अभ्यास से मन की चंचलता को दूर किया जा सकता है। भटकना उसका स्वभाव है। संगीत के माध्यम से उसे अनुशासनात्मक प्रेरणा दी जा सकती है। संगीत जीवन के एकाकीपन, मन की कुण्ठा, उत्कण्ठा, नकारात्मक सोच इत्यादि को दूर करने में भी सहायक है। 'मृच्छकटिकम्' में दारिद्रय–दुःख से पीड़ित नायक चारुदत्त के माध्यम से कवि शूद्रक ने वीणा के विषय में कहा है –

✍ असिस्टेन्ट प्रोफेसर (संस्कृत), कानपुर विद्या मन्दिर महिला (पी. जी.) महाविद्यालय, स्वरूप नगर, कानपुर

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
सङ्केतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापनया प्रियतमा विरहातुराणां
रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः।।[4]

(वीणा उत्कण्ठित की मनचाही सखी है। सङ्केत (वादा) करने वाले प्रेमी के देर कर देने पर एक उत्कृष्ट मनोरंजन है। विरह–पीड़ितों को अत्यन्त प्रिय समाश्वासन देने वाली है। यह मनोरंजन प्रेमी के अनुराग को बढ़ाने वाला है।)

यह संगीत श्रवणावधि तक तो प्रभाव उत्पन्न करता ही है। श्रवण के पश्चात् भी हृदय पर इसका प्रभाव रहता है। चारूदत्त का कथन है –

तं तस्य स्वरसंक्रमं मृदुगिरः श्लिष्टं च तन्त्रीस्वनं
वर्णानामपिमूर्च्छनान्तरगतं तारं विरामे मृदुम्।
हेलासंयमितं पुनश्च ललितं रागद्विरुच्चारितं
यत्सत्यं विरतेऽपि गीतसमये गच्छामि शृण्वन्निव।।[5]

प्रकृति का आनन्द उठाने के लिए ऋतुओं के अनुकूल गीत – गायन के भी सङ्केत संस्कृत–साहित्य में प्राप्त होते हैं। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में –

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।[6]

कालिदास कृत मेघदूत उत्तमकोटि का गीतिकाव्य माना जाता है। इसमें कवि ने प्रकृति को मानव का सहचरी सिद्ध कर दिया है। वियोग–शृंगार की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम भावनाओं को मेघदूत के गीतों के माध्यम से कालिदास ने प्रकट किया है। इसमें प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोप करते हुए मानव–हृदय एवं प्रकृति का तादात्म्य स्थापित किया गया है। मेघदूत के एक गीत (श्लोक) में यक्ष अपने सन्देश – वाहक मेघ से एक शिष्ट मानव की भाँति रामगिरि पर्वत से विदाई लेने को कहता है –

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिंग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिदैरङ्कितं मेखलासु।
काले–काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्।।[7]

सन्ध्याकालीन देव–आरती का मानव–जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। मेघदूत के एक गीत में यक्ष महाकाल के मन्दिर में गर्जना कर शिव के सान्ध्य–पूजा में नगाड़े का कार्य करने को कहता है –

अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्यकाले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया–
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।[8]

मानवीय मूल्यों को निर्देशित करने का भी अपार सामर्थ्य विद्यमान है संगीत में। संगीत–श्रवण न्यूनाधिक सभी को प्रिय है। इससे मूल्यों की व्यञ्जकता भी सम्भव है। पण्डित जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' संस्कृत–साहित्य का अमूल्य गीतिकाव्य है जिसे नीतिनाट्य भी कहा जाता है। यह मानवीय मूल्यों–प्रेम, स्नेह, विश्वास आदि को निखारने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। लौकिक प्रेम की शुचिता और निश्छलता के बिना मोक्ष की भी प्राप्ति नहीं हो सकती।

हमारे जीवन में माङ्गलिक अवसरों का भी महत्व है। भारतीय धर्म–शास्त्र में संस्कारों का विधान है जो जन्म के पूर्व से मृत्युपर्यन्त चलते रहते हैं। इन विशेष संस्कारों के अवसरों पर गीत, संगीत के माध्यम से अपने हर्षोल्लास को प्रकट किया जाता है। यह संगीत उल्लासात्मक भावों की अभिव्यञ्जना तो करता ही है उन्हें और अधिक सुखद एवं उत्साहयुक्त भी बनाता है। आदिकवि महर्षि बाल्मीकि ने राम–जन्म के समय गन्धर्वों द्वारा गायन एवं अप्सराओं द्वारा नृत्य का वर्णन किया है –

जगुः कलं च गन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरो गणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्।।[9]

कालिदास ने भी अज के जन्म के शुभ अवसर पर दिलीप के महल में नृत्य एवं मङ्गल वाद्यों के संगीत में हर्षोल्लास को प्रकट किया है –

सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि।।[10]

यह हमारी भारतीय परम्परा ही है जो मृत्यु को परम सत्य के रूप में स्वीकार करती है। इस अवसर पर शोक प्रकट करना भी नितान्त स्वाभाविक है। मृत्यु के बाद अपने प्रिय से अनन्त वियोग के कारण होने वाले विलाप को मृत्यु–गीत की कोटि में रखा जाता है। ये विलाप–गीत भी संस्कृत–साहित्य में अनेकशः द्रष्टव्य हैं। जैसे मदन–दाह के अवसर पर रति–विलाप[11] तथा इन्दुमति के शोक में अज–विलाप[12] इत्यादि। महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में 'रुदितक' नामक गीत का उल्लेख किया है जो मृत्यु के अवसर पर गाये जाते थे। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के पति की मृत्यु के पश्चात् इस प्रकार के गीतों में गाये जाने का सङ्केत मिलता है।

इस प्रकार संगीत मानव–जीवन में केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं अपितु आत्मसाक्षात्कार की दिव्य शक्ति भी है। वह व्यक्ति को चिन्ताओं से मुक्ति प्रदान कर मोक्ष–प्राप्ति का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ

1. (क) दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
   विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति। (नाट्यशास्त्र, 1/114)
   (ख) करोति कीर्त्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्। (भामह काव्यलंकार)
   (ग) काव्यं सत् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्त्तिहेतुत्वात्। (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/1/5)
   (घ) काव्यनिबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः। (वक्रोक्तिजीवितम्, 1/4)
   (च) काव्यं यशसे .... सद्यः परनिर्वृतये। (काव्यप्रकाश, 1/2)
2. सूत्रधार – आर्ये ! साधु गीतम्। अहो रागनिविष्टचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्ग। (अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/1)
3. तवास्मि गीतरागेण हरिणा प्रसभं हृतः। (अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/1)
4. मृच्छकटिकम्, 3/3
5. मृच्छकटिकम्, 3/5
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/1
7. मेघदूतम्, 1/12
8. मेघदूतम्, 1/34
9. रामायण, बालकाण्ड, 18/19

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई-दिसम्बर 2010

10. रघुवंशम, 3 / 19
11. मदनेन विनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि।। (कुमारसम्भव, 4 / 21)
नयानान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना।। (कुमारसम्भव, 4 / 12)
12. गृहणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।। (रघुवंशम् 8 / 67)
विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदस्य गण्यताम्।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः।। (रघुवंशम, 8 / 69)

पोथी की परख/समीक्षायन

बुन्देली लोक गीतों में भक्ति भावना

✍ डॉ. सियाराम

पुस्तक	:	बुन्देली लोक गीतों में भक्ति भावना
लेखक	:	डॉ. हरीमोहन पुरवार एवं संध्या पुरवार
प्रकाशक	:	बुन्देलखण्ड संग्रहालय समिति, उरई (जालौन)
मूल्य	:	रु. 350.00

शैक्षणिक एवं सामाजिक गतिविधियों से जुड़े डॉ. हरीमोहन पुरवार विशेष रूप से पुरातात्विक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। विभिन्न विधाओं पर लगभग डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. हरीमोहन पुरवार ने लोक कला, लोक संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन के क्षेत्र में एक नई अवधारणा को स्थापित कर उसके विकास के लिए सतत प्रयासरत हैं। आपने अनेक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में निरन्तर होता रहता है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मानों से विभूषित डॉ. पुरवार वर्तमान में बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के संस्थापक निदेशक हैं। इस पुस्तक की सहलेखिका श्रीमती संध्या पुरवार हैं जो डॉ. पुरवार की धर्मपत्नी हैं और वह भी साहित्यिक एवं सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी करती रहती हैं। श्रीमती संध्या पुरवार वर्तमान में बुन्देलखण्ड संग्रहालय की सह निदेशक एवं महिलाओं की चर्चित संस्था कल्याणी की सक्रिय सदस्य हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'बुन्देली लोक गीतों में भक्ति भावना' में वैदिक साहित्य से प्रमाणित एवं जो लेखक के गहन चिन्तन मनन का प्रतीक है।

डॉ. हरीमोहन पुरवार एवं श्रीमती संध्या पुरवार का व्यक्तित्व प्रेरक एवं प्रभावी तथा राष्ट्रीय भावनाओं से जुड़ा है। बुन्देली लोक गीतों में भक्ति भावना पुस्तक का मुख्य प्रयोजन वैदिक साहित्य के साथ जोड़कर शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में इसको प्रमाण की पुष्टि प्रदान की गयी है। लोक साहित्य दर्शन और भक्ति से युक्त इस प्रेरक पुस्तक में सैतीस शोध आलेखों को प्रस्तुत किया गया है। जो व्यापक क्षेत्रों का आवरण लिए हुए है साथ ही इसमें बुन्देली संस्कृति और समाज की भी महक देखने को मिलती है। लोक गीतों एवं लोक कथाओं के विषय वैविध्य से पूर्ण तथा वर्णन शैली और प्रमाणिकता की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक अति महत्वपूर्ण है इसके साथ ही भाषा की सरलता, सुबोधगम्यता, सम्प्रेयणीयता एवं प्रवाह के उदाहरण भी जगह–जगह इसमें देखने को मिलते हैं।

काव्य सर्जना हेतु जो शास्त्रीय प्रयोजन निश्चित किये गये हैं उसका पालन प्रस्तुत पुस्तक करती है। धार्मिक एवं पौराणिक आख्यानों की दृष्टि से तैंतीस कोटि देवताओं की गणना प्रमुख रूप से स्वीकृत है किन्तु बुन्देलखण्ड में विशेष रूप से श्रीराम, कृष्ण के अतिरिक्त जिन देवी–देवताओं का गुणगान सर्वाधिक प्रचलित है उनमें प्रमुख रूप से श्री गणेश, श्री हनुमान, महादेव (शंकर जी), देवी मइया (जगदम्बा जी) और देवतुल्य कु. हरदौल मुख्य हैं।

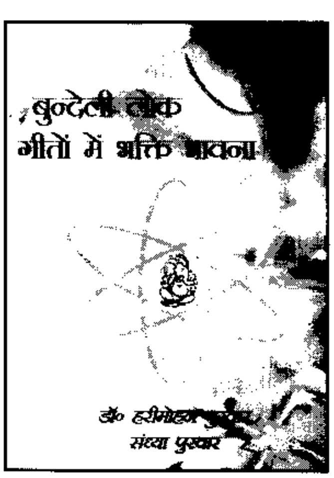

पुस्तक का प्रारम्भ गणेश वंदना से शुरू होता है। आदि शक्ति माँ पार्वती के शक्ति सम्पन्न पुत्र हैं श्री गणेश। अस्तु माँ के स्मरण के साथ–साथ श्रीगणेश की स्तुति करने से श्री गणेश जी शीघ्र प्रसन्न होकर मनवांछित फल की प्राप्ति कराते हैं। देवी आराधना के क्रम में कवि द्वय की मान्यता है कि हे देवी तुम्हीं विश्व जननि मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि की उत्पत्ति के समय आदि शक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। परमतेजस्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह सर्वज्ञ, सर्व प्रकार से मंगल करने वाली एवं सर्व मंगलों की भी मंगल हो।

भक्ति भावनाओं को रेखांकित करते हुये कवि की मान्यता है कि भक्त के माध्यम से वाणी गदगद हो जाती है, हृदय पिघल जाता है जो कभी रोता है तो कभी जोर से हँसता है कहीं निर्लज्ज होकर गाने लगता है तो कहीं नाचने लगता है यह अनुभव वही व्यक्ति महसूस कर सकता है जिसने जीवन में इसको भोगा एवं महसूस किया हो।

डॉ. पुरवार का सृजन संसार गम्भीर विचारों की प्रौढ़ता, भाषा शैली की गम्भीरता, विषय वैविध्य की दृष्टि से लेखन के क्षेत्र में नई आशाओं का मौलिक आख्यान प्रस्तुत करता है।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया

पोथी की परख/समीक्षायन

इक्कीसवीं सदी में मुसलमान चिन्तन एवं सरोकार

✍ डॉ. सबीहा रहमानी

पुस्तक	:	इक्कीसवीं सदी में मुसलमान चिन्तन एवं सरोकार
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 1500.00 (दो भागों में)
ISBN	:	978–81–8455–249–2
पेज	:	48+336, 50+331 = 765

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

जिजीविषा, जीवटता, साहस, दृढ़ इच्छा शक्ति, आशा, आत्मविश्वास ही वे वस्तुएं हैं जो व्यक्ति की शक्तियों को जाग्रत करती हैं। डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव इन शक्तियों के पुंज से दिखते हैं। इसलिए वे लिखते और लिखवाते हैं। डॉ. वीरेन्द्र यादव निरंतर संकल्परत हैं कि सृजनात्मकता के क्षेत्र में गुणवत्ता का मापदंड प्रतिभा ही बनी रहे, चाटुकारिता नहीं। वास्तव में कठिन चुनौतियों के बीच जिस संकल्प शक्ति के साथ वे संस्कृति और साहित्य की रक्षा, सम्मान और सम्पुट के लिए कार्यरत हैं वह स्तुत्य है।

इक्कीसवीं सदी में मुसलमान : चिन्तन एवं सरोकार नामक दो खण्डों में प्रकाशित पुस्तक में लेखक ने देश के प्रथम खण्ड में तैंतीस विद्वानों के आलेख एवं द्वितीय खण्ड में तैंतीस विद्वानों अर्थात् छाछठ विद्वानों के लेखों का संग्रह कर भारतीय मुसलमानों के धर्म, संस्कृति, समाज, शिक्षा एवं राष्ट्र में उनके द्वारा दिए गए योगदानों को तो रेखांकित किया ही है साथ ही साथ मुस्लिम वर्ग के प्रति एक वर्ग विशेष में फैली भ्रान्तियों का भी प्रस्तुत पुस्तक में शमन करने की कोशिश की गयी है।

प्रथम एवं द्वितीय खण्ड में पुस्तक को नौ उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है जिसमें इस्लाम धर्म एवं मुसलमान : अवधारणा, स्वरूप एवं परम्परा, मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति, मुसलमान और आधुनिकता, साहित्य, कला, संस्कृति में मुसलमानों की दशा एवं दिशा, साम्प्रदायिकता एवं भारत, मुसलमान और स्त्री सम्बन्धी अवधारणा, कृतित्व के आइने में मुस्लिम समाज सुधारकों का योगदान, अल्पसंख्यक और भारतीय मुसलमान, इक्कीसवीं सदी में मुसलमान : चिन्तन के विविध आयाम के द्वारा मुसलमानों की उत्पत्ति एवं विकास प्रक्रिया को विस्तृत रूप से विवेचित एवं व्याख्यायित किया गया है। सम्पादकीय में डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि विश्व के अन्य धर्मों की अपेक्षा इस्लाम ने ईश्वर की एकता पर इतना अधिक जोर दिया कि अन्य किसी धर्म से इसका मुकाबला नहीं किया जा सकता। इस्लाम ने घोषणा की – 'अल्लाह के अलावा और कोई अल्लाह नहीं है। "वह ईश्वर की एकता की प्रेरणा को इस हद तक ले गया कि उसने एक धर्म को छोड़कर, अन्य धर्मों को भी अस्वीकार कर दिया। जो विश्व के लिए एक आदर्श उपस्थित करता है। इस्लाम जीवन के सब पहलुओं की एकता पर जोर देने के लिए प्रसिद्ध है। यह राजनीति और धर्म, कारोबार और पूजा के बीच कोई भेद स्वीकार नहीं करता। पाक कुरान के शब्दों में "सारी सृष्टि ही इबादत की जगह है। अर्थात् इस दृष्टि से देखा जाये तो इस्लाम में मानवतावाद की अवधारणा स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। साथ ही यह भी कुछ विद्वान लेखकों की राय की जो आरोप–प्रत्यारोप उन पर (मुसलमानों) पर लगते हैं उनका खण्डन जोरदारी से किया जाये। इस पुस्तक की मान्यता है कि और इस वर्ग के नौजवान पीढ़ी को शैक्षिक और सामाजिक उन्नति से परिपूर्ण करना होगा तभी अनेक रूकावटों के बावजूद इन जैसी अनेक समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है। मैं आशा करती हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक न केवल शोधार्थियों एवं सामान्यजन के लिए उपयोगी बल्कि समाज एवं संस्कृति में रूचि रखने वाले अध्येयताओं के लिए भी खोजी दृष्टि पैदा करेगी।

✍ समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बाँदा (उ. प्र.)

पोथी की परख/समीक्षायन

दलित आन्दोलन के मिथक एवं यथार्थ

✍ डॉ. ज्योति सिन्हा

पुस्तक	:	नई सहस्राब्दी का दलित आन्दोलन मिथक एवं यथार्थ
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 995.00
ISBN	:	978–81–8455–251–5
पेज	:	22 + 530 = 552

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

दलित आन्दोलन समकालीन साहित्य में एक ज्वलंत मुद्दे के रूप में चर्चित आन्दोलन माना जा रहा है। जो अभी विमर्श का केन्द्र बना हुआ है। समय–समय पर समसामयिक विषयों को चर्चा में लाने वाले मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव चर्चित मुद्दों एवं हाशिए पर कर दिए लोगों के प्रति अपनी पैनी सोच–समझ रखने के कायल माने जाते हैं। उनके अपने जीवन के कटु अनुभव एवं एहसास उनकी सृजित एवं सम्पादित की गई पुस्तकों में सदैव देखने को मिलते रहते हैं। इसी तरह का एहसास उनकी सद्यः प्रकाशित कृति नई सहस्त्राब्दी का दलित आन्दोलन : मिथक एवं यथार्थ नामक पुस्तक में देखने को मिलता है।

दलित जीवन की समस्याओं एवं प्रगति के लिए प्रबुद्ध देशवासियों के विचारों को आमंत्रित करती इस पुस्तक में भारतीय दलित समाज की दशा, दिशा एवं इनके भावी नियोजन पर प्रकाश डाल गया है। इन्साइक्लोपीडिया के रूप में दस खण्डों में विभाजित – दलित आन्दोलन की पृष्ठभूमि : जाति की अवधारणा एवं सामाजिक प्रक्रिया, दलित एवं भूमण्डलीकरण का मनोविज्ञान, क्रान्ति के आइने में दलित चेतना, दलित आन्दोलन में अग्रज एवं अनुज कर्णधारों का योगदान, दलित आन्दोलन के विकास में संवैधानिक प्रयासों का विश्लेषण, दलित आन्दोलन में आधी दुनिया की अनुगूंज, दलित आन्दोलन के साहित्यिक सरोकार, दलित आन्दोलन के समाजशास्त्रीय, राजनैतिक एवं आर्थिक संदर्भ, दलित उत्पीड़न के समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक संदर्भ, दलित आन्दोलन के विविध संदर्भ आदि को रखा गया है।

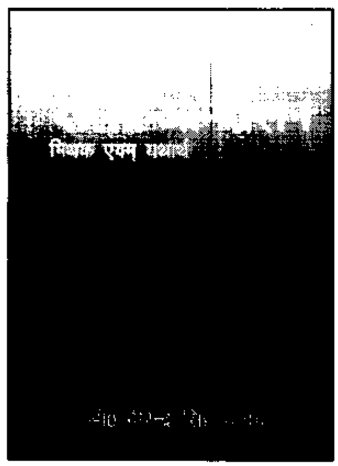

अपने सम्पादकीय में डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने कुछ नये प्रश्नों को उठाकर दलित आन्दोलन के विमर्श में एक नई बहस को जन्म दिया है – सम्प्रति भारतीय राजकाज और समाज पर भारत के समक्ष दो दृष्टिकोण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं – एक तथ्य संयुक्त राष्ट्र का है, इसने दलितों की स्थिति का निर्मम पोस्टमार्टम किया है। दूसरा दृष्टिकोण भारत सरकार द्वारा गठित आयोगों एवं कमेटियों का (सच्चर एवं रंगनाथ मिश्र कमेटी) है। इनमें भेदभाव के अलावा कुछ नजर नहीं आता है लेकिन एक अलग तरह का जो दृष्टिकोण देखने को मिलता है वह अति चौंकाऊ किस्म का प्रतीक होता है वह यह कि हमारा राजनीति दलतंत्र दलितों, गरीबों के पक्ष में कोई ठोस जन अभियान क्यों नहीं चलाता ? दलतंत्र बाजारवादी हिंसा के खिलाफ क्यों नहीं खड़ा होता ? जातिवादी राजनीति प्रायश्चित क्यों नहीं करती ? राष्ट्रवादी राजनीति ही परम वैभवशाली राष्ट्र के लिए आक्रामक युद्ध क्यों नहीं करती। अपने ही करोड़ों भूखे लोगों की व्यथा यह राष्ट्र क्यों बर्दाश्त करता रहता है ? कितने भी बड़े पद पर पहुँचने पर हमारी पहचान जाति के रूप में ही क्यों की जाती है ? आदि ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तरों से रूबरू प्रस्तुत पुस्तक आने वाले समय में समाज एवं राष्ट्र को इन प्रश्नों को शिद्दत के साथ चिंतन एवं मनन को जन्म देगी ऐसा मेरा व्यक्तिगत विश्वास है।

✍ प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कालेज, जौनपुर (उ. प्र.)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010

पोथी की परख/समीक्षायन

पर्यावरण आन्दोलन के विविध आयाम

✍ डॉ. आनन्द खरे

पुस्तक	:	इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आन्दोलन चिन्तन के विविध आयाम
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 725.00
ISBN	:	978–81–8455–242–3
पेज	:	22 + 317 = 339

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्‌भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

पर्यावरण हमारी सम्पूर्ण मानवता के जीवन का आधार स्तम्भ है। परन्तु उपभोक्तावादी संस्कृति, जनसंख्या विस्फोट तथा निर्वनीकरण के कारण इसका ढाँचा असन्तुलित होता जा रहा है। अपनी भौतिकतावादी ध्वनि में रमा व्यक्ति यह सब भूल गया है कि प्रकृति की भी अपनी सीमायें एवं क्षमताएं हुआ करती हैं। लेकिन मनुष्य ने इन चिंताओं से दूर रहकर प्रकृति का जरूरत से ज्यादा दोहन एवं शोषण किया है। जिसके परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, महामारी, भूकम्प, भूस्खलन ओजोन परत का नष्ट होना, ग्लोबल वार्मिंग, अकाल जैसी अनगिनत प्राकृतिक आपदाएं नित्य विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। यही कारण है कि आज पर्यावरण की समस्या की प्रतिध्वनि भूमण्डलीय समस्या के रूप में हम सबके साथ विद्यमान हो रही है।

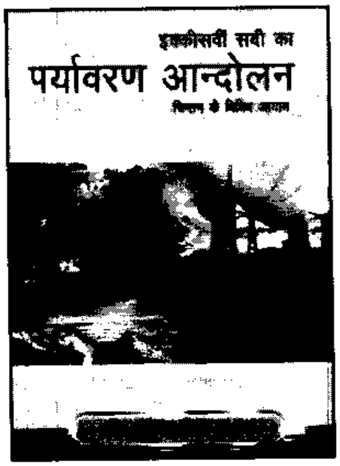

इन्हीं सब प्रस्तुत सरोकारों को विमर्श का रूप देने के लिए समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूक एवं पर्यावरण समस्या को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत करने वाले डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की पुस्तक इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आन्दोलन : चिंतन के विविध आयाम, पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक सकारात्मक प्रयास के रूप में चर्चित हुई है। देश के विभिन्न प्रान्तों से तैंतीस पर्यावरणविदों एवं शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों के द्वारा आठ खण्डों में विभाजित पर्यावरण की अवधारणा एवं विकास प्रक्रिया, पर्यावरण संरक्षण और संवैधानिक प्रावधान, साहित्य में पर्यावरण चिंतन के विविध संदर्भ, पर्यावरण संरक्षण में प्राकृतिक सम्पदा का योगदान, पर्यावरण प्रदूषण एवं जल संरक्षण के विविध सरोकार, पर्यावरण प्रदूषण एवं पर्यावरण शिक्षा का मनोविज्ञान, जलवायु परिवर्तन के विनाशकारी खतरे, इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण : चिन्तन के विविध सन्दर्भ नामक उपशीषर्कों के द्वारा पर्यावरण की चिन्ता के विविध पक्षों पर गम्भीरता से विचार–विमर्श किया गया है। लगभग सभी लेखकों का मानना है कि भले ही हम जी बहलाने के लिए पर्यावरण प्रदूषण एवं धरती के बढ़ते तापमान के लिए पश्चिमी देशों (विशेष रूप से अमेरिका को) को दोषी ठहरायें। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम बेकसूर हैं। भले ही हम पृथ्वी पूजा एवं प्रकृति पूजा के ढेर सारे उदाहरण दें। परन्तु कहीं–न–कहीं इस दिशा में हम भी सीधे न ही सही पर दोषी हैं जरूर। यदि वास्तव में प्रकृति के इस संतुलन को ठीक करना है इसके साथ ही सम्पूर्ण मानवता को मृत्यु की ओर से रोकने को बचाना है तो पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक नागरिक को जागरूक होना पड़ेगा। प्रस्तुत पुस्तक पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सार्वभौमिक सोच एवं जागरूकता का परिचय कराती है। जो इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती को ब्रेक लगाती नजर आती है।

✍ विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.

पोथी की परख/समीक्षायन

भोजपुरी भाषा का लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सिंहावलोकन

✍ डॉ. शम्स आलम

पुस्तक	:	लोक संस्कृति के आइने में भोजपुरी भाषा (चिन्तन के विविध आयाम)
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 895.00
ISBN	:	978-81-8455-239-3
पेज	:	24 + 393 = 417

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अदभुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008-11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

भोजपुरी साहित्य, कला, संस्कृति की मनोरम झांकी का अवलोकन कराने वाली डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की सद्यः प्रकाशित पुस्तक भोजपुरी भाषा एवं लोकजीवन के सुःख–दुःख, हर्ष–विवाद, आशा–निराशा के श्वेत एवं श्याम पक्षों का उद्घाटन कर लोकसाहित्य आन्दोलन के विमर्श को एक नूतन आयाम देती नजर आती है। सात खण्डों में विभाजित विशेषकर लोक संस्कृति एवं भोजपुरी भाषा का उद्भव और विकास, भोजपुरी कथा साहित्य का अनुशीलन, भोजपुरी लोकगीतों में लोक संस्कृति के विविध आयाम, भोजपुरी भाषा में स्त्री विमर्श के मर्मस्पर्शी पहलू, भोजपुरी लोक कला और संस्कृति, कृतित्व के आइने में भोजपुरी चिंतकों के विविध सरोकार तथा भोजपुरी भाषा में चिंतन के विविध संदर्भों को व्याख्यायित एवं विवेचित पुस्तक में भोजपुरी के बढ़ते कदमों एवं महत्व को देश के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा से सम्बद्ध प्राध्यापकों ने अपने विचार रखे हैं।

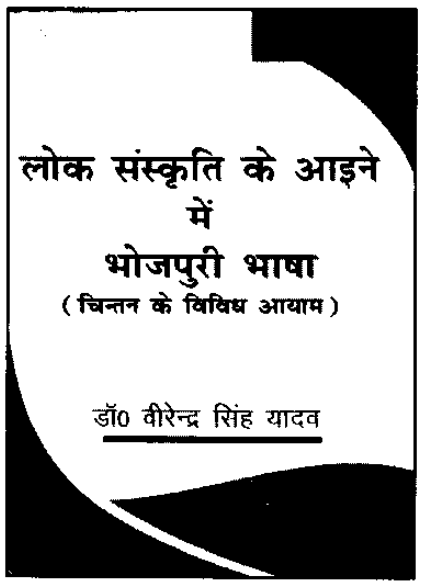

इन सभी लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि भोजपुरी भाषा मात्र एक अंचल की भाषा न होकर इसका विस्तार सात समुन्दर पार तक भी है। अर्थात् बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश के महानगरों के अलावा भारत के बाहर नेपाल, मॉरीशस, फिजी, ट्रिनीनाद, गुयाना, सूरीनाम, वर्मा इत्यादि देशों तक इस भाषा व बोली का प्रचार–प्रसार है। इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दी भाषा के बाद भोजपुरी भारत में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यही कारण है कि अपनी आत्मीयता के कारण भोजपुरी भाषा विदेशों में अप्रवासियों की आत्मा में आज भी जीवंत है।

भोजपुरी के हर क्षेत्र में बढ़ते स्वर्णिम कदम साहित्य, कला (विशेषकर सिनेमा जगत) संस्कृति को देखते हुए ऐसा लगता है अब भोजपुरी की उपेक्षा बहुत अधिक समय तक नहीं की जा सकती है और निश्चित ही इसका भविष्य स्वर्णिम होगा। हमें ऐसा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक लोक, कला, संस्कृति एवं भाषा विज्ञान में रूचि एवं शोधरत विद्वानों के लिए मील का पत्थर साबित होगी।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मदावर विद्या मन्दिर पी. जी. कालेज, बाह, आगरा (उ. प्र.)

पोथी की परख/समीक्षायन

मानवाधिकार के बहाने एक नई सीख

✍ डॉ. अजय सिंह

पुस्तक	:	नई सहस्त्राब्दी में मानवाधिकार के विविध सन्दर्भ
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 795.00
ISBN	:	978–81–8455–257–7
पेज	:	24 + 304 = 328

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया हैं। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

समसामयिक समस्याओं एवं वैश्विक स्तर पर घटित होने वाली घटनाओं पर अपनी पैनी दृष्टि रखने वाले आलोचक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने अपने लेखन में आम–आदमी की चिंता एवं सरोकारों को गम्भीरता से उकेरा है।

इसमें कोई शक नहीं कि आज भारत सहित विश्व प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति के नित नूतन शिखरों को चूम रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति एवं विभिन्न व्यवसायिकता की संस्कृति चारों ओर फैल रही है जो विकास एवं आधुनिकता की नई परिभाषाएं बनाती जा रही हैं। वहीं दूसरी ओर भारतीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखने पर विभिन्न समस्याएं दृष्टिगोचर हो रही हैं। जिनमें प्रमुख रूप से नस्लीय भेदभाव, धार्मिक अधिकार, भाषाई अधिकार, लिंगभेद, पुलिस अत्याचार आदि। इन सबके कारण संवैधानिक मान–मर्यादा का हनन हो रहा है और संविधान में प्रदत्त मानव अधिकारों का उल्लंघन एवं हनन हो रहा है। वर्तमान में वैसे मानव अधिकार की अवमानना से सम्बन्धित अनेक घटनाएं

घट रही हैं लेकिन भारत में इसकी है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में दलितों पर कारण लोगों का विस्थापन, उसके पुनः बसाने की समस्याएं। कराने सम्बन्धी कमी की समस्याएं समस्याएं आज केन्द्र में हैं। कई क्षेत्रीय हिंसा, कई राज्यों में बलात्कार तथा पुलिस उत्पीड़न, अल्पसंख्यकों के प्रति किया जाने धार्मिक असहिष्णुता के गम्भीर चिंताओं एवं चिंतन को समेटे हुए पुस्तक देश के विभिन्न प्रान्तों के सम्बद्ध अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त मानवाधिकारों की विशद विवेचना सम्पादक ने चार खण्डों में तहत मानवाधिकार की अवधारणा इसका मूल्यांकन किया गया है।

संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही अत्याचार, बड़ी परियोजनाओं के प्राकृतिक आपदाओं के कारण बच्चों के साथ अमानवीय बर्ताव ,जिसमें वैश्यावृत्ति के उकसाने की राज्यों में भाषायी समस्या के कारण आतंकवादी गतिविधियां, जेल में महिला हिंसा, बंधुआ मजदूरी, वाला उत्पीड़न ,अत्याचार एवं प्रश्न जुड़े हुए हैं। इन्हीं सब डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत तैंतीस विद्वानों के विचारों से करती नजर आती है। प्रस्तुत करती इस पुस्तक को विभाजित किया है जिसमें प्रथम के एवम् विकास प्रक्रिया के तहत दूसरे खण्ड के रूप में मानवाधिकारों की अवधारणा को महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में रखकर महिला सशक्तिकरण की वास्तविकता तथा महिला शोषण एवं भ्रूण हत्या के रूप में हो रहे अधिकारों के हनन की विवेचना की गई है। तीसरा खण्ड मानवाधिकार के तहत इसके चिन्तन एवं चुनौतियों और समाधान के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया गया है जिसमें मानवीय सुरक्षा के लिए मानवाधिकारों के संरक्षण की बात शिद्दत के साथ की गयी है। अन्तिम चौथे खण्ड के रूप में नई सहस्त्राब्दी में मानवाधिकार के अन्तर्गत सूचना के अधिकार से लेकर विविध शास्त्रों में इसके संरक्षण एवं विकास की पड़ताल की गयी है। इस दृष्टि से देखा जाये तो प्रथम दृष्टया प्रस्तुत पुस्तक मानवाधिकारों को प्रोत्साहित एवं संरक्षण की दिशा में अपनी विशेष पहचान बनाती है।

✍ एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया पी. जी. कालेज, हंडिया इलाहाबाद

पोथी की परख/समीक्षायन

नई सहस्त्राब्दी में आतंकवाद के विविध स्वरूप

✍ डॉ. उत्तरा यादव

पुस्तक	:	नई सहस्त्राब्दी का आतंकवाद : संघर्ष के बदलते प्रतिमान
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 895.00
ISBN	:	978–81–8455–255–3
पेज	:	30+388=418

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्याओं से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एक अच्छे अध्येता एवं शोधकर्ता के साथ–साथ एक परिपक्व लेखक हैं। समकालीन समस्याओं के उद्‌भट विद्वान के सृजन में मौलिकता एवं सारगर्भिता एक साथ देखने को मिलती है। उनके द्वारा सम्पादित सद्यः प्रकाशित पुस्तक नई सहस्त्राब्दी का आतंकवाद : संघर्ष के बदलते प्रतिमान में आपने अपने सम्पादकत्व में ऐसे अनेक तत्वों का पर्दाफाश किया जिन्हें पढ़कर किसी भी जागरूक व्यक्ति के होश उड़ सकते हैं – पुस्तक की मान्यता है कि भारत दुनिया का अकेला देश नहीं है जो आतंकवादी हमलों से ग्रस्त एवं त्रस्त है वरन् विश्व समेत एशिया आदि देशों में शान्ति शब्द का लोप सा हो गया है। भारत में आये दिन आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देते रहते हैं। भारत में एक के बाद एक होने वाले बम धमाकों से दहशत का माहौल है। अर्थात् वे सर्वत्र हैं, किन्तु महाराष्ट्र में वे सबसे प्रखर हैं। वे अक्सर रचनाधर्मी लोगों, फिल्म स्टारों अथवा लेखकों, कलाकारों को इसलिए निशाना बनाते हैं क्योंकि ऐसा करने से लोगों का ध्यान उनकी ओर जाता है .... महाराष्ट्र में वे खुद को एक सेना विशेष की संज्ञा देते हैं तो उड़ीसा में भक्त के रूप में प्रचार प्रसार कर लोगों को मारते हैं।

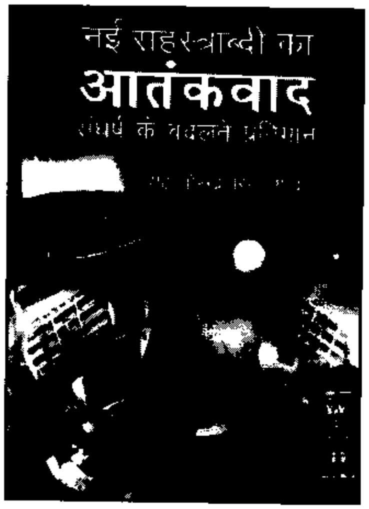

वहीं उत्तर–पूर्व में भाषायी समस्या के रूप में हमारा उत्पीड़न करते हैं तो उत्तर प्रदेश में नक्सली के रूप में हमारे समक्ष आते हैं .... वास्तविकता यह है कि हमें आज उनके मजहब से भ्रमित नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे समाज के लिए एक अभिशाप हैं। उनका मजबूत पक्ष यह है कि वे सरकारों से सांठगांठ कर कारगुजारी करते रहते हैं। शायद उन्हें यह दिखता है कि समाज उनसे टकराने की स्थिति में नहीं है। इन्हीं सब समस्याओं की पड़ताल करती प्रस्तुत पुस्तक में सात खण्डों के द्वारा पैंतालीस विद्वानों ने अपने विचार रखे हैं। प्रथम खण्ड में आतंकवाद का स्वरूप एवं प्रक्रिया, द्वितीय के तहत आतंकवाद के कारक, कारण और निवारण, तृतीय खण्ड में आतंकवाद के विनाशकारी खतरे, विशेषकर जम्मू कश्मीर राज्य के संदर्भ में, चतुर्थ खण्ड में भारतीय परिदृश्य में आतंकवाद की चुनौतियाँ, पाँचवें खण्ड में बदलते परिदृश्य में वैश्विक आतंकवाद, छठें भाग में आतंकवाद के समाधान में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी के योगदान एवं सातवें खण्ड के द्वारा नई सहस्त्राब्दी में आतंकवाद के विविध मुखौटों को जिनमें साइबर आतंकवाद एवं जैविक आतंकवाद को रेखांकित किया गया है; जिसका शीघ्र अन्त होता नजर नहीं आ रहा है। कुल मिलाकर आतंकवाद के प्रमुख कारण क्या हैं और इसके भावी समाधान क्या हो सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से इस पर गम्भीर चर्चा करने की कुशल सम्पादक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने कोशिश की है। मैं ऐसा मानती हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती आतंकवाद पर ब्रेक लगाती नजर आती है।

✍ एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय, लखनऊ (उ. प्र.)

ISSN : 0974-0002 वाल्यूम : 06, वर्ष : 03, जुलाई–दिसम्बर 2010

पोथी की परख/समीक्षायन

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिंतन के विविध सरोकार

✍ डॉ. ममता आनन्द

पुस्तक	:	भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिंतन के विविध आयाम
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4, दरिया गंज नई दिल्ली
मूल्य	:	रु. 600.00
ISBN	:	978–81–8455–241–6
पेज	:	18 + 293 = 311

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपने 50 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवं सम्पादन किया है तथा आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

मनुष्य की प्रगति का इतिहास प्राकृतिक परिवेश से उसके सामंजस्यपूर्ण व्यवहार की कहानी है इसमें कोई दो राय नहीं कि पर्यावरण ने अपने असंख्य–संगठित समुदायों के साथ मनुष्य जीवन को खुशहाल एवं सुखमय बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। इसके मूल में शायद मनुष्य का प्रकृति के प्रति सद्भाव एवं सम्मानपूर्ण रवैया प्रमुख कारण रहे हैं।

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की सूक्ष्म अन्वेषी दृष्टि में पर्यावरण को वैदिक संस्कृति में क्या स्थान है के माध्यम से देश के चौंतीस विद्वान लेखकों के द्वारा इस पर विशद विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। भारतीय संस्कृति मानती है कि इस देह की रचना पंचतत्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) से ही हुई है। हमारे वैदिक ग्रन्थों में इन्हीं पंच–तत्वों को मानव मात्र के लिए शुभ–अशुभ, अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का सूचक भी माना गया है। चार खण्डों में विभाजित उपशीर्षकों के अन्तर्गत प्रथम के तहत वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण : स्वरूप एवं संरक्षण, द्वितीय में प्राचीन भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में पर्यावरण शिक्षा : संरक्षण एवं जागरूकता, तृतीय खण्ड में भारतीय संस्कृति में पर्यावरण की प्रासंगिकता एवं उपादेयता तथा चतुर्थ खण्ड में वैदिक संस्कृति में पर्यावरण चिंतन के विविध आयामों विशेषकर यज्ञों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण कैसे किया जाये एवं ऋषि मुनियों के द्वारा दिए गए उपदेशों के माध्यम से इसके संरक्षण की विभिन्न विधियों तथा धार्मिक एवं नैतिक मान्यताओं के पीछे भी कहीं न कहीं पर्यावरण जागरूकता की छवि रही होगी। विवेचित एवं विश्लेषित किया गया है।

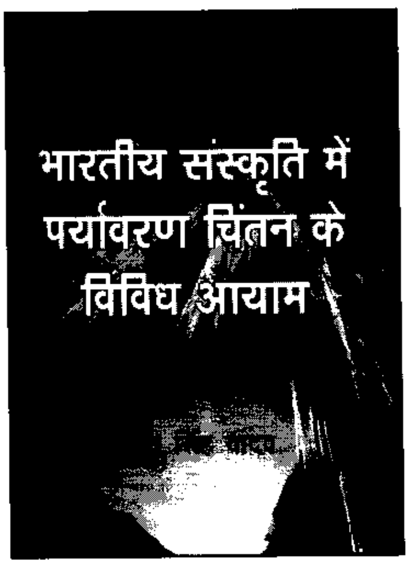

प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादकीय के माध्यम से लेखक ने इस बात की चिंता व्यक्त की है कि भले ही हम भूमण्डलीकरण एवं चहुँमुखी विकास की चर्चा करें और अपने को प्रगतिशील होने का ढोंग करते रहें; लेकिन ऋषि मुनियों द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त धारा अर्थात् प्रकृति के प्रति श्रद्धा सम्मान की बात तो दूर रही इसको सहज अपनी सहयोगिनी एवं पूरक सत्ता के रूप में देखने–समझने की समाज एवं विश्व के पास दृष्टि नहीं है? प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से पर्यावरण की अनसुलझी गुत्थी को सुलझाने का प्रयास इन विद्वान लेखकों ने किया है।

✍ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, महिला पी. जी. कालेज, बहराइच (उ. प्र.)

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत 'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा-पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों, तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जुलाई 2010
हस्ताक्षर

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) ✦ सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- डॉ. आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.
- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात (उ. प्र.)
- डॉ. उमारतन यादव, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)

प्रमुख अप्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसवर्ड, ड्राइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई. वी. 3 ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन–डब्ल्यु 1 के 1 एच. एफ.
- श्री धनंजय कुमार, 7806 वेन्डीराइड लेन आनन्दले वर्जीनिया, यू.एस.ए. 22003

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबूराम शोभाराम कला महा., अलवर, राजस्थान
- डॉ. वीणा श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन)
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कॉलेज, जौनपुर (उ. प्र.)
- डॉ. पुनीत बिसारिया, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, नेहरू पी. जी. कालेज, ललितपुर

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी. जी. कालेज, कानपुर
- डॉ. परमात्मा शरण गुप्ता, अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर–21 सी. पार्ट–2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ. प्र.)
- डॉ. शुभा जौहरी, रीडर इतिहास, विभाग–राष्ट्र संत तुकादोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)
- डॉ. गोवर्धन सिंह, अध्यक्ष, भोजपुरी विभाग, वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- डॉ. हितेन्द्र जे मौर्या, प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुजरात)
- डॉ. प्रतिभा पटेल, गौरक्षणी, सासाराम (बिहार)
- श्री राघवेन्द्र सिंह राजू, 7 जाफ़लिन रोड, लखनऊ (उ.प्र.)
- डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, अकबर कालेज, अकबरपुर (कानपुर देहात) उ. प्र.
- डॉ. आलोक रंजन, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर (बिहार)

- डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखंड)
- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ. सुशील कुमार शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ. सुनीता शर्मा, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरुनानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)
- डॉ. एल. के. कुन्दन, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, रॉची कालेज, रॉची
- डॉ. अखिलेश शुक्ल, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. चन्द्रमा सिंह, नयकागाँव जी.टी. रोड, सासाराम (बिहार)
- डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह, म. नं. नन्दन सदन II फ्लोर, शेरशाह रोड, शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना 800007 (बिहार)
- डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)
- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लाट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)
- डॉ. नीना शर्मा 'हरेश', व्याख्याता हिन्दी, आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात (गुजरात)
- डॉ. कश्मीरी देवी, म. नं. 1651/21 हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा) 821115
- डॉ. राधा वर्मा, वर्मा निवास, गाहन, कमला नगर, संजौली, शिमला (हि. प्र.)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय कुमार सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया (पी. जी.) कालेज, हंडिया, इलाहाबाद
  मोबाइल : 09415638535 ई–मेल : drajaysingh@gmail.com
- डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया
  मोबाइल : 09219828316 ई–मेल : siyaramhindi@rediffmail.com
- रणविजय सिंह, शोध छात्र, राजनीति शास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
  मोबाइल : 09919123763 ई–मेल : rajuranvijay@gmail.com

सम्पादक

- **डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव**

  1760, नया रामनगर, उरई जिला–जालौन 285001 (उ. प्र.) भारत
  सम्पर्क : 05162–252888, 09415924888, 09670732121
  Email : kritika_orai@rediffmail.com
  Email : virendra_kritika@rediffmail.com
  Email : dr.virendrayadav@gmail.com
  http://kritika-shodh.blogspot.com